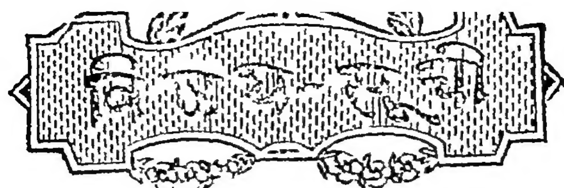
वैद्य शिवनारायण मिश्र भिषग्रत्न द्वारा

प्रकाश आयुर्वेदीय औषधालय के प्रकाश प्रेस, कानपुर

मुद्रित

२—५—२५

०—११—३१



दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक प्रिन्स क्रोपाटकिन की आत्मकहानी है। आत्म-कहानियों में प्राय. अपने ही सम्बन्ध की विस्तृत विवेचना की जाती है, और कहीं कहीं आत्म-प्रशंसा की बू तक आने लगती है। प्रिन्स क्रोपाटकिन की आत्म कहानी में यह बात नहीं। उन्होंने विनय और नम्रता के कारण अपने सम्बन्ध में बहुत कम लिखा है। न वे अपने पापों की गाथा गाते हैं और न अपने पुण्यों की चर्चा ही करते है। अपने सम्बन्ध में वे यहाँ तक उदासीन से हैं कि अपनी शादी तक का उन्होंने कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। अपना परिचय देने की अपेक्षा उन्होंने अपने सहयोगियों के परिचय पर विशेष ध्यान रक्खा। प्रिन्स क्रोपाटकिन की आत्मकहानी में रूस के सत्ताधारियों और अत्याचार-पीड़ित साधारण जनता की दशा का विशाल चित्रण ही मिलेगा। संक्षेप में प्रिन्स क्रोपाटकिन की आत्मकहानी, उन के समय के रूस और मजदूर आन्दोलन का इतिहास है।

प्रिन्स क्रोपाटकिन का जीवन एक ऐसा जीवन है जिसमें ऐश्वर्य है, दीनता है, साहस है और कष्ट है। उनका जीवन अनेक घटनाओं का एक समूह है, और जीवन की एक एक घटना हृदय को स्पर्श करने वाली है। उनका जीवन एक अभिनय सा है। कभी हम उन्हें राज-प्रासाद में पाते हैं, कभी जेल में, कभी सम्राट् और राजघरानों के बड़े बड़े जन-समुदायों में, और कभी लंदन और स्वीट्ज़रलैण्ड के मज़दूर दलों में। उनकी जीवन घटनाएँ कुछ ऐसी हैं कि इस आत्मकहानी के बिलकुल साधारण शब्दों में लिखी हुई होने पर भी उसमें अद्भुत आनन्द आता है। प्रिंस क्रोपाटकिन के समान भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में कोई विरला ही मनुष्य घूमा होगा। उन्होंने एक निरंकुश शासक और मज़दूर—दोनों

इच्छा प्रकट की थी। निकोलस् तुरन्त मुझे उठाकर अपनी पुत्रवधू मेरी एलेकजेनड्रोवना के समीप ले गया, जिसके शीघ्र ही तीसरा पुत्र-रत्न उत्पन्न होने को था। मुझे उसके सामने खड़ा करके निकोलस् अपने स्वभावानुसार हँस कर उस से कहने लगा "क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि आप भी इसी बालक के समान रूप वाले बालक की जन्मदात्री होंगी?" यह सुन वह मुस्करा कर लज्जित हो गई।

उसी क्षण हास्य-मनोरंजन में प्रवीण कहे जाने वाले निकोलस् के भाई मि० मिखेल ने मुझे रुला दिया। आपने घड़क कर मुझ से कहा,—"बच्चे! तुम अच्छे हो—इस कारण तुम्हारे प्रति ऐसा व्यवहार है, यदि तुम ढीठ होते तो क्या तुम्हारा ऐसा मान होता! यह कहते हुए उन्होंने मेरी नाक पकड़ कर खींच दी। मैंने अश्रुपात को बहुत रोकना चाहा, पर वह न रुक सका। यह देख रानी एलेकजेनड्रोवना ने तुरन्त मुझे अपनी गोदी में बिठा लिया और मेरे आँसुओं को अपने अञ्चल से पोंछने लगीं। ओह! उस समय मेरे पिता जी के आनन्द की कोई सीमा न थी।

शाहज़ादी मुझे लेकर एक मखमली आराम-कुर्सी पर बैठ गई। मैं उनकी गोद ही में सो गया। गर्भिणी होने के कारण नृत्य में शाहज़ादी ने कोई भाग नहीं लिया, इसलिए जब तक नाच होता रहा, मैं उन्हीं की गोद में सोता रहा। नींद टूटने पर उन्होंने बहुत सी मिठाइयाँ देकर हमको प्रेम से विदा किया मैं सीधा नत्साफ के समीप आ बैठा। उस समय मेरे पिता जी व अन्य बान्धव गण, मुझे बारम्बार पुकार कर कहते थे, "पुत्र! अब तुम ज़ार के Page (पार्श्व-अनुचर) हो। ज़ार

प्रकाश-पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

रुबाइयात उमरखय्याम ३)
आयुर्वेदीय खनिज-विज्ञान २॥) सजि० ३)
सूर्य व्यायाम ।)
जल चिकित्सा ।=)
जल के प्रयोग और चिकित्सा ॥)
आरोग्य सूत्रावली ।=)
हिन्दी गीताञ्जलि १॥
प्रेम देश के अनुभव ।=
देवी रात ।=)
भारतीय नारी भाग१ ॥=
" " २ ॥
आदर्श नारी ।=)
[illegible] की रामकहानी ।-
युद्ध की कहानियाँ ।)
कृष्णार्जुन युद्ध नाटक ।=)
भीष्म नाटक ॥
सुलक्षणा [नाटक] ।=
उद्योगी पुरुष ।=)
रूस का राहु ।=)
श्रीकृष्ण चरित्र ।=)
हेनसिंह और दासों का विद्रोह ।=)
फिजी में भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा १)

साम्यवाद ।=)
रूस की राज्यक्रान्ति २॥)
चीन की राज्यक्रांति १॥)
एशिया निवासियों के प्रति यूरोपियनों का बर्ताव ।=)
महाराज नन्दकुमार को फाँसी २॥)
बलिदान सचित्र २)
काला पहाड़ ,, ॥।
सचित्र इटाली दर्शन ॥।)
टाल्सटाय के सिद्धान्त १।)
रजारानी (ऐ ३) २॥
नर और नाहर(रवीन्द्र) १।)
रानी सारन्धा (राय का) ॥=)
सम्राट अशोक १)
भारतीय सम्पत्तिशास्त्र सजिल्द (प्राणनाथ) ४)
संसार की असभ्यजातियों की स्त्रियां(चि०स०) २॥।
सरोजिनी नायडू ।=)
छत्रपति शिवाजी ॥=
महाराणा प्रताप ॥=)
वन्देमातरम चित्राधार २)
त्याग चित्रावली १॥)
तिलक चित्रावली १)
कांग्रेस चित्रावली ॥।)

कांग्रेस का इतिहास ॥-)
भारतीय इतिहास में स्वराज्य की गूँज ।=)
आयर्लैंड में होमरूल ॥)
आयर्लैंड में मातृभाषा ।=)
बीसवीं सदी का महाभारत ॥।)
राजनीति प्रवेशिका ।=)
हमारा भीषण ह्रास ।)
कुसुमांजलि (कवि०) =)
हिन्दी करीमा(काव्य)।-)
कृषक क्रन्दन ≡)
दादाभाई नौरोजी =)॥
रानाडे की जीवनी =)॥
चम्पारन की जाँच ।-)
स्वराज्यपर मालवीयजी ।)
स्वराज्य पर सर रवीन्द्र ।)
कलकत्ते में स्वराज्य की धूम ।)
शिक्षा सुधार ॥)
राजयोग(विवेकान०)।=)
भक्तियोग ,, ।=)
फिजीद्वीपमें मेरे२१वर्ष ॥)
मेघनाद वध ॥।)
बहिष्कृत भारत ।)
सितार शिक्षक ।=)

जब मैंने पाठशाला के लिए घर छोड़ा था, उस समय मेरी आयु अधिक न थी, पर, मानवी-स्वभाव बहुधा अल्पायु में भी स्थिर हो जाते हैं। मुझे स्पष्ट याद है कि शैशव काल में मैं बहुत कुछ वैसा ही था, जैसा कि आगे चल कर मैं भविष्य में होने वाला था। मेरी रुचि, मेरी प्रवृत्ति (चित्त का झुकाव) एक प्रकार से निश्चल हो चुकी थी। मेरे इस मानसिक विकाश का बहुत कुछ श्रेय मेरे श्रद्धेय अध्यापक मि० सिमरनाफ़ को है। उस समय यह प्रथा प्रचलित थी कि बालकों के सुधार के लिए उनके माता-पिता प्रायः किसी प्रवीण एव परीक्षित सदाचारी विद्यार्थी को घर में रख लेते थे। वह निरन्तर शिक्षा देने के अतिरिक्त उन बालकों को सदाचारी भी बनाता था। बहुधा उन सब का आपस में भ्रातृ-स्नेह सा स्थापित हो जाया करता था। निकोलस् प्रथम के कटु शासन काल में अच्छे अच्छे लेखकों के ऊपर सेन्सर (Censor) लगा हुआ था, उनकी उत्तम पुस्तकें न छप सकती थीं। किन्तु, मेरे अध्यापक हमको इन बातों का ज्ञान पत्रों पर लिख लिख कर कराया करते थे। वे किसी न किसी प्रकार से पुसकिन, लरमनटाफ़, ए० के० टालस्टाय, रिलाफ तथा जोगल आदि महापुरुषों के लेख व कवितायें दिखला ही देते थे। मेरे अध्यापक उस समय जोगल की मृतात्मा (Dead soul) नामक पुस्तक को उतारते रहते और मैं भी उनके इस कार्य्य में बराबर योग दिया करता था। इस पुस्तक का छपना राजाज्ञा से बन्द था। सुप्रसिद्ध लेखक जोगल की मृत्यु सन् १८५१ ई० में हुई थी। उन दिनों हम केवल ६ वर्ष ही के थे। पर मुझे स्मरण है कि उस दिन देश भर में हाहाकार मच गया था। रूस के प्रसिद्ध

सुनते रहे। वे हमारी माता के सम्बन्ध में कुछ वार्तालाप कर रहीं थीं, हम उसे न समझ सके, इस लिए हम दोनों उठ कर बैठ गए। मैंने पूछा,—"माँ कहाँ है?" वे दोनो सिसक-सिसक कर रोने लगी और हम दोनों को "अनाथ बच्चे" के नाम से पुकारते हुए हमारे सिरों पर प्यार से हाथ फेरने लगी। उलीना अपने मनोद्गारों को अधिक समय तक न रोक सकने के कारण कहने लगी,—"आपकी माँ 'वहाँ वहाँ आकाश मे 'देवदूतों के समीप ' गई है।"

यह घटना अप्रेल मास सन् १८३६ ई० मे हुई। उस समय मेरी आयु केवल ३॥ वर्ष की तथा मेरे भाई शासा (एलेकजेण्डर) की लगभग ५ वर्ष के थी। मुझे यह विदित न था कि मेरे बडे भाई निकोलस तथा मेरी वहिन हेलीना उस समय कहाँ थीं? कदाचित् वे कहीं स्कूलों में पढ रहे थे। उस समय निकोलस की आयु १२ वर्ष के लगभग और हेलीना की ११ वर्ष के लगभग होगी। इस भाँति अब मैं और मेरा भाई शासा दोनों ही वर्मन दाई व उलीना दाई के पास रहने लगे। साधु-स्वभावापन्न वृद्धा वर्मन दाई—जिसका संसार में कोई भी न था, मुझ पर माता के सदृश प्रेम रखने लगी और मुझे भी उससे अधिक प्रेम होगया। पिता जी से मेरी भेंट कभी कभी हुआ करती थी।

वंश परिचय

मेरे पिता को अपने वंश की उत्पत्ति का बहुत ही अभिमान था। वे बहुधा बडी गम्भीरता के साथ हम लोगों का ध्यान एक चर्म-पत्र की ओर आकर्षित कराते थे, जो

की जमींदारी को छोड़कर, जहां पर नाना प्रकार की सुन्दर घाटियां व अन्य प्राकृतिक छटायें मनको लुभा रही हैं, कौन सैनिक नौकरी कर सकता है। हमारे पितामह ने लेफ्टिनेण्ट पद से नौकरी छोड़ अपना विवाह एक परम सुन्दरी प्रिसेज गोगरिन से कर लिया जो अन्य वंश की थी। थोड़े काल पश्चात् शाहजादी के एक पुत्र का जन्म हुआ। उसको कविता आदि से विशेष प्रेम था। मेरे पिता उसकी इस बात को छिपाया करते थे क्योंकि उन दिनों धनाढ्यों की सम्मति में ये काम कुछ अच्छे न थे।

मेरे पिता भी प्रथम ज़ार निकोलस के समय एक सैनिक कर्मचारी थे। उनको सैनिक जीवन मे विशेष प्रेम न था पर, वे युद्ध-कला में दक्ष माने जाते थे। मुझे जहां तक पता है, कदाचित् उन्होंने एक दिन भी सैनिक कवायद आदि में व्यतीत न किया होगा। उस समय सैनिक अफ़सर हाजाने के लिए यह आवश्यक न था कि वह धीर वीर, पराक्रमी एवं युद्ध-कला कुशल हो, वरन् उस विचित्र समय में वही मनुष्य अच्छा अफसर समझा जाता था जो रात-दिन सैनिक लिवास में रहता हो और समय समय पर जिसकी फ़ौज विशेष क्रीडा-कौशल एवं उछल-कूद दिखलाना जानती हो। सन् १८२८ ई० में उन्होंने तुर्कों के विपक्ष में एक लड़ाई लड़ी। पर, उस युद्ध के विषय में भी वे इसके अतिरिक्त कि "तुर्क बड़े पाजी हैं," 'मेरा सेवक फार्ल बड़ा वीर है," और कुछ कहने की सामर्थ्य न रखते थे। और देशों की भांति रूस में भी वीरों को एक स्वर्ण-पदक दिया जाता है। यह "सेन्टएनी" नामक स्वर्ण-पदक मेरे पिता के भी पास था, पर इसकी कथा बड़ी ही मनोरंजक

एव विचित्र है। तुर्कों से युद्ध होते समय एक ग्राम में भीषण अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसी समय एक असहाय अबला अपने छोटे बच्चे सहित उस अग्निकाण्ड में पड़ गई। फार्ले ने बड़ी वीरता एव साहस से उसे तत्क्षण वहाँ से निकाल लिया। वास्तव में वह उस समय अपनी जान पर खेल गया। फल-स्वरूप उसे स्वर्ण-पदक दिया गया। मुझे भलीभाँति स्मरण है मैंने जब पूछा कि पदक तो फार्ले के पास होना चाहिए, तो मेरे पिता ने बड़ी ही सरलता से उत्तर दिया था:—'क्या फार्ले मेरा दास नहीं है? क्या यह दूसरी बात होगई?"

सन् १८३१ ई० में भी पिताजी ने पोलैण्ड की क्रान्ति को दबाने में भाग लिया था। वारसा में कई दिनों तक वे सेना को लड़ाते रहे। वहीं पर वे एक सेनापति की पुत्री पर प्रेमासक्त हो गए। तत्पश्चात् उसी के साथ उन्होंने समारोह पूर्वक विवाह कर लिया। मेरी माता एक प्रख्यात और विदुषी महिला थीं। मृत्यु के बाद उनके सन्दूकों में कई एक पुस्तकें उन्हीं की बनाई हुई पाई गईं। साधु-स्वभावापन्न होने के कारण सब दासियाँ उनको चाहती थीं और यही कारण था कि उनकी मृत्यु के उपरान्त वे सब मुझ से अधिक स्नेह मानती थीं। दासियाँ बहुधा मुझ से यह प्रश्न करने लगतीं कि "क्या मैं भी अपनी माता के सदृश दयालु होऊँगा?" उसी क्षण मेरी वरमन दाई मेरी ओर से उत्तर देकर मुझे कण्ठ से लगा लेती थी।

सच है मनुष्य हृदय से चाहता है कि उसका नाम अमर रहे, किन्तु कदाचित् उसे यह स्मरण नहीं रहता कि साधु-कर्म करने वालों का नाम सदैव संसार में अमर रहेगा। उसका प्रभाव भावी सन्तान पर पड़ता है।

सौतेली माँ का पदार्पण

माता की मृत्यु के दो वर्ष उपरान्त मेरे पिता अपने दूसरे विवाह की खोज करने लगे। अबकी वार उनका विचार एक धनाढ्य युवती से विवाह करने का था, पर, इस वार भी उन को असफलता हुई।

प्रातःकाल का समय था। पिताजी विवाह सम्बन्धी विचारों में निमग्न थे इसी समय सेवक ने यह कह कर कि जेनरल टिमोशेंफ आये हैं, उनको व्यस्त कर दिया। सैनिक पद में ये हमारे पिता से ऊँचे थे। इसके पूर्व ये हमारे यहाँ कभी न पधारे थे। अपने कठोर स्वभाव एवं निरंकुशता के लिए ये भली भांति प्रसिद्ध थे। पिताजी बड़े सम्भ्रम में तथा चकित थे। किन्तु, थोड़े ही समय में विदित हो गया कि वे अपनी स्त्री की एक भतीजी एलीज़ेविथ करनडिनों का विवाह हमारे पिताजी से कराने का सन्देशा लाये हैं। अतएव उनके इच्छानुसार विवाह सानन्द और समारोह पूर्वक समाप्त होगया। मेरी नवीन माता प्रायः अपने चञ्चल नेत्रों को घुमा घुमा कर कहा करती थीं, "अब तुम्हारी माता तुम लोगों को बड़ी नेक और सुन्दर मिली है।" मैं और मेरा भाई इसके अतिरिक्त कि मेरी माता आकाश में ऊपर उड गई हैं और कुछ उत्तर नहीं दे सकते थे।

होते होते शीतकाल आगया। इन दिनों समस्त रूस में अँगीठी के पास बैठी हुई दाइयां प्रायः बच्चों को नाना प्रकार की कथायें सुनाया करती हैं। इन्हीं दिनों हमारे जीवन ने भी एक नवीन पलटा खाया, सौतेली माँ का पदार्पण हुआ और

गृह-परिवर्तन हुआ। नवीन माताजी के आज्ञानुसार तुरन्त ही पुराना घर बेच दिया गया और एक दूसरा घर क्रय कर लिया गया। नया घर नाना प्रकार की सजावटों से सुसज्जित किया जाने लगा। सारांश यह कि मेरी माता की प्रत्येक स्मारक-वस्तु तीन-तेरह कर दी गई। यहां तक कि बेचारी जरमन दाई भी अन्यत्र भेज दी गई यद्यपि उसने बहुत प्रार्थना की कि वह यहीं पर बच्चों के समीप रखी जाय। पर होता क्या? मेरी नवीन माता को यह भूत सवार थी कि मेरी मा की कोई भी वस्तु न रहने पावे। इसी प्रकार होते होते माताजी की कृपा से मेरे घर का सम्बन्ध चाचा और दादी से भी विच्छिन्न होगया।

हमारी शिक्षा के लिए फ्रेञ्च अध्यापक मि० पोलन और एक रशियन विद्यार्थी मि० एन० पी० सिमरनाफ की नियुक्ति की गई। मि० पोलन एक शिक्षित और उदार स्वभाव वाले पुरुष थे। आपकी प्रशंसा मेरे मुहल्ले में अधिक थी, इसी कारण पिताजी ने उनको मेरा अध्यापक बनाया था। उनके पढ़ाने का ढङ्ग बहुत ही सरल था। हम अपना पाठ नित्यप्रति उनको सुना देते परन्तु कानून के आते ही सब बात बिगड़ जाती। Juris-consuet (व्यवस्था विधि अथवा व्यवहार शास्त्र) का नाम सुनते ही मैं घबड़ा जाता और सब ठाठ धूल में मिल जाता था। मि० पोलन घुटनों के बल हमें खड़ा करते तथा नाना प्रकार से समझाते थे। पर, ध्यान में एक न समाती थी। एक दिन मि० पोलन हमको छड़ी से पीट रहे थे। मेरा रोना मेरी बहिन हेलीना के कानों तक जा पहुँचा। वह प्रेम से विह्वल होकर अंधेरा में आ, पिताजी के समीप पहुँची और तीव्र

स्वर से कहने लगी,—"ऐसे निष्ठुर अध्यापक को क्यों रखा है? मेरी माता आज जीवित होती तो यह क्यों होता!" पिता जी यह सुन चुप रह गये। पर उस दिन से छड़ी की मार में अवश्य कुछ कमी हो गई। वास्तव में हमारे अध्यापक निष्ठुर न थे, पठन-पाठन कार्य्य समाप्त होते ही वे एक अत्यन्त हृदय प्रसन्न करने वाले एवं साथी बन जाते थे। हमारे दूसरे रूसी अध्यापक हमको व्याकरण, गणित तथा इतिहास पढ़ाते थे। उनके पढ़ाने का ढङ्ग बहुत सीधासादा था। वे नित्यप्रति रूसी भाषा में इतिहास के नोट लिखाते, जिसके कारण हम थोड़े ही दिनों में रूसी भाषा सरलता, शीघ्रता एवं शुद्धता से लिखने लगे। रविवार को छुट्टी रहती, अतः वह हम लोगों का आनन्द-दिवस था। घर में भी नाना प्रकार के खेल-कूद होते थे। पिता के मित्र गण उस दिन अधिक संख्या में आते जाते। स्वादिष्ट भोजनों की भरमार रहती। गायक गणों के गान नाना प्रकार के नाच-रंग आदि आमोद-प्रमोद का सामान रहता। उस समय बालकों के लिए कोई खिलौने न थे, हम सब को अपनी अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार ही रचना करनी पड़ती और उन्हीं से मनोरंजन करना पड़ता था। हम दोनों भाइयों को बचपन ही से थियेटरों का चाव था। पिता जी भी थियेटरों के प्रेमी थे। उनके साथ हम दोनों को भी अच्छे अच्छे नाटकों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हो जाया करता था। नाटकों से लौट कर रविवार के दिन प्रायः हम दोनों भाई सेवकों को साथ में लेकर नाटकों का प्रतिरूप किया करते। इन सब बातों से मेरा तो यह अनुभव है कि जो माता पिता अपने बालकों में कला और सौन्दर्य सम्बन्धी अभिरुचि

उत्पन्न करना चाहते हैं वे उन्हें प्रसिद्ध और शिक्षाप्रद नाटकों के अच्छे अभिनयों का दिग्दर्शन अवश्य करावें।

निकोलस् प्रथम की सहानुभूति

जब मेरी अवस्था आठ वर्ष की थी, तब मेरे जीवन में एक विशेष घटना संघटित हुई, जिसकी मुझे कभी कल्पना भी नहीं थी। इस घटना का कारण निकोलस् प्रथम के राज्याभिषेक की पच्चीसवीं वर्षगांठ थी। इस समय मास्को नगर में चारों ओर आनन्द की बधाइयां बज रही थीं। देश के समस्त धनीमानी एवं सम्पूर्ण राज-परिषद् पुरानी राजधानी मास्को में आने वाला था। मास्को के धनी लोग नाना प्रकार की तैयारियों और सजावटों में व्यस्त हो रहे थे। नगर के किसी भाग में भी कोई जाकर देखे, उसे कुछ न कुछ ज़ार के स्वागत के सम्बन्ध में अवश्य दिखलाई पड़ेगा। मेरे पिता भी अपने घर को नाना प्रकार के आडम्बरों से सजा रहे थे। उस समय यदि उनको कोई ध्यान था तो केवल इसका कि कहीं उनका वास-स्थान साज सामानों से अपूर्ण न रह जाय। माता जी के लिए नाना प्रकार के वस्त्र बनने लगे। मेरे पिता की भी सैनिक वर्दी बन रही थी, पर, मेरी व मेरे भ्राता की कोई सुध न ली गई थी, क्योंकि पिता जी का विचार हम दोनों को उत्सव में ले चलने का न था। किन्तु, "ईश्वरेच्छा बलीयसी" मैं उत्सव में पहुँच ही गया। माता जी की एक सहेली मेडम नज़माफ़ थीं। इनके पति एक बड़े धनाढ्य एवं विख्यात "नोविलों" में थे। ये दोनों ही हमारे यहां पधारे हुए थे। संयोगवश उनका पुत्र यहाँ आते ही अस्वस्थ हो

गया, जिसके लिए उत्तम वस्त्र उनके माता पिता ने सहस्रों रुपये व्यय करके इसी उत्सव के लिए बनवाये थे। एक दिन दयालु नजमाफ़ ने मुझे और मेरे भाई को बुलवा भेजा और हम दोनों को उक्त वस्त्र पहिरने की आज्ञा दी। मेरा भाई लम्बा था, इस कारण वे वस्त्र उसके ठीक न होकर मेरे शरीर मे ठीक हो गये। नजमाफ़ ने मुझे उत्सव में ले चलने की इच्छा प्रकट की। मैं तो इसके लिए तय्यार बैठा ही था, पिता ने भी आज्ञा दे दी। इस प्रकार मैं भी नजमाफ़ के साथ उत्सव मे जा पहुँचा। वहाँ पर हम सब बालक एक पंक्ति मे सिलसिलेवार खडे कर दिये गये।

थोड़े ही समय के अनन्तर निकोलस् प्रथम बडी जांक-जमक और समस्त राज-परिषद से सुशोभित उत्सव-मंच पर आकर पधारे। उनके राजमंच पर बैठते ही उपस्थित जन समुदाय ने विधिवत् उनको प्रणामादि किया। शान्ति का साम्राज्य चारों ओर छाया हुआ था। नीरवता ऐसी थी, मानों कोई सजीव है ही नहीं। किसी प्रकार की ध्वनि कहीं से न आरही थी। मैं भी विस्मित खडा कुछ सोच रहा था कि अकस्मात् एक ओर से कुछ खडबड की आहट सुनाई दी और मैंने अपने को चचा की गोदी में पाया। मैं विस्मय से उनके तडकीले-भडकीले वस्त्र तथा उनके मुख की ओर देखने लगा। मैं अभी वास्तव में सम्हल भी न पाया था कि राजकीय मंच पर खडा कर दिया गया। मैं नहीं कह सकता कि इसका कारण मेरा सब से छोटा होना था या मेरे गुलाबी गालों पर घुँघराली लटों की शोभा थी। पर, बात वास्तव में यह थी कि निकोलस् प्रथम ने मुझे मञ्च पर लाने की

इच्छा प्रकट की थी। निकोलस् तुरन्त मुझे उठाकर अपनी पुत्रवधू मेरी एलेकज़ेनड्रोवना के समीप ले गया, जिसके शीघ्र ही तीसरा पुत्र-रत्न उत्पन्न होने को था। मुझे उनके सामने खड़ा करके निकोलस् अपने स्वभावानुसार हँस कर उन से कहने लगा "क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि आप भी इसी बालक के समान रूप वाले बालक की जन्मदात्री होंगी?" यह सुन कर मुस्कुरा कर लज्जित हो गई।

उसी क्षण हास्य-मनोरंजन में प्रवीण कहे जाने वाले निकोलस् के भाई मि० मिखेल ने मुझे रुला दिया। आपने बढ़कर मुझ से कहा,—"बच्चे! तुम अच्छे हो—इस कारण तुम्हारे प्रति ऐसा व्यवहार है, यदि तुम ढीठ होते तो क्या तुम्हारा ऐसा मान होता! यह कहते हुए उन्होंने मेरी नाक पकड़ कर खींच दी। मैंने अश्रुपात को बहुत रोकना चाहा, पर वह न रुक सका। यह देख रानी एलेकज़ेनड्रोवना ने तुरन्त मुझे अपनी गोदी में बिठा लिया और मेरे आँसुओं को अपने अञ्चल से पोंछने लगीं। ओह! उस समय मेरे पिता जी के आनन्द की कोई सीमा न थी।

शाहज़ादी मुझे लेकर एक मखमली आराम-कुर्सी पर बैठ गई। मैं उनकी गोद ही में सो गया। गर्भिणी होने के कारण नृत्य में शाहज़ादी ने कोई भाग नहीं लिया, इसलिए जब तक नाच होता रहा, मैं उन्हीं की गोद में सोता रहा। नींद टूटने पर उन्होंने बहुत सी मिठाइयाँ देकर हमको प्रेम से विदा किया मैं सीधा नज़माफ के समीप आ बैठा। उस समय मेरे पिता जी व अन्य बान्धव गण, मुझे बारम्बार पुकार कर कहते थे, "पुत्र! अब तुम ज़ार के Page (पार्श्व-अनुचर) हो। ज़ार

का पार्श्व-अनुचर होना उस समय एक महान पदवी थी, जिस में कि अपने बालकों को प्रवेश कराने के लिए नोविल लोग बड़े लालायित रहते थे, क्योंकि वे जानते थे कि बड़े होने पर यहां से उनके बालक ऊँचे ऊँचे पदों पर पहुँच सकेंगे। पर, मुझे ये बातें तब ज्ञात न थीं, अतः मैं बराबर यही उत्तर देता था कि मैं किसी का अनुचर न होऊँगा। मेरा चित्र उसी लिवास में तुरन्त ले लिया गया।

कुछ समय पश्चात् पिता जी ने अधिक परिश्रम और व्यय करके मेरे भाई एलेक्ज़ेन्डर को भी Corps of cadets (वह दल जहां पर कि नवयुवक पदेच्छा से अवैतनिक ही कार्य्य किया करते हैं) में प्रवेश करा दिया। पिता जी अब मन में बहुत निश्चिन्त थे।

निकोलस् प्रथम के इच्छानुसार उसके हथकण्डों द्वारा हम दोनों को वे सैनिक कार्य्य सीखने पड़े, जिन से हम दोनों को शैशव काल ही से अनिच्छा थी। पर, ज़ार को इस बात का सदैव ध्यान रहता था कि किसी भी नोविल का होनहार बालक सैनिक कार्य्य के अतिरिक्त और किसी व्यवसाय में न लग जाय। इस प्रकार ज़ार अपनी लक्ष्य-सिद्धि सदैव ही होनहार नवयुवकों को अपनी स्वेच्छा शक्ति का एक अंग बना कर किया करता था। पिता जी भी मुझे एक सैनिक प्रधान बनाना चाहते थे अतएव वे प्रसन्न थे।

भू-स्वामियों की कुत्सित शैली

उस समय धनाढ्यों की व्याख्या केवल धन ही का होना न था, वरन्—उस विचित्र समय में धन की परीक्षा करते समय यह बात जानना आवश्यक था कि कितने

प्राणी उसके पास दास स्वरूप है। स्वयं मेरे पिता जी के कोई लगभग १२०० दास-दासी थे, जो भिन्न भिन्न स्थानों में रहते थे। हम सब घर में कुल आठ मनुष्य थे। एक-एक मनुष्य के लिए ४०-५० प्राणी सेवा करने को नियुक्त थे। एक घोड़े पर कम से कम १० सईस और कोचवान रहते। जब हम में से कोई भोजन करने बैठता तो दासों की पंक्ति हाथ बाधे पीछे खड़ी रहती। थोड़ी सी भी भूल हो जाने पर वे निर्दयता के साथ पीटे जाते थे। पिता जी के बहुत से मित्र थे। कदाचित् ही कोई दिन ऐसा व्यतीत होता होगा जिस दिन पिता जी के यहां दो-चार अतिथि मित्र न आ जाते हों। सन्ध्या के समय चाय पानी का होना तो साधारण बात थी। गायक लोग वेतन पर नियुक्त थे। वे नित्य शाम को आकर नाना प्रकार की तानें मनोहर ध्वनि के साथ अलापते, जिनको सुनकर दिन भर के क्लान्त एवं चलायमान चिन्तित चित्त की चिन्तायें शान्त हो जाती थीं।

धन पानी की भाँति बहाया जाता था। आज गाना है तो कल किसी विख्यात लेडी का नृत्य। पर, विस्मय यह था कि घर सम्बन्धी काम-काजों में एक एक पैसे का हिसाब था, यहाँ तक कि नित्यप्रति घर की मोमबत्तियां भी गिनी जातीं थीं। और पिता जी ही क्या, वरन् सारा क्वार्टर ऐसे ही पुरुषों से बसा हुआ था। मुझे भली भाति विदित है कि कई एक हमारे सुजन बान्धव इसी प्रकार अपव्ययों से धनहीन हो गये। पर, पिता जी में एक गुण अच्छा था कि वे सदैव अपनी आय-व्यय पर दृष्टि रखते थे। साथ ही उनको, दुखी मनुष्यों को किसी व्यापार आदि में लगा देने का भी प्रेम था। रूसी

धन-कुवेरों की भांति हमारे पिता के लिए भी Faster ईस्टर व Lent लेंट के त्योहार अपव्यय के विशेष अवसर थे। इन त्योहारों के आते ही प्राय सभी मनुष्य अपव्यय पर उतारू हो जाते और आगन्तुकों की सेवा में वे सब कुछ व्यय कर डालने को उद्यत रहते।

धनी लोगों की तो बात ही निराली थी। कमरे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों से भरे रहते। मेरे यहाँ भी यह उत्सव बड़े ही जाक-जमक से होता था। ऐसे ही अपव्ययों में से एक अपव्यय सहस्रों दास-दासियों का रखना भी था। इतने दास-दासियों के पोषणार्थ कुछ न कुछ चाहिए ही, यद्यपि वे इस प्रकार रहने को बाध्य किये जाते थे कि उनके सम्बन्ध में बहुत ही कम खर्च हो।

ईस्टर-उत्सव के पश्चात् शीत ऋतु के पदार्पण होते ही पिता जी चिट्ठियां लिखने लगते। आज इस गॉव के कारिन्दे को चिट्ठी जा रही है तो कल दूसरे गॉव के कारिन्दे को गल्ले के प्रबन्ध के लिए सूचना भेजी जा रही है। दास-दासियों को तो सांस लेने तक का अवकाश प्राप्त न होता था। गाँवों से अनाज लाना और इकट्ठा करना आदि अनेक काम उनको लगे ही रहते थे। इधर हमारी सब की भी, निकोलस्काय गाँव में जाने की तैयारियां हो रहीं थीं। मेज, कुर्सियां, रकाबियां आदि बहुत सा सामान बांध बांध करके गाड़ियों में लादा जा रहा था। बेचारे किसान गाड़ियां लिये हुए प्रस्थान करने की आज्ञा प्राप्त हो जाने की बाट जोह रहे थे, क्योंकि यह समय उनके घास एकत्रित करने का था, पर, वहां उन बेचारों की कौन सुनता था!

अन्त मे किसानो को बहुत अधीर होते देख माता जी ने पिता से कहा कि किसानो को आये बहुत काल हो गया, अब उनको जाने के लिए आज्ञा क्यो नही दी जाती? यह सुनते ही पिता जी ने तुरन्त फार्ल को बुलवा, कुछ धन दासों के लिए देकर कहा, "देखो, यह ४०-५० दास जो निकोलस्काय भेजे जा रहे है कहीं माल असबाव मे गडबड न कर दें।" तत्पश्चात् एक सैनिक की भाति एक लिखित आज्ञा-पत्र जेब से निकाल कर उसको दिया। उस मे लिखा था,—"आज ६ बजे सुबह २६ मई को आज्ञा दी जाती है कि तुम मास्को नगर से हमारा सामान हमारे ग्राम को ले जाओ, जोकि सरेना नदी के तट पर यहाँ से १६० मील की दूरी पर है। दासों के ऊपर कड़ी देख रेख रक्खो, जिससे वे कोई उद्दण्डता या शराबखोरी न कर पायें। यदि करें तो शीघ्र ही पास वाले पुलिस स्टेशन पर ले जाकर उनको कोड़ों का दण्ड दिलवाओ।" साथ ही यह भी बता दिया गया कि कहाँ कहाँ पर मार्ग में कितने पड़ाव होंगे, क्योंकि दासों को माल की गाडियों पर बैठने की आज्ञा न थी।

दूसरे दिन गाडियां सुबह ६ बजे न जाकर १० बजे रवाना हुई। पर, इतनी देरी होना रूसी स्वभाव को देखे उस समय कोई आश्चर्य की बात न थी। समय का मूल्य रूसी लोग उस समय न समझ पाये थे।

सामान की गाडियां चले जाने के अनन्तर हम सब प्रस्थान करने की आज्ञा पाने के लिए विशेष लालयित हो रहे थे। अन्त में आज्ञा हुई कि हम सब भी गॉव को जायॅ। गाडियां आगई। पिता जी से मिल मिला कर हम सब

गाडियों में बैठने लगे। अन्त में माता जी आईं और वे पिता जी से कुछ समय तक अकेले में वार्तालाप करती रही। पर, विदा होते समय उन्होंने कई बार पिता जी से कहा, "मैं प्रार्थना करती हूँ, आप अकेले अब कब न जायँ।"

इस प्रकार यहा से चल कर हम नगर के बाहर पहुँचे। नाना प्रकार के प्राकृतिक दृश्य, सघन वृक्षों की छाया में विश्राम करते हुए क्लान्त पथिकों के समूह आदि मन को अपनी ओर आकर्षित करने लगे। यात्रा मुझे बडी ही आनन्ददायक प्रतीत हो रही थी। मार्ग में तरु राजियो पर बैठे हुए विहङ्ग-कुल का चहचहाना सुन पड रहा था और नाना प्रकार के जीव जन्तु दिखलाई दे रहे थे। होते होते हम उस स्थान पर आ पहुँचे जहाँ पर नेपोलियन ने सन् १८१२ ई० में मलयारा स्लेवेज (Maloyaroslavetz) के युद्धक्षेत्र में रूस की फौज का मान-मर्दन किया था। यहाँ से थोडी दूर और चल कर हम टन्टिनो (Tarutino) पर जा ठहरे। यह वह स्थान है जहा पर नेपोलियन को रूसी फ़ौज का वल स्वीकार कर निश्चित मार्ग से बढने की बात छोडनी पडी थी। वास्तव में उसको उसके सैनिक अफसरों ही ने धोका दिया, अन्यथा उसका झण्डा काले समुद्र तक अवश्य लहरा जाता।

उपरोक्त बातें मेरे अध्यापक मि० पोलन बडी गम्भीरता से मुझे मार्ग मे समझाते जाते थे। इस प्रकार ज्ञानोपार्जन करते हुए हम सब निकोलस्काय जा पहुँचे।

यहाँ का भी दृश्य अतीव सुहावना था। एक परम रम्य उद्यान अपनी अनुपम छटा से मन को मुग्ध कर रहा था। गुलाब, लिली, भूमिपद्म आदि नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्प

अपनी सुगन्ध युक्त वायु द्वारा हृदय को प्रफुल्ल एवं दूसरी ओर मेवों के वृक्ष चित्त को चलायमान कर रहे थे। पिता जी के न होने से हम स्वतन्त्र थे। माता जी के लड़का हो जाने से वे रात दिन उनके ध्यान में रहती। उनको हमारा कुछ भी ध्यान न था इस कारण और भी स्वच्छन्दता थी। यहाँ पर मेरा विशेष समय मि० पोजन के साथ ही बीतता था, जो नित्य नई ऐतिहासिक कथाएं और विप्लवों का इतिहास सुनाया करते थे।

उपरोक्त बातें सुनते सुनते मुझे विप्लव की बातों से बड़ी सहानुभूति हो गई। बारह वर्ष ही की अवस्था से मुझे उपन्यास लिखने का चाव लगा। मैंने पहला उपन्यास निकोलस्काय में ही प्रारम्भ किया था।

दासता

अकस्मात सन् १८५२ ईस्वी में मेरा भाई एलेक्जेण्डर पदाभिलाषी अवैतनिक सैनिकों (Corps of Cadets*) के दल में कार्य सीखने के लिए भेज दिया गया। इस सैन्य-दल का निवास स्थान हमारे घर से लगभग ५ मील की दूरी पर था। इस कारण भाई से भेंट प्रायः छुट्टियों में तथा रविवार को होती थी। पाठशाला में साहित्य में प्रवीण कुछ अध्यापकों की अनुकम्पा से एलेक्जेण्डर की मेधाशक्ति बलवती हो गई। पाठक गण आगे चलकर देखेंगे कि उसकी इस उन्नति से मेरी उन्नति पर कितना प्रभाव पड़ा। वास्तव में एक प्रेमी,

* कुलीन युवा पुरुषों का वह दल जो पद पाने की आशा से बिना वेतन सेना में काम करता है।

बुद्धिमान ज्येष्ठ भ्राता का मिलना भी सौभाग्य की बात है। मैं अभी घर ही पर था, क्योंकि पार्श्व अनुचरो (Corps of pages) के दल मे प्रविष्ट होने की मेरी बारी अभी नही आई थी। इस भाति १५ वर्ष की अवस्था तक मैं घर ही पर रहा। मि० पोलन के स्थान पर पिता जी ने एक जर्मन अध्यापक की नियुक्ति कर दी थी, पर, वे थोडे ही दिन रहकर अपने आप चले गये। दूसरे शरद्काल में पिता जी ने मुझे रसियन अध्यापक स्मिरनाफ के साथ एक पाठशाला मे भेज दिया। वहाँ पर हम दोनों में गहरी मित्रता हो गई और स्मिरनाफ के उद्योग से सन् १८५५ ई० से लेकर सन् १८५७ ई० तक मुझे साहित्य मे उन्नति करने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ।

दासत्व प्रथा के अन्तिम दिवस सन्निकट ही थे। इसका इतिहास हाल ही का इतिहास है। पर, तो भी रूस में ऐसे थोडे ही पुरुष होंगे जो दासता की वास्तविकता जानते हों। हाँ, यह तो सम्भव हो सकता है कि मनुष्यों के मस्तिष्कों मे उसका एक अस्पष्ट ध्यान खिचा हुआ हो, पर, वे कारण और उनसे होने वाले मनुष्यों पर मानसिक एवं कायिक प्रभाव साधारण तौर पर न समझे गये थे।

वास्तव में यह महान् आश्चर्य की बात है कि एक संस्था तथा उसके सामाजिक परिणाम उसके अन्त होते ही बडी शीघ्रता से मनुष्यों के विचारों में से अन्तर्हित हो जाते हैं, मानव-समाज एव संसार की वस्तुये किस प्रकार परिवर्तन-शील हैं ॥ यहाँ पर मैं केवल उन्हीं उदाहरणों द्वारा दासता का दिग्दर्शन आपको कराऊँगा, जिनको मैंने स्वयं अपने नेत्रों से अवलोकन किया है। आप देखेंगे कि धन-मद में चूर रहने

वाले व्यक्ति, दासों पर छोटी मोटी बातों पर भी कैसी निर्दयता का व्यवहार करते हैं,—

सकुचित तथा भय से व्याकुल उलीना नाम की दासी पिता जी के कमरे में प्रवेश करना चाहती है, पर, भय के कारण उसके पैर आगे नहीं बढ़ रहे हैं, देरी होने से भी स्वामी की क्रोधाग्नि प्रज्वलित होने का भय खाये डालता है। अतएव नयनों को मूंद कांपती हुई वह प्रवेश करती है।

पिता जी—क्योंजी उलीना?

उलीना—स्वामी! चाय समाप्त हो गई। शक्कर केवल २० पोण्ड रह गई है तथा और भी वस्तुएँ समाप्त होने वाली हैं।

पिता जी—(उच्च स्वर से) चोर, डाकू! और तुम—तुम भी उनके साथ हो! यह कहते हुए सारा कमरा उनकी आवाज से गूंज गया। माता भी वहां से चुपचाप इस लिए खिसक गईं कि उस तूफान का सामना केवल उलीना ही को करना पड़े। पर, पिता जी ने क्रोध में आकर फार्ल द्वारा माता को फिर बुलवा भेजा और दो चार वाग्बाणों से उनका भी सत्कार कर दिया। तत्पश्चात् इस विषय की जाँच करने को उद्यत ही हुए थे कि उनका ध्यान घास की ओर जा पहुँचा। उलीना को उसी प्रकार कांपता हुआ छोड़ वे चिल्ला कर फार्ल से कहने लगे,—"फार्ल, शीघ्र जाओ, घास को तो तौलो, शाहजादी तौल का निरीक्षण करेंगी।" स्वयं पास वाली मेज पर बैठ कर हिसाब लगाने लगे कि अब तक कितनी घास बचना चाहिए। कुछ समय के बाद फार्ल ने सईस को साथ लिये हुए कमरे में प्रवेश किया, बस फिर क्या था, पिता उसको देखते ही चाबुक ले जुट गये। लात, घूंसा और जूते की ठोकरों से उसको

धराशायी कर दिया। प्रहारों से विह्वल सईस बारम्बार कह रहा था, "स्वामिन्! दुबारा हिसाब लगाइये, आप कहीं भूल गये हैं।" दो ठोकरें और जमा कर पिता जी दुबारा हिसाब लगाने लगे. वास्तव में हिसाब में भूल हो गई थी। पर, "जबरदस्त का ठेगा सिर पर" वाली लोकोक्ति के अनुसार पिता जी फिर भी सईस ही का अपराध बतलाते हुए उससे बोले,—"अबे, ना जान पड़ता है कि तू ने घोड़ों को पर्याप्त घास नहीं खिलाई, भूखों मार डाला है।" बेचारा सईस बारम्बार हाथ जोड कर प्रार्थना करने लगा कि, "स्वामी, आप चाहे किसी से पूछ लीजिए, मैंने घोड़ों को कम घास नहीं दी। यदि मैंने कम घास खिलाई हो तो जो चाहिए सो दण्ड दीजिए।" फार्ल को उस अवसर पर दया आ गई और उसने उसकी बात की पुष्टि करदी। पर, पिता जी अभी शान्त क्यों होने लगे। उन्होंने तुरन्त मकार को बुला भेजा। उसके आते ही पिता जी उस को खरी खोटी कहने और उसके विगत अपराधों को सुनाने लगे, "तूने शराब पी थी, बस, ऐसा ही करता रहता है।"

मकार—स्वामी, मैंने नहीं पी थी।

यह सुनते ही पिता जी आवेश में आकर गरज उठे, "तूने, तूने शराब नहीं पी, तो रकाबियां कैसे टूट गईं?"

वास्तव में इस सब मार-पीट और कलह का कारण केवल यही था कि कल शाम को मकार से रकाबियां टूट गई थीं।

मकार—स्वामी! धोखे से हाथ से छूट गईं!

पिता जी—ठीक, अभी बताए देते हैं। फार्ल! इसको तुरन्त थाने में ले जाओ और १०० बेंत लगवाओ।

घर भर में सन्नाटा छा गया और भय का साम्राज्य स्थापित होगया। सन्ध्या का समय था, लगभग ४ बजे होंगे। हम सब भोजन करने बैठे थे, सामने नाना प्रकार के लावण्ययुक्त भोजनों से मेजें सजी हुई थीं अनेकों दास-दासी कर बांधे एक पंक्ति में खड़े थे, पर, नित्य की भांति मकार उनमें न दीख रहा था। यह देख कर सौतेली मां ने तुरन्त उसे बुला लाने की आज्ञा दी। वह बेचारा लगड़ाता हुआ, वेदना से विह्वल, नीची दृष्टि किये हुए पंक्ति में आ खड़ा हुआ। अत्याचार-प्रपीडित मकार में खडे रहने की सामर्थ्य न थी, पर, खड़े रहने के लिए वह विवश था। कुछ काल पश्चात् माता जी ने भोजन करने की आज्ञा दी, पर, मेरा हृदय इस अत्याचार से अधीर हो रहा था।

भोजन-क्रिया समाप्त होते ही मैं चुपके से अँधेरे में होकर मकार के समीप जा पहुँचा। उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर मैं सान्त्वना देना ही चाहता था कि वह हाथ छुटा कर सिसक-सिसक कर रोने लगा। मेरा गला भर आया, मैं अश्रुपात करता हुआ कहने लगा, "मकार, यह क्या ?"

मकार—"कुछ नहीं, कृपया मुझे एकान्त में रहने दीजिए, आप जाइये, क्या आप भी बडे होकर अपने पिता का अनुकरण न करेंगे ?"'

मैं—"नहीं कदापि नहीं। पर इस समय हम लाचार हैं।"

यहाँ पर पाठकों से मैं यह बात कह देना चाहता हूँ कि इन सब बातों के होते हुए भी हमारे पिता और-और पृथ्वी-पतियों की अपेक्षा अधिक दयालु समझे जाते थे। और वास्तव

में वे कुत्तों से कहीं अच्छे थे। मैं स्वयं देखता था कि और-और घरों में नित्यप्रति ऐसे अत्याचार होते रहते थे। कोड़े लगवाना, उलटा टँगवा देना, यह तो उस समय धनाढ्यों की साधारण सी बातें हो रही थी। यही नहीं, अभागे दासों की दुरावस्थाओं का नाटक यहीं पर समाप्त न होकर और भी विषम रूप धारण किया करता था। ये बेचारे साधारण सी साधारण स्वतन्त्रता के लिए तरसाये जाते थे। यहाँ तक कि विवाह आदि करने की स्वतन्त्रता भी इन लोगों को प्राप्त न थी। एक समय की बात है, एक ज़मीदार ने अपने गाँव में जाकर देखा कि जन सख्या में कुछ कमी हुई है। उसने मुखिया को तुरन्त आज्ञा दी कि विवाह योग्य सभी बालक, बालिकाओं की सूची तैयार करो। वह सूची बनने तक वहीं ठहरा रहा। सूची बन जाने पर उसने बालक, कन्याओं के जोड़े मिलाये और चलते समय आज्ञा दी कि इतने विवाह इस सप्ताह में अवश्य ही हो जाना चाहिए। इस आज्ञा से गाँव भर में त्राहि त्राहि मच गई। युवा, बालक-कन्यायें तथा उनके माता-पिता निराशा रूपी अन्धकार में तल्लीन होकर अश्रुपात करने लगे। अन्ना ने अपना विवाह जिरीगोरी के साथ निश्चय किया था, किसी के माता-पिता ने अपनी कन्या के लिए अमुक वर को पक्का किया था, पर, उनके सब प्रयत्न निष्फल हुए। स्वामी की आज्ञा है कि अमुक का विवाह अमुक ही के साथ होगा। अन्त में विवाहों का जलूस शव के सदृश गिर्जाघर पहुँचा। विवाह का समय है, पर, आनन्द और उल्लास का कहीं पता नहीं। गिरजे में अशान्ति का साम्राज्य है, चारों ओर चीत्कार मचा हुआ है। परासका अपना विवाह करने से अनिच्छा

प्रकट कर रही है। उधर वर भी उससे विवाह करने को सहमत नहीं है। होते होते यह समाचार पृथ्वीपति के कानों तक पहुँचा। वह सुनते ही आगबबूला होगया। उसने तत्काल पादरी को सूचना भेजी, "उस लम्बी डाढ़ीवाले से कह दो कि वह आज्ञानुसार सब विवाह शीघ्र सम्पन्न करादे, इसी में उसकी कुशल है। नहीं तो, उसे देश निकाले का दण्ड भोगना पड़ेगा और परासकृा के परिवार को असीम यातनाओं का सामना करना पड़ेगा।"

आज्ञा होते ही सब बालक और कन्याएँ घेर ली गईं और उनका विवाह बलात् कर दिया गया। ऐसे विवाह उन दिनों इतने प्रचलित हो रहे थे कि प्रत्येक युवक-युवती सुख की नींद सोने को तरसते थे। यदि कोई युवक किसी प्रकार धोखा देकर निकल भागता तो वह तुरन्त सेना में भेज दिया जाता। निकोलस् प्रथम के समय में प्रत्येक मनुष्य का सेना में भरती होना अनिवार्य न था, "नोबिल" और व्यापारी इस से मुक्त थे। पर, इन नोबिलों के साथ राज्य की ओर से यह समझौता था कि जब कभी सैनिकों की आवश्यकता राज्य को पड़ेगी तो इन नोबिलों को सैनिक देने पड़ेंगे। इस लिए, प्रत्येक गाँव में मुखियों के पास एक नामावली तैयार रहती थी जिस से आवश्यकता के समय यथाक्रम युवक सेना में भेजे जा सकें। जमींदारों या नोबिलों का इन बेचारे ग्रामीण भाइयों पर पूरा अधिकार था। क्रोधित होने पर वे नियमों का उल्लंघन तक करके किसी को भी सेना में बलात् भेज सकते थे। उस समय का सैनिक-जीवन अत्यन्त त्रास-जनक एवं भयंकर 'था। सैनिक को ५ वर्ष तक बिना किसी आनाकानी के घोर परिश्रम

और नाना प्रकार की यातनाओं का सामना करना पडता था। सच तो यह है कि, उन दिनों सैनिक होना अपने आप को नृशंस अत्याचारियों के हाथों सौंप देना एवं उनकी क्रूरताओं का शिकार हो जाना होता था। प्रपीड़ित नवयुवक इस बात को भली प्रकार जानते थे कि सेना में प्रवेश करते ही अपने प्यारे भाई, बहिन, माता, पिता, स्त्री आदि का वियोग अनेक वर्षों तक के लिए हो जायगा। साथ ही वे इस बात से भी अनभिज्ञ न थे कि वहां पहुँचते ही उनकी पीठों और कोड़ों से कैसा गहरा सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। वे जानते थे कि वे तो एक साधारण सैनिक हैं, वहा पर तो अवैतनिक सैन्य-दल के बालकों को भी, जो सब नोबिलों ही के हैं, वर्च (काँटीली लकडी) के डंडों की मार खानी पडती है। सैनिक-पाठशाला के प्रधान ग्रांड ड्यूक मिरेवल उस अध्यापक को तुरन्त ही निकाल देते थे, जिसके अनुशासन-काल में साल में २-४ बार बालकों को दण्ड न दिलाया जाता। ऐसे अध्यापक के निकालने को दो ही शब्द पर्याप्त थे, "दबाव नहीं!" इस दशा में आप स्वय सोच सकते हैं कि साधारण सैनिकों की क्या दशा होती होगी। मैंने बहुत सी ऐसी घटनाएं देखी हैं, यथार्थ ज्ञान होने के लिए एक उदाहरण मैं पाठकों के सामने रखता हूँ।

अकस्मात् ही क्यों न सही, यदि कोई सैनिक अपने अफसर को सलाम नहीं कर पाया तो बस, केवल इसी अपराध पर वह नृशंस से नृशंस दंड का भागी हो सकता है। उसका गिडगिडाना, क्षमा मांगना, सब निरर्थक है। अफसर की आज्ञा से उसके साथी सैनिक एक पंक्ति में खडे कर दिये जायगे, उन सब के हाथ में एक एक डंडा होगा। तत्पश्चात्

अपराधी उन सैनिकों के सामने हाथ-पैर बांधकर क्रूरता से घसीटा जायगा। उस समय प्रत्येक सैनिक का यह कर्तव्य होगा कि वह अपराधी के ऊपर अपने डंडे से एक बार बल-पूर्वक प्रहार करे। इस समय अध्यक्ष बराबर यह निरीक्षण करता रहेगा कि कोई सैनिक उसके डंडा मारने में कोई कसर तो नहीं करता। इस भांति रक्त से सना हुआ अत्याचारियों के अत्याचार से पीडित वह अभागा अपराधी बेसुध होने पर अस्पताल भेज दिया जाता था। दयाद्र होकर नहीं, केवल इस लिए कि वह होश में आजाय और शेष दंड फिर अपने शरीर पर सहन करे। इन क्रूर अत्याचारों को सहन करते करते वह अपराधी चाहे इस संसार से कूच ही क्यों न कर जाय, आज्ञा में जरा भी अन्तर न पडने दिया जाता। आज्ञा जो होगई सो होगई। उसके प्राण त्यागने पर भी वे लोमहर्षण अत्याचार करने वाले अफसर शांत न होते, वरन् अभ्यस्त पैशाचिक भाव से प्रेरित होकर वे शेष दंड उसके मृतक-शरीर पर पूर्ण करते थे। इस प्रकार किसी सिपाही को पंक्ति में घसिटवा देने की आज्ञा दे देना निकोलस् प्रथम और उसके भाई मिरेवल के लिए एक साधारण सी बात हो रही थी। उन दिनों नवयुवक सेना में जाने से अत्यन्त भयभीत रहते थे। बहुत से नवयुवक इस आज्ञा का समाचार पाते ही कि उनको उनके स्वामी सेना में भेजना चाहते हैं, आत्म-हत्या कर डालते थे। उक्त समाचार से उनके बूढे माता, पिता, स्त्री आदि की क्या दशा हो जाती होगी, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं। सारांश, नोबिल लोग अपने दास-दासियों पर और अपनी प्रजा पर मन-माना अत्याचार कर

सकते थे। वह जो कुछ करते थे उसकी कहीं कोई सुनवाई न थी। उस समय मानों यह भुला दिया गया था कि दास भी मानव-सन्तति हैं और इनके हृदय में भी मानवीय भावनायें उठती हैं। ठीक इन्हीं दिनों में गिरीगोरोविच ने अपने मर्म-स्पर्शी उपन्यासों का प्रकाशन किया। उनसे बड़ा लाभ पहुँचा, क्योंकि उन उपन्यासों को पढ़कर दासों की दुख-कथायें लोगों को मालूम हुईं और उनकी आँखें खुलीं। प्रसिद्ध लेखक तुर्गनीव् ने अपनी पुस्तक "Mumu" मुमू का प्रकाशन कराके वास्तव में बड़ा उपकार किया। उपरोक्त पुस्तकें ऐसी थीं कि इन को पढ़कर कदाचित् कोई भी ऐसा न होगा जिसने उन शहीदों पर खून के दो आँसू न बहाये हों।

दासों को प्रायः अशिक्षित जीवन ही बिताना पड़ता था और जब कभी किसी दास-बालक को शिक्षा दिलाई जाती तो वह शिक्षा बहुधा उसके लिए विपद हो जाती थी। मेरे पिता ने एक होनहार नवयुवक घेरसिम कुरगलाफ़ दास को मास्को की कृषक-पाठशाला में भरती कराया। पढ़ने में वह प्रवीण था, अपनी परीक्षा में वह बड़ी उत्तमता के साथ उत्तीर्ण हुआ, यहाँ तक कि उसने एक स्वर्ण-पदक भी प्राप्त किया। पाठशाला के अध्यक्ष ने उसे विश्वविद्यालय भेज देने के लिए पिता जी से बहुत अनुरोध किया। सचमुच वह यदि यूनीवर्सिटी परीक्षा के लिए कालेज भेज दिया गया होता तो निस्सन्देह वह कृषि-विद्या का एक अच्छा विद्वान सिद्ध होता। पर वह दास था। पिता ने उसे आगे शिक्षा न दिलवा कर घर ही पर खेती-बारी के लिए बुला लिया। घेरसिम को यह बात खली तो बहुत, पर वह क्या कर सकता था। श्रम-जीवियों से वह बड़े प्रेम

और ढंग से काम लेता। सब उससे प्रसन्न रहते और उसे सम्मान की दृष्टि से देखते थे। पर, हमारी सौतेली माँ को न जाने क्या हठ सवार थी, वे सदैव उससे तुच्छ कार्यों के लिए कहा करती थीं। एक समय की बात है, वायु प्रबल रूप से चल रही थी। कमरे के किवाड़ जिसमें मेरी माँ बैठी थी, बार बार खुल जाते थे। अस्तु,—सदैव की भाँति माता जी ने दरबान से जो दरवाजे ही पर बैठा था, न कहकर घेरसिम से दरवाजा पकड़े रहने को कहा। आत्माभिमानी घेरसिम को यह बहुत खला और वह यह कहता हुआ कि दरवाजे पर दरबान बैठा हुआ है, चला गया। फिर क्या होना था—माता जी का अपमान हो गया, वह रोती हुईं पिता जी के समीप पहुँच कर कहने लगीं,—"घेरसिम को आपने बहुत स्वतन्त्रता दे रखी है। आज उसने मेरा अपमान किया है।" मैंने तुरन्त उसका पक्ष लिया। पिता जी को बहुत समझाया बुझाया, पर उन्होंने एक न सुनी। तुरन्त उसे भर्ती में सम्मिलित करा के सेना में भेज दिये जाने की आज्ञा दे दी। तत्काल घेरसिम के जञ्जीर पड़ गई और वह एक सैनिक (सिपाही) बना कर सेना में भेज दिया गया। हाँ, उस समय का वह दृश्य! उसकी वह दशा! उसका वह करुण-क्रन्दन! एवं उसके माता पिता का वह हृदय-विदारक चीत्कार! मुझे कभी न भूलेगा। उसकी समस्त आशाएं बालू की भीति के सदृश नष्ट हो गईं। परन्तु, वहाँ भी उसके भाग्य ने पलटा खाया। उसी वर्ष निकोलस् प्रथम की मृत्यु हुई और सैनिक-विभाग में किसी प्रकार कुछ थोड़ा सा सुधार हुआ। घेरसिम पढ़ा-लिखा प्रवीण तो था ही, अपनी बुद्धि

के प्रभाव से थोड़े ही दिनों में एक सम्मानित पद पर क्लर्क हो गया, और धीरे धीरे सैनिक-विभाग में उसका बड़ा प्रताप हो गया। मेरे पिता उस समय एक सैनिक पद के लिए बड़े लालायित हो रहे थे। मेरी माँ भी उनके लिए जी-तोड़ परिश्रम कर रही थीं। उनको पता लगा कि उनका काम अमुक क्लर्क घेरसिम से चल सकता है। लज्जित होकर मेरी माँ और पिता दोनों उसके समीप पहुँचे। घेरसिम एक उदार स्वभावापन्न बालक था, उसने इन दोनों की बड़ी आव-भगत की, भोजन कराया और अन्त में उद्योग करके उनकी उद्देश-पूर्ति भी करवा दी।

उन युवक-युवतियों का प्रियजनों से विच्छेद होना, द्यूत (जुआ) के दावों में दासों को हारना, अथवा दो शिकारी कुत्तों ही के परिवर्तन में दासों को निष्ठुर स्वभावापन्न प्रभुओं के हाथों, सुदूरस्थ प्रदेशों को बसाने के लिए बेच डालना, अस्तबल में खड़ा करके कोड़े लगवाना, प्रेम शून्य विवाह के लिए बाधित किये जाने पर कन्याओं का आत्महत्या कर लेना, प्रभुओं के पट्टों की डोरियों से शूली का काम लेकर प्राण-विसर्जन कर देने की दुख भरी कथाएँ आदि अनेकों ऐसी बातें हैं जो वहाँ नित्य-प्रति होती रहती थीं, और जिनके स्मरण मात्र से हृदय कम्पायमान हो जाता है। निर्धनता की तो बात ही क्या कहूँ। मैं समझता हूँ कि मेरे पास इतना शब्द-भण्डार नहीं है कि उन दुरावस्थाओं का दिग्दर्शन आपको यथार्थ रूप में करा सकूं। दास लोग नित्य-प्रति यह प्रयत्न किया करते थे कि वे किसी प्रकार भी स्वतंत्र हों, क्योंकि उनकी समस्त दुरावस्थाओं को निवारण करने के लिए यही एक रामबाण

औषधि थी। एक समय की बात है, मेरे पिता मुझ से कहने लगे—"तुम्हारी माँ कल रात को मेरे समीप आईं। तुम नवयुवकों को कदाचित् विश्वास न होगा, परन्तु घटना सच्ची है। मैं लिखते लिखते ऊँघ गया था, उसी दशा मे, मैंने पीछे से, श्वेत चादर पहने हुए कमरे मे उनको प्रवेश करते देखा। मै सम्हल कर बैठ गया, वह बडे धीमे स्वर में मुझ से कहने लगीं—"जब मै इस ससार से विदा हो रही थी, आपने मुझे माशा को मुक्त कर देने का वचन दिया था। किन्तु, एक वर्ष व्यतीत हो गया, आपने वचन पूरा न किया, क्या भूल गये? सुनते ही मैं भयभीत होकर कुर्सी पर से उछल पडा, पर, वह तुरन्त अन्तर्धान हो गई। मैंने सेवकों से पूछा, पर किसी ने उनको नहीं देखा था। सवेरा होते ही मैंने माशा को मुक्त कर दिया।" यह कथा बडी विचित्र है। आप इससे स्वामियों और दासों की मनोवृत्ति का पता लगा सकेंगे। कई वर्ष पश्चात, पिता की मृत्यु के उपरान्त माशा उनकी मृत्यु-क्रिया मे सम्मिलित होने आई। उसका विवाह हो चुका था और वह अपने गार्हस्थ्य जीवन में सुखी थी। मेरे भाई एलेक्जेण्डर साधारण तौर पर ही, उसको, माता के साक्षात् होने की कथा सुनाने लगे। सुन कर कुछ मुसकरा कर उसने कहा—"यह बात पुरानी हो चुकी है, इस लिए आप से कपट न करके सत्य वृत्तान्त सुनाती हूँ। एक वर्ष व्यतीत होने के अनन्तर जब मैंने देखा कि आपके पिता मुझे मुक्त कर देने की बात भूल गये हैं, तो एक दिन श्वेत वस्त्र धारण करके आपकी माता का स्वांग भर कर मैं उनके समीप गई और उनको आपकी माता के वचनों का स्मरण कराया। फल यह हुआ कि सवेरा होते ही मैं मुक्त कर दी

गई। मैं समझती हूँ कि सच्ची बात जान कर आप कुछ बुरा न मानेंगे।" भाई ने कहा—"नहीं, कदापि नहीं।"

दासों के स्वामी अपने स्वभाव से विवश होकर दासों के साथ क्रूरता का व्यवहार करते थे। वे बहुधा इस क्रूरता का अनुभव भी करते थे। एक घटना सुनिये :—

दासता का अन्त हो चुका। पिता नवीन स्थिति पर तीव्र आलोचना कर रहे थे। उनके बहुत-कुछ कहने-सुनने पर मैंने कहा—"पिता जी, आप मेरी इस बात से तो सहमत होंगे कि आपने बहुधा दासों को अकारण ही पीटा है।" पिता जी ने उत्तर दिया—"इन लोगों के साथ इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता।" पर, यह कहने के अनन्तर वे आराम-कुर्सी पर लेट गये और फिर कुछ विचार कर दबी जबान से बोले—"किन्तु, मैंने जो कुछ किया वह प्रशंसनीय नहीं है।"

निकोलस् प्रथम की मृत्यु।

मुझे क्रीमियन युद्ध का भलीभाँति स्मरण है। यद्यपि इसका प्रभाव मास्को निवासियों पर और स्थानों की अपेक्षा अधिक न पड़ा था, फिर भी वहाँ प्रत्येक घर में पट्टियाँ और मलहम तैयार हो रही थीं, पर, धन लोभ में इन का बहुत सा भाग चुराया जाकर विपक्षियों के हाथों बेचा जा रहा था। वास्तव में उस समय देश भर में उत्साह के स्थान पर अधिकतर उदासीनता ही के भाव दृष्टिगोचर हो रहे थे। साथ ही कुछ स्थानों पर नवयुवकों में जोश भी दिखलाई पड़ रहा था। मेरा भाई निकोलस् भी इस युद्ध-ज्वर से न

बच पाया। वह अपना पठन-पाठन-कार्य्य समाप्त किये बिना ही कोनशस की सेना मे सम्मिलित हो युद्ध क्षेत्र के लिए प्रस्थान कर गया। तत्पश्चात् मुझे उसके फिर कभी दर्शन न हुए।

शरद् ऋतु सन् १८५४ ई० मे माता जी की दो बहनें और, हमारे गृह मे आकर रहने लगी। ये सेवसट्य ूल की रहने वाली थीं, पर इस युद्ध मे उन्हे प्राण-रक्षा के लिए सब कुछ छोड पैदल ही मास्को तक आना पड़ा। मेरी अवस्था उस समय १३ वर्ष की थी। उनमे से छोटी बहन से मेरी मित्रता होगई। बड़ी बहन जिसकी आयु लगभग ३० वर्ष थी, प्राय हम को अपनी दुख भरी कथा सुनाया करती थी।

सेवसट्य ूल के नष्ट किये जाने के समाचार सुनाई पड रहे थे। अन्त मे सुनाई पडा कि उक्त नगर बमो से उडा दिया गया। उस दिन समस्त रूस मे शोक छा गया। हम समझते है, कदाचित् कोई भी ऐसा रूसी न होगा जिसने उपरोक्त समाचार पाकर दो आसू न बहाये हो।

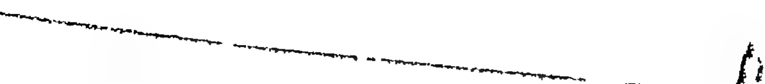
१८ फरवरी सन् १८५५ ई० का दिन था। सन्ध्या हो रही थी। मै माता जी की छोटी बहन के साथ बाहर घूम रहा था। इसी समय एक राजकीय दूत द्वारा निकोलस् प्रथम जार की भयानक बीमारी के समाचार मिले। तत्क्षण ये समाचार पुलिस वालों द्वारा नगर भर में फैला दिये गये। उपर्युक्त समाचार सुनते ही नोबल और धनी-मानी लोग गिरजे में जा-जाकर उनके स्वास्थ्य-निमित्त प्रार्थना करने लगे। दूसरे शनिवार को रोग और विषम होजाने के समाचार प्राप्त हुए। इस समय प्रायः समस्त नोबिल समुदाय विशेष कर यह बात देख कर अधिक बेचैन हुआ कि साधारण जनता किंचित्मात्र

भी खिन्न नहीं प्रतीत हो रही है। ज़ार के सम्बन्ध में नाना प्रकार की किम्बदन्तियाँ उड़ रही थी। सेवकगण, श्रमजीवी एवं किसान समुदाय इधर-उधर कानाफूसी करता दृष्टि पड़ रहा था। नोवल लोग मानसिक भूतों की कल्पना करके, इन किसानों और श्रमजीवियों मे विप्लव की आशङ्का से भयभीत और अधीर हो रहे थे। यह दशा प्रायः सभी गाँवों और नगरो की थी। परन्तु सेण्ट पीटर्सवर्ग मे और ही रंग था। वहाँ, जहाँ देखो वहाँ, नवयुवक जार के रुग्ण होने का समाचार कह करके परस्पर गाढालिंगन कर रहे थे। सब का ध्यान था कि ध्वसकारी युद्ध का अन्त होगा और दास एवं किसानों का उद्धार होगा। बाजारों मे जहाँ-तहाँ "विष-विष" भी सुनाई पड़ रहा था। किन्तु, बात वास्तव में यह न थी, कुछ और ही बात थी। जार ने विषय-भोग का आनन्द पाने के लिए अधिक औषधि खा ली थी और उसके तीक्ष्ण प्रभाव को न सह सके थे। मेरे घर से एक नौकर नित्यप्रति सेण्ट पीटर्सवर्ग जाकर समाचार लाता था। उस समय के समाचारों से कृषक-समुदाय प्रसन्न एवं धनी लोग दुखी हो रहे थे। ये बातें हो ही रही थीं कि निकोलस् प्रथम का मृत्यु-समाचार आ पहुँचा। अस्तु, सब मनुष्यों के हृदय में आशा का सञ्चार हो चला कि युद्ध की अन्त्येष्टि क्रिया अब शीघ्र ही होगी।

मानसिक विकाश

अगस्त मास सन् १८४५ ई० मे जब मेरी आयु लगभग १५ वर्ष के होगी, पार्श्व अनुचरों (Corps of pages) के दल में प्रविष्ट होने की मेरी भी पारी आई।

जब मैंने पाठशाला के लिए घर छोड़ा था, उस समय मेरी आयु अधिक न थी, पर, मानवी-स्वभाव बहुधा अल्पायु में भी स्थिर हो जाते हैं। मुझे स्पष्ट याद है कि शैशव काल में मैं बहुत कुछ वैसा ही था, जैसा कि आगे चल कर मैं भविष्य में होने वाला था। मेरी रुचि, मेरी प्रवृत्ति (चित्त का झुकाव) एक प्रकार से निश्चल हो चुकी थी। मेरे इस मानसिक विकाश का बहुत कुछ श्रेय मेरे श्रद्धेय अध्यापक मि० सिमरनाफ़ को है। उस समय यह प्रथा प्रचलित थी कि बालकों के सुधार के लिए उनके माता-पिता प्रायः किसी प्रवीण एवं परीक्षित सदाचारी विद्यार्थी को घर में रख लेते थे। वह निरन्तर शिक्षा देने के अतिरिक्त उन बालकों को सदाचारी भी बनाता था। बहुधा उन सब का, आपस में भ्रातृ-स्नेह सा स्थापित हो जाया करता था। निकोलस् प्रथम के कटु शासन काल में अच्छे अच्छे लेखकों के ऊपर सेन्सर (Censor) लगा हुआ था, उत्तम उत्तम पुस्तकें न छप सकती थीं। किन्तु, मेरे अध्यापक हमको इन बातों का ज्ञान पत्रों पर लिख लिख कर करवाते थे। वे किसी न किसी प्रकार से पुसकिन, लरमनटाफ़, ए० के० टालस्टाय, रिलाफ तथा जोगल आदि महापुरुषों के लेख व कवितायें दिखला ही देते थे। मेरे अध्यापक उस समय जोगल की मृतात्मा (Dead soul) नामक पुस्तक को उतारते रहते और मैं भी उनके इस कार्य्य मे बराबर योग दिया करता था। इस पुस्तक का छपना राजाज्ञा से बन्द था। सुप्रसिद्ध लेखक जोगल की मृत्यु सन् १८५१ ई० में हुई थी। उन दिनों हम केवल ६ वर्ष ही के थे। पर मुझे स्मरण है कि उस दिन देश भर में हाहाकार मच गया था। रूस के प्रसिद्ध



वे शान्त हो गये। इसके बाद समय ने पलटा खाया और मुझे विवश हो पत्र का कार्य्य छोड़ना पडा। पिता की इच्छानुसार मैं सन् १८५७ ई० में सैनिक पाठशाला में जा पहुँचा।

पार्श्व अनुचरों का दल

मेरे पिता की चिर-अभिलाषित इच्छा पूर्ण हुई। मेरी आयु अभी सैनिक पाठशाला जाने की न हो पाई थी कि एक स्थान रिक्त हुआ और मैं तुरन्त पाठशाला में सेन्ट पीटर्सबर्ग बुला लिया गया। इस समय यहां लगभग १५० विद्यार्थी थे, जो सब धनी-मानी नोबिलों ही के आत्मज थे। चार, पांच वर्ष पश्चात् जो बालक यहां की सर्वोच्च परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते थे, उन्हें किसी न किसी रेजीमेन्ट का नेतृत्व प्राप्त हो जाता था। उस समय इस बात पर जरा भी ध्यान न दिया जाता था कि किस रेजीमेण्ट में कितने पदाधिकारी होगये हैं। विद्यार्थी अपनी इच्छा के अनुसार तुरन्त पदाधिकारी बना दिया जाता। पर, अन्तिम विभाग के प्रथम सोलह विद्यार्थी खास बरदार (Pages de Chambre) बनाये जाकर महलों में भेज दिये जाते थे। ये जार के निजी आदमी बन जाते थे। उन दिनों यह पदवी पा लेना कोई छोटी सी बात न थी। सहस्रों माता पिता इस के लिए लालायित रहते थे, क्योंकि उनकी धारणा थी कि यहाँ से उनके पुत्र किसी न किसी ऊँचे पद पर अवश्य जा पहुँचेंगे।

जब मैं 'कोर आफ पेजस' मे अर्थात् उक्त पाठशाला में प्रविष्ट हुआ तो मैंने वहां की आन्तरिक अवस्था को परिवर्तन-

भील पाया। उस समय समस्त रूस जो निकोलस प्रथम के मायाजाल से अज्ञान-पाश में फँस कर प्रगाढ़ निद्रा में अभिभूत हो रहा था, उत्पीड़ित हो, जागृतावस्था में पदार्पण कर रहा था। मेरी पाठशाला भी तज्जनित प्रभाव से वंचित न थी। मैं नहीं कह सकता कि यदि मैं इस पाठशाला में दो तीन वर्ष पहले आगया होता तो मेरी मनोवृत्ति क्या हुई होती ? या तो मेरी हृदयस्थ शुभ-कामनाएं विलीन होगई होती या न जाने किस परिणाम के साथ वहां से निकाला गया होता। पर प्रसन्नता की बात थी कि सन् १८५७ ई० में देश मे परिवर्तन की गति विकास की ओर अग्रसर थी। कोर के Director (अनुशासक) एक वयोवृद्ध जेनरल जेलत्खिन थे। परन्तु यह नाममात्र के ही अधिष्ठाता थे। कोर के सच्चे अधिष्ठाता अथवा अनुशासक एक फरासीसी करनल जेरारदात्त थे। यह नाटे डील के, अत्यन्त कृश शरीर वाले थे, नयन तीक्ष्ण, काले और तिरस्कार भाव पूरित थे। इनकी छोटी छोटी पेंठी हुई मूछें विचित्र थीं ! हृदय के काले, अत्याचारी तथा सहज ही में बालकों से द्वेष मानकर उनको अपनी कूटनीति का आखेट बनाने में प्रवीण थे। यह द्वेष कुछ झूठे-सच्चे अपराधों के मढ़ देने मात्र ही से प्रकट न होकर उनके दुर्व्यवहारों से तथा उनकी आकृति, वार्त्तालापशैली आदि से भी प्रत्यक्ष होता रहता था।

उदाहरणतया, वह बातें किसी से करता पर उसकी द्वेषाभिभूत दृष्टि बालक के छिद्रान्वेषण में लगी रहती। उसका साधारण हँसना भी बालकों को प्रिय न था, क्योंकि उसकी किसी बात में बालकों को विश्वास न था। प्रबन्ध-शक्ति की

तो उसमें गन्ध तक न पाई जाती थी। उसके सम्बन्ध में मैं नाना प्रकार की कथाएँ सुनने लगा। वह चुपचाप बालकों के डेस्कों को, चाबी लगा कर खोल डालता। जहां देखो वह आजाता। रात के समय घटों बालकों के अपराधों को लिखा करता। उसको देखते ही बालकों की स्वतन्त्रता और प्रसन्नता नौ-दो ग्यारह हो जाती। बहुत से भीरु बालकों की आत्मशक्ति निरन्तर भय के कारण अतीव सकुचितावस्था को प्राप्त हो गई थी। मुझे भी न जाने क्या हो गया कि मैं रात दिन उसकी कार्रवाइयों को ही नोट किया करता। सूक्ष्म मे यह समझना चाहिए कि इस करनल के शासन काल मे कोर की आन्तरिक अवस्था क्लेशमूलक हो रही थी। नवीनागन्तुक विद्यार्थियों पर तो आते ही आते वह ऐसी शान जमाता कि वे उसकी धाक को मानने लगते। शाही पेजों द्वारा वह निम्न कक्षाओं के विद्यार्थियों पर नाना प्रकार के अत्याचार करवाता, उन्हें चिढवाता और रुलवाता था। प्रथम श्रेणी के शाही पेज भी करनल का प्रोत्साहन पाकर हम से नाना प्रकार की कुलीगीरी करवाते थे। करनल सब बातें जानता हुआ भी उनकी अव-हेलना किया करता। शाही पेज बहुधा रात के समय खेल तमाशे किया करता और हम सब पांचवीं कक्षा के विद्यार्थी निरर्थक सताए जाते। करनल साहब बड़े चलते-पुर्जा थे। जानते बूझते भी उनके कानों पर जूं तक न रेंगती थी। ये सब बातें मुझे आन्तरिक व्यथा से विह्वल कर रही थीं। शनैः शनैः एक नवीन उत्साह का सचार पाठशाला में होने लगा। सयोग-वश इस बार तीसरे कक्षा के सभी बालक उत्साही एवं बलिष्ठ थे। स्वभावत उनको भी शाही पेजों के ये दुर्व्यवहार खला

करते थे। उनमें से बहुतों से मेरी गाढ़ी मित्रता होगई। अन्त में असन्तोष बढ़ने के कारण शाही पेजों और तीसरे विभाग के विद्यार्थियों में एक गहरी मुठभेड़ होगई। इस उपद्रव में शाही पेजों के गहरी चोटें आईं। करनल ने दौड़ कर बीच बचाव करा दिया, पर मन में वह अतीव कुण्ठित हुआ। फलस्वरूप तीसरे विभाग के बालकों को यातनाएँ झेलनी पड़ीं, परन्तु उस दिन से विपक्षियों की भी आंखें खुल गईं और भविष्य में उनका न तो वह आतङ्क ही रहा और न उनके रात के समय के वे सरकस के स्वांग ही रह गये। यह सब कुछ हुआ, पर हम पांचवें विभाग के बालकों के कष्ट पूर्ववत् बने हुए थे, काम तो पहले की अपेक्षा और भी बढ़ गया था। हमारे सब के लिए एक उद्यान था। हम लोग परिश्रम करके उसे ठीक बनाते, पर शाही पेज बीच ही में आकर हम सब को मार भगाते। एक दिन मैं उद्यान न जाकर अपने कमरे ही में बैठा रहा। उसी समय एक शाही पेज मुझे बैठा देख उद्यान चल कर अपने लिए फल एकत्रित करने को कहने लगा। मैंने तुरन्त उसे उत्तर दिया कि "क्या आप देखते नहीं, मैं पढ़ रहा हूँ।" मेरा इतना कहना था कि वह लाल लाल नेत्र करके मुझे मारने को कमरे में घुस आया। मैं भी झट से एक कोने में जा खड़ा हुआ। उसने कई एक हाथ मारे। मैंने भरसक उन्हें बचाया, पर तो भी पिट ही गया। थोड़ी देर पश्चात् वह गाली देता हुआ बाहर चला गया। मुझे प्रसन्नता थी कि अधिक नहीं पिटा। उस समय से मैंने उनके काम न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करली और सदैव उनको हँसी मज़ाक में ही टरका देता। थोड़े काल पश्चात् वे सब मुझे एक 'विनोदी जीव" के नाम से

पुकारने लगे। अस्तु, मैं भी अपने स्वार्थ के लिए और भी अधिक कृत्रिम विनोदों को प्रदर्शित करने लगा।

क्रमशः ऋतु परिवर्तन से वर्षा ऋतु का पदार्पण हुआ। खेल-कूदों का कार्य्य-क्रम पलट गया। बाह्य खेल बन्द होगये। प्रायः हम सब अपने अपने कमरों ही में रहा करते। पर शाही पेज अब भी वैसे ही दुखदाई बने हुए थे। वे भीतर बैठे बैठे तास खेलते तो हम लोगों को पारी पारी से पहरा लगाना होता। अन्त में इस बेगार से जी ऊब गया और हम लोगों ने ऐसा न करने का परामर्श किया। सोचते सोचते यही निर्धारित रहा कि बेगार मत दो। यदि वे मारें—जैसी कि बहुत सम्भावना थी—तो सब एक स्वर से चिल्लाकर करनल को जगा दो। हम सब जानते थे कि करनल अवहेलना अवश्य करता है, पर जगा देने पर वह अवश्य ही घटनास्थल पर आ पहुंचेगा। दूसरे दिन ऐसा ही हुआ। शाही पेज एक बालक को कमरे में से पहरा देने के लिए बुलाने लगे। 'नहीं' कहने पर वह खूब ठोंका गया। इधर दो-तीन शाही पेज मुझ से भी चलने को कहने लगे। मेरे इन्कार करने पर वे मुझे बेतों से पीटने लगे। मैं चिल्लाने लगा। मुझे चिल्लाते देख सब लड़के "हाय! हाय! मारडाला।" कह कह कर बड़े जोर जोर से चिल्लाने लगे। उधर तीसरे विभाग के बालकों ने करनल को जगा दिया। शोरगुल सुनते ही वह दौड़ा आया। कुछ समय तक चुपचाप खड़ा रह कर वह बोला, "बात अनुचित हुई। बालकों को इस प्रकार न मारना चाहिए।" मेरी कोह-नियों से खून बह रहा था। पीठ पर कोड़े उपट रहे थे। मैं वेदना से विह्वल होने पर भी मन में सुखी हो रहा था, क्योंकि

मुझे आशा थी कि इस मारपीट के परिणाम में बेगार का अन्त अवश्य होगा। करनल मन ही मन बड़ा क्रुद्ध था; क्योंकि यह घटना उसकी सत्ता में कालिमा रूप हो रही थी। अतएव वह हम सब को बड़ी कोप दृष्टि से देखा करता।

होते होते शीत ऋतु आगई और उसका प्रभाव मुझ पर अहितकर सिद्ध हुआ। मैं अस्पताल भेज दिया गया। विषम ज्वर के साथ साथ मुझे पेचिस का भी रोग था। डाक्टर साहब बड़े दयालु थे और मेरी चिन्ता उनको बहुत थी। करनल साहब भी नित्यप्रति अस्पताल आते थे, पर मुझे खाट पर पड़ा देख चिढ़ाने के लिए यह कहते हुए निकल जाते थे, "देखो—कैसा हट्टा-कट्टा युवक बहाना बनाये खाट पर लेटा हुआ है।" एक बार, दो बार, चार बार—अन्त में मैं उसके कटु तीक्ष्ण-वाणी-व्यभिचार को न सहन कर सका और क्रोधित हो एक दिन उससे कहने लगा, "करनल! आपको यह कहते लज्जा नहीं आती! मैं डाक्टर से कहूँगा कि आप मेरे कमरे में न आया करें।" उक्त वचनों को सुनते ही करनल जलभुन कर खाक होगया। आगे बढ़ चुका था, पर पुनः पीछे लौट कर तीव्र स्वर में कहने लगा, "क्या मैंने अपमान किया! अपमान! शस्त्रालय में दो बन्दूकें हैं, आओ—बाहर—युद्ध हो जाये।" "मुझे हँसी अच्छी नहीं लगती" यह कहते हुए मैंने अपना मुख क्रोध के मारे चादर से ढँक लिया। वह बड़बड़ाता चला गया। बस, उसी दिन से वह वैमनस्य मानने लगा। मेरे तनिक से अपराध को पहाड़ कर दिखाता। मेरी अच्छाइयों को छुपाने में व्यस्त रहता। मैं सब बालकों से ड्रिल (कवायद) में निपुण था पर, उसने अभी तक मुझे कवायद के चिन्ह तक

न दिये थे। एक दिन कवायद का उच्च अफसर कवायद देखने पाठशाला मे आया। वह मेरी ड्रिल देख कर अतीव प्रसन्न हुआ और मुझ से मेरे चिन्हों के बारे मे पूछताछ करने लगा। सुअवसर जानकर मैंने स्पष्ट रूप से तुरन्त कह दिया कि मुझे चिन्ह नही दिये गये। यह सुन कर वह करनल पर बहुत बिगडा। उसने मुझे तत्काल चिन्ह दिलवा दिये। उस समय करनल को बहुत लज्जित होना पडा। शनै शनै करनल साहब का सितारा निस्तेज हो चला। पाठशाला का काम बड़ी शीघ्रता से परिवर्तित हो रहा था। २० वर्ष तक करनल की धाक जमी, उसी की इच्छानुसार कार्य्य हुआ। उसके ढग अनोखे थे। उसके समय में इस बात का तनिक भी ध्यान न था कि कौनसा बालक पढता है या खेलता है। यदि कोई विचार था तो केवल इस बात का कि वह साफ कपडे पहनता है या नहीं? उसके काले चमकीले केश सुगन्धित और घुंघराले हैं या नहीं? सूक्ष्म में करनल साहब लडकों को लड़कियों की सी आकृति का बना बना कर महलों में भेजते थे। प्रत्येक रविवार को तमाशों का प्रतिरूप कराया जाता। कोई शाहजादी बनाया जाता तो कोई ड्यूक। छोटे छोटे बालकों को घुंघराले बाल रखने पडते थे। पर धीरे धीरे बालकों को इनसे घृणा उत्पन्न होने लगी और वे इस प्रकार की बातों को अपमान समझने लगे।

करनल मन ही मन सकुचित था, उसको यह नई उमंग न सुहाती थी। फलस्वरूप नित्यप्रति कलह होने लगा, यहाँ तक कि ये समाचार महलों तक जा पहुँचे। होते होते मामला इतना विषम होगया कि करनल साहब अन्त में अपने पद से

हटा दिये गये और उनका 'फोर आफ पेजस' से कोई सम्बन्ध न रहा।

विद्यालय का दृश्य

समस्त रूस में उस समय शिक्षा की चर्चा छिड़ी हुई थी। पेरिस से सन्धि होते ही सेन्सर की कड़ाई कुछ ढीली होने पर मनुष्यों में और भी तीव्रता के साथ शिक्षा-क्रम पर वादाविवाद होने लगा। जनता की अज्ञानता पाठशाला के अभाव, सिखाने पढ़ाने के बुरे ढङ्ग तथा वे रुकावटें जिन्होंने कि यथार्थ वस्तु के ज्ञान होने से रूस के बालक, युवाओं को लाचार कर रक्खा था—अब जिधर देखिए उधर ही शिक्षित समुदाय के विचारणीय गूढ़ विषय होरहे थे। पत्र-सम्पादकों ने भी इसका अन्दोलन प्रारम्भ कर दिया, जिसके कारण महलों तक में शिक्षा-क्रम पर वादाविवाद छिड़ रहा था और इसी आन्दोलन के प्रभाववश सन् १८५७ ई० में प्रथम बार एक कन्या पाठशाला खोली गई, जिसमें सुशिक्षिता अध्यापिकाओं की नियुक्ति की गई।

हमारे पाठशाला के विद्यार्थियों के हृदयों में भी शिक्षा प्राप्त करने की उत्कण्ठा दिन पर दिन बढ़ रही थी। शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष मि० विकेतार बड़े सुयोग्य विद्वान थे। शासन में तो वे एक ही थे। उन्होंने बड़े परिश्रम से अध्यापकों की खोज करके उन्हें नियुक्त किया था। वे प्रायः सब विश्व-विद्यालयों के प्रोफेसर थे। वास्तव में इन लोगों से पढ़ने में बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। हमारे एक अध्यापक प्रोफेसर

डे गोवरर्की थे जिनकी प्रशंसा चारों ओर हो रही थी। ये हम को रूसी व्याकरण व साहित्य का ज्ञान कराते थे। व्याकरण के एक शुष्क विषय होने के कारण वे हम सबों को होमर के ग्रन्थ एवं भारतवर्ष के शिक्षाप्रद महाभारत की कथाएं सुनाते जाते थे। अस्वस्थ होने के कारण वे जोर से बोल नहीं सकते थे अतएव उनकी आज्ञा से हम सब उनके निकट उनकी मेज़ के समीप ही जा बैठते थे। उनके पाठन-क्रम पर हम सब मुग्ध थे। उनसे पढने मे कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि हृदय मे कुछ ज्ञान प्राप्त हो रहा है। यह तो बहुत कुछ हुआ, पर पुराने सांचे के ढले हुए एक अध्यापक अभी और बच रहे थे, और यह थे हमारे ड्राइङ्ग मास्टर साहब। स्वभाव-वश ये बालकों को सताये बिना न रहते। इनके घंटों मे पढ़ाई लिखाई तो कुछ भी न होती थी, पर छिद्रान्वेषण इतना था कि बालकों की नाकों दम आ रहा था। उच्च विभाग के बालक प्राय. यह ताना मारा करते कि ड्राइङ्ग मास्टर साहब हम लोगों की निर्बलता के कारण ही अभी तक बने हुए हैं।

अतएव हम सबों ने परामर्श करके उनके ठीक करने का उपाय निर्धारित कर लिया। उस दिन के पश्चात् कहीं कोई विद्यार्थी मुह में चुरट दबाए उनसे दियासलाई मांगता चला आता और कहीं कोई डबल रोटी खाता चला आता। वह नित्यप्रति बालकों को पिटवाता और पीटता, पर एक न एक नया स्वांग उसके सामने आ ही जाता। अन्त में सोचते सोचते उसे निकलवाने का एक नया उपाय निश्चित किया गया, और वह यह था कि कल प्रत्येक बालक अपने अपने कोट में एक एक रूल दबाता लावे। और ज्योंही अध्यापक महोदय अपनी

कुर्सी पर बैठें, त्योंहीं मेरी टोपी गिरने के साथ सब मुंह फेर फेर कर अपनी अपनी मेजें ठोंकने लगना और उसके लाख प्रयत्न करने पर भी बन्द न होना।

अस्तु, ऐसा ही हुआ। अध्यापक महोदय के बैठते ही मेजें नगाड़े होगईं। सारी पाठशाला "धम" "धम" की ध्वनि से गूंज उठी। अध्यापक जी बड़े व्याकुल थे, पर उनकी कौन सुनता था। थोड़ी ही देर में इन्सपेक्टर व अन्य पदाधिकारी घटनास्थल पर आ पहुँचे। एकदम शान्ति हो गई। पर, अब पकड़ धकड़ प्रारम्भ हो गई। मैं वहां उस समय सब से बड़ा था और सब से पहले बैठा था। ड्राइङ्ग मास्टर साहब मि० गंज को भी मुझ पर संदेह था। मैं तत्क्षण एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। सब बालकों के बेंत लगाये गये। दस दिन बड़ी दुरावस्था में कटे, जब मैं निकाला गया तो मेरे साथी मेरी बाट जोह रहे थे।

इस घटना से मेरा विभाग सब विभागों में वीर कहलाने लगा। रविवार के दिन हम लोगों ने बड़ा उत्सव मनाया। गंज साहब भी घबड़ाये हुए थे। उनका आतंक धूल में मिल गया और वे स्वयं यहां से जाने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार पुराने ढङ्ग के अन्तिम अध्यापक मि० गंज साहब भी वहां से पृथक कर दिये गये।

भ्रातृ-प्रेम और ज्ञानोपार्जन

मेरा भाई एलेक्जेण्डर उस समय 'कोर आफ़ कैडट्स' में मास्को में पढ़ रहा था। मेरी उसकी चिट्ठी-पत्री बहुत हुआ करती थी। पहले जबकि मैं घर पर था यह

बात असम्भव थी, क्योंकि पिता जी सभी पत्रों को खोल डालते थे, अब कुछ भी लिखने को पूर्ण स्वतन्त्र थे। यदि इस समय कोई कठिनाई थी, तो वह केवल स्टाम्पों के लिए धन व्यय करने की थी। इधर लिखते लिखते थोड़े ही दिनों में इतना अभ्यास हो गया कि थोडे से ही स्थान में बहुत कुछ लिख डालते। मेरे भाई की लिखावट बहुत ही सुन्दर थी। साथ ही वह इतना छोटा लिखता था कि चार पत्रों की बातें एक ही पत्र में आ जावें, और उसमे भी विशेषता यह थी कि वे अक्षर टाइप के सदृश अतीव स्पष्ट होते थे। पूर्व मे तो हम अपनी अपनी स्थिति के विषय में लिखने लगे, पर हाल ही विषय पलट कर सारगर्भित बातों की ओर चले गये। मेरे भाई का यह एक विशेष स्वभाव था कि वह निरर्थक बातों पर कभी भी विचार न करता था। समाज में भी यह विख्यात था कि एलेक्जेण्डर निःसार बातों में नहीं पडता है। इस कारण अपने पत्रों में वह सदैव ही मुझे मानसिक विकास करने तथा अमुक अमुक पुस्तकों को पढने के लिए सम्मति दिया करता था।

सच पूछिए तो मैं ऐसे सहोदर भ्राता को पाकर बड़ा भाग्यशाली था। वास्तव में मेरी बहुत कुछ उन्नति के लिए उन्हीं को श्रेय है। वे बहुधा मुझे भिन्न भिन्न कवियों की कविताओं का रसास्वादन कराते। उनकी एक प्रेषित कविता ने जिसमें कहा गया था—"प्रत्येक मनुष्य का कोई ध्येय होना चाहिए। लक्ष्य-शून्य जीवन, जीवन नहीं।" मुझ पर बड़ा ही प्रभाव डाला। यद्यपि उस समय इस बात की महत्ता को हम पूर्णतया समझ भी न पाये थे, पर उसने अप्रत्यक्ष रूप से मेरे हृदय पर अवश्य ही गहरा प्रभाव डाला। हमारे पिता

हम दोनों को बहुत ही ऊँचा हुआ धन व्यय करने को देते थे। इस कारण हम कोई पुस्तक न खरीद सकते थे। पर इधर उधर रिश्तेदारी में कहीं भी रुपया मिल जाता तो हम दोनों उससे किताबें ही मोल लेते थे। भाई साहब सटर-पटर किताबों के पढ़ने के कट्टर विरोधी थे। उनका कहना था कि किसी पुस्तक को पढ़ने के पूर्व हृदय में कोई जिज्ञासा अवश्य ही होनी चाहिये। फ्रेञ्च उपन्यासों को वे बहुधा भद्दे एवं अश्लील बताया करते थे। शैशव काल में हम को धार्मिक भावों से कुछ भी परिचय न हुआ था। बाइबिल की केवल एक बात मुझे स्मरण थी, और वह था—प्रभु मसीह की यातनाओं का विवरण। बाद में सेन्ट पीटर्सबर्ग में, मैं गिरजाघरों में गया, पर वहां का चरित्र देख कर मुझे बड़ा ही खेद हुआ। इधर एलेक्जेण्डर लूथेरन (Lutheran) मत का मानने वाला हो गया। इस विषय पर उस से बहुत लिखा पढ़ी हुई। अन्त में मैं भी उसी का अनुयायी हो गया। मेरी बहन हेलीना का विवाह भी इस बीच में हो गया। उसका पति सेन्ट पीटर्सबर्ग में ही रहता था। उसके समीप पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। इस कारण प्रत्येक शनिवार को उसके घर जाकर मैं फ्रेञ्च इतिहास और वहां के तत्त्वज्ञानियों की पुस्तकें अध्ययन किया करता। उसके यहां बहुत सी ऐसी पुस्तकें थीं जिनका आना रूस में बन्द था। अतएव स्टाइक्स के सदृश दार्शनिकों के ग्रन्थों को पढ़ने में मैं वहां रात्रि भर व्यतीत कर देता।

विश्व की असीम अनन्तता, प्रकृति की महत्ता एवं उसकी सामञ्जस्यता मेरे हृदय पर अपना पूर्णाधिकार जमा चुकी थी। साथ ही ऊंचे ऊंचे कवियों की रचनाओं ने भी मुझे उस मार्ग

पर अग्रसर होने में पूर्ण योग दिया। उस समय प्राकृतिक विज्ञान अर्थात् गणित, वैद्यक शास्त्र तथा ज्योतिष मेरे विशेष पाठ्य विषय हो रहे थे और इनका अवलोकन मैंने यथासाध्य किया। इसी स्थल पर मैं आपका ध्यान अन्यत्र आकर्षित करके निवेदन करूंगा कि सन् १८५८ ई० से लेकर १८५९ तक रूस मे राजनैतिक-मितव्ययिता की चर्चा बड़े जोरों पर थी। यह टैक्स बद करो—यह व्यापार यों होना चाहिये आदि विषयों पर धड़ाधड़ व्याख्यान हो रहे थे। मै और मेरा भाई भी इसके प्रभाव से मुक्त न था।

होते होते ग्रीष्म ऋतु भी आ पहुँची। पाठशाला के आधे विद्यार्थी जलवायु परिवर्तनार्थ भेज दिये गये। नीचे के विभाग के तथा जिनकी न जाने की इच्छा थी, वे वहीं छोड़ दिये गये। मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता थी कि मैं मास्को जा सकूंगा। वहाँ से मेरा विचार निकोलस्काय भी जाने का था, जहाँ पर कि भाई के साथ विचरने की बहुत ही सम्भावना थी। परन्तु मास्को पहुँच कर मुझे अत्यन्त निराशा हुई। एलेक्जेण्डर के इस वर्ष उतीर्ण न होने के कारण पिता उनसे क्रुद्ध थे। घर पर आने की उन्हें मनाही थी। थोड़े दिन पश्चात् जब मैंने पिता जी से, भाई से मिलने की इच्छा प्रकट की तो वह भी अस्वीकार करदी गई। मैं नाना प्रकार के सङ्कल्प-विकल्प करता हुआ उदास बैठा था, कि सेवकों ने चुपचाप आकर सूचना दी कि आपके भाई आये हुए हैं और वे सेवकों की कोठरी में बैठे हुए हैं। मैं आनन्द से उछल पड़ा और झट जाकर भाई के गले से लिपट गया। कुछ समय तक तो हम दोनों प्रेम की आधिक्यता वश कुछ भी न

बोल सके। उस समय दासियां हम दोनों की ओर देख देख कर मेरी माता का स्मरण कर कर के अश्रुपात करने लगीं। फार्ले ने कुछ भोजन लाकर रख दिया। हम दोनों परस्पर बातें करने लगे। सेवकगण बीच बीच में धीरे धीरे बोलने के लिए सावधान कर जाते थे। चलते समय प्रेम-वश हो मैंने भाई से अनिच्छा होने पर भी प्रार्थना की कि आप रात्रि को कल न आना। कारण कि, मार्ग बहुत ही भयावह है। पर, वह निडर था और दूसरे दिन आ ही गया। उसका विचार तो बराबर आने का था। पर उसके रात्रि को चले जाने की बात पाठशाला में उड़ने लगी और इधर सेवकगण भी पिता जी के भय से व्याकुल हो रहे थे। अतएव वह बराबर न आ पाया। हा! यदि उसके चले आने की बात अध्यक्ष तक पहुँच गई होती तो कैसी भयकर घटना हुई होती !! ओफ! उसका तो विचार करना भी भयानक है !! कोड़ो का लगाया जाना—बेहोश होने पर भी अपमान पूर्वक घसिटवाया जाना आदि न जाने क्या क्या भाई की दुर्गतियाँ हुई होतीं !!! इधर हमारे गृह-सेवकों की भी, आश्रय देने के अपराध में, न जाने क्या क्या दुर्दशाएं हुई होतीं। पर सब बातें दबी रहीं। इस भेंट के रहस्य को सेवकों एवं हम दोनों के अतिरिक्त कोई भी न जानता था

मेले के अनुभव

इसी वर्ष से मैंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया और उसकी खोज-बीन करने लगा। इस कार्य्य से मुझे किसानों के समीप तक पहुँचने का विशेष अवसर प्राप्त

हुआ। प्रति वर्ष जुलाई मास में निकोलस्काय में एक बड़ा मेला "कज़न के जितेन्द्रिय कुमारी" के उपलक्ष में हुआ करता है। सदैव की भाँति आसपास सभी व्योपारी तथा बीस तीस कोस तक के किसान इस अवसर पर यहाँ एकत्रित हो रहे थे। मेरे भाई ने अब की बार इस मेले पर एक बहुत ही सुन्दर लेख लिखा, जिसमें कि आने वाली तथा विक्रय के पश्चात् लौटने वाली सभी चीज़ों का पूरा ब्योरा था। ऐसी सूची तय्यार करने का भार भाई साहब ने मेले से ही प्रथम मेरे ऊपर छोड़ रक्खा था। मेला लगभग दो दिन रहता था। नाना प्रकार की दूकानें साज़-सामानों से भरी हुई दूर तक देखने में आती थीं। स्थान स्थान पर भोजनालयों एवं विश्रामालयों पर धूम मची हुई थी। छोटी छोटी दूकानें तो सैकड़ों ही थीं। गाड़ियों और सवारियों के कारण तो मार्ग ही बन्द सा हो रहा था।

मेला प्रारम्भ होने के पूर्व सभी जन-समुदाय ने ठाठ-बाट के साथ गिरजाघर में प्रार्थनायें की। प्रार्थनाएँ समाप्त होते ही मेला शुरू हो गया। मैं भी एलेक्ज़ेण्डर के बताये कार्य्य की पूर्ति के लिए दूकानदारों से पूँछताँछ करने में जुट गया। अस्तु, आने वाली चीज़ों का तो ठीक ठीक हिसाब मालूम हो गया, पर, बिक्री का ठीक ठीक पता लगाना कठिन था, कारण कि दूकानदारों तक को यह न मालूम था कि कितना माल बिक गया है। पर, उस समय की एक बात मुझे कभी न भूलेगी। और वह किसानों का भोलापन, ईमानदारी एवं उनका दृढ़ तथा शुद्ध निर्णय था। उन्हीं दिनों एक बात का और अनुभव हुआ कि किसानों के साथ वार्तालाप करने में यह आवश्यक नहीं है कि उनसे उन्हीं की बोलचाल की भाषा में बातचीत

की जावे जैसा कि बहुधा हमने अपने मित्रों को करते देखा है। इस दुरंगी भाषा से वे भ्रम में पड़ जाते हैं। इस प्रकार जहाँ तक मेरा ज्ञान है, रूस का प्रत्येक किसान शिक्षित समुदाय की बातों को समझ सकता है, यदि उसमें केवल विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग न किया जावे। साथ ही वे आपके भावों के उड़ान को भी भली प्रकार से नहीं समझ पाते थे। इस भाँति शिक्षित एवं अशिक्षित समुदाय में जो मुख्य अन्तर मुझको प्रतीत हुआ वह केवल इतना ही था कि किसान लोग आप के विचार-सूत्रों एवं तज्जनित परिणामों का बराबर अनुकरण नहीं कर सकते थे।

वे आपकी एक बात सुन लेंगे, दो बात सुन लेंगे, पर, यदि आप बिना किसी विशेष बात के कहे भूमिका बाँधे ही चले जाओगे तो वे कुछ भी न समझ सकेंगे।

दूसरी बात जिसका ज्ञान मुझे वहाँ पर हुआ, यह थी कि किसानों के हृदयों में समता के भाव कितने व्याप्त होगये हैं। जमींदार अथवा पुलिस उनसे मनमानी दासता करवा सकते थे। वे उनकी इच्छा के सामने अभिभूत भी हो सकते थे पर, वे अपने से उनको ऊँचा मानने के लिए कदापि प्रस्तुत न थे। निःसन्देह ही वे भय और बल के सामने दब जाते थे पर, वे बल और भय के उपासक न थे।

छुपाते हुए मनोरंजन का बहाना करके मुझसे बोले "क्या आप भी किराये की गाड़ियों में जाना चाहते हैं?" पर उनका तो कहना ही था कि मैंने स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन मैं किराये की गाड़ी पर सवार हो मास्को को चल दिया। उसी गाड़ी में एक व्यापारी तथा उसकी स्त्री बैठी हुई थी। मार्ग में उनसे परिचय होगया। वे वास्तव में बड़ी खातिरदारी के आदमी थे। इस समय मेरी आयु लग भग १६ वर्ष के होगी। चलते चलते सन्ध्या के समय हम सब एक ग्राम में सराय के समीप जा पहुँचे। यात्रा में मुझे अनेकों अनुभव हुए। पर उक्त सन्ध्या का स्मरण मुझे कभी न भूलेगा। सराय के भीतर एक बड़ी लम्बी-चौड़ी मेज पड़ी थी। उसके दोनों तरफ कुर्सियां पड़ी हुई थीं, जिन पर किसान बैठे हुए चाय पानी उड़ा रहे थे। अस्तु, मैं भी उन्हीं लोगों में बैठ गया। वहां पर मुझे प्रत्येक वस्तु नवीन प्रतीत हो रही थी। यह ग्राम Crown Peasants अर्थात् उन कृषकों का था जो कि कभी दास न रहे थे। इन लोगों का उद्यम विशेष कर कपड़े बुनने का था। वे लोग परस्पर धीरे धीरे बातें कर रहे थे, बीच बीच में हँसी-मनोरञ्जन भी हो जाता था। कुछ आवश्यकीय प्रश्नोत्तरों के पश्चात् मैं भी उनसे बातें करने लगा। फिर क्या था, थोड़े ही समय में किसानों ने मुझे घेर लिया और वे राजधानी सेन्ट पीटर्सबर्ग के विषय में अनेकों बातें पूछने लगे। उनका मुख्य अभिप्राय उस समय दासत्व-प्रथा के नाश होने की अफ़वाहों की सत्यता जानने का था। उस समय सराय का वायुमण्डल उनकी सादगी तथा साम्यप्रियता के भावों से परिपूर्ण हो रहा था। यद्यपि उस रात्रि को उस सराय में

कोई विशेष बात नहीं हुई, पर तो भी उनकी बातों का ऐसा चित्र हृदय में खिंच कर रह गया कि संसार के सर्वोत्तम विश्रामालयों से अधिक आकर्षक, वह सराय मुझे जीवन-पर्यन्त याद रहेगी।

पाठशाला आदि की आपत्तियें अभी समाप्त हुई ही थीं कि निकोलस् प्रथम की स्त्री के मृत्यु-समाचार ने फिर एक नई बाधा पढने में उपस्थित करदी। शाही मुर्दों की अन्त्येष्टि बहुत ही विधि-विधान् के साथ होती थी। पहले शव किले में लाया गया। वहाँ पर बारी बारी से हम कोर के विद्यार्थियों को पहरा देना होता था। दिन में तो कोई बात न थी, पर रात्रि के समय शव के पास सन्नाटा बहुत ही बुरा मालूम होता था।

होते होते शव की अन्त्येष्टि-क्रिया का समय आया। वहाँ पर तरह तरह के कपडे-लत्ते खूब ताने गये। साज-सामान इकट्ठा किया गया। पर एक बालक की असावधानी से वहाँ आग लग गई। अलेक्जेण्डर द्वितीय को [illegible] रह गया। अग्नि तुरन्त बुझा दी गई। शव क्रिया समाप्त होने पर हम सब पाठशाला को वापिस आये।

विद्यार्थी जीवन

रूस के युवकों का विद्यार्थी जीवन यूरप के अन्यान्य पश्चिमीय देशों से विभिन्न है, अतएव मेरी इच्छा इस सम्बन्ध में और कुछ कहने की है। उस समय सैनिक-पाठशाला के प्राय प्रत्येक बालक का ध्यान राजनैतिक सामा-

जिक एवं तत्वदर्शन सम्बन्धी विषयों की ओर आकर्षित हो रहा था। मैं यह बात स्वीकार करने को तैयार हूँ कि सैनिक-पाठशाला मे इन बातों के विकास का अधिक अवसर न था, पर उस परिवर्तनशील समय मे थोडा बहुत प्रभाव सभी पर पड़ रहा था। जब मै चौथे विभाग मे पहुँचा तो मुझे इतिहास पढ़ने का विशेष चाव हुआ। दूसरे वर्ष शाही सेना और पोपवानीफेस अष्टम के झगडे का थोडा बहुत वृत्तान्त पढकर उसको सविस्तार जानने की इच्छा हुई। अतः बहुत कुछ उद्योग करने से मैं Imperial Library (इम्पीरियल पुस्तकालय) का सदस्य होगया।

लेटिन मैं न जानता था, पर, धीरे धीरे परिश्रम करके शीघ्र ही मैं फ्रांस के साहित्य का आनन्द लूटने लगा। अनेकों प्रकार की पुस्तकों के पढ़ने से मेरे नेत्र ससार की विचित्र गति को देखकर विस्मय से मुग्ध हो गये। मुझे अपने सामने एक नया क्षेत्र कार्य्य करने को दिखाई देने लगा। वर्तमान राजनीति के झंझटों से मुझे घृणा उत्पन्न होगई। वास्तव में स्वतंत्र अनुसन्धान से बढ़कर ससार में मानसिक विकास का और कोई दूसरा साधन नहीं है। और मैं कहूँगा कि इन अध्ययनों ने मुझे भविष्य में बड़ी ही सहायता प्रदान की। दूसरे विभाग से ही मुझे पदार्थ विज्ञान (Physics) पढ़ने का प्रेम होगया। अभी तक जो पुस्तक इस सम्बन्ध मे हम सब को पढ़ाई जाती थी, वह पुरानी थी, अत. अध्यापक महोदय अपने ही स्वतन्त्र नोट लिखवाया करते थे। कुछ ही हफ़्तों बाद अध्यापक जी ने यह कार्य्य मुझे सौंप दिया। मै बराबर इस काम को करता रहा। मेरे नोटों से अध्यापक महोदय बहुत प्रसन्न थे। पश्चात् वे

पुस्तकाकार छपा दिये गये। इधर रसायन शास्त्र (Chemistry) का भी पाठ्य-क्रम मेरे विभाग में था। मेरे अध्यापक को इस से विशेष अनुराग था। साथ ही वे इस समय बड़े बड़े वैज्ञानिक आविष्कारों में लगे हुए थे। इस प्रकार सन् १८५६ ई० से लेकर सन् १८६१ ई० तक नाना प्रकार के अनुसन्धान हुए। हेल्महालट्ज़ ने शब्द (Sound) सम्बन्धी विषयों में आश्चर्य्य-जनक अनुसन्धान किये। डारविन ने Origin of Species के नए सिद्धान्त से सब Biological विज्ञान में उथल पुथल मचा दिया। इधर कर्ल, वागट और क्लाड बरनर्ड ने प्राणी-धर्म विषयक शास्त्रों की नींव डाली। नाना प्रकार की पुस्तकें छप रही थीं। वास्तव में यह समय विज्ञान अनुसन्धान-युग कहा जा सकता है। शनैः शनैः मेरे भी विचार इसी ओर झुक गये और मेरा हृदय भी मनुष्य की वास्तविक स्थिति एवं उसका प्रकृति से सम्बन्ध जानने को लालायित होने लगा। इस भांति होते होते मेरे जीवन का ध्येय प्राकृतिक-तत्व अनुसन्धान होगया। मेरे समय का बहुत सा भाग प्रायः गणित विद्या में भी व्यतीत हुआ करता था। पर गणित-शास्त्र में मेरी चित्त वृत्ति केवल ज्योतिष की ओर थी।

मैं तब सोचता था कि यदि उपरोक्त विषय ही पाठशाला में पढ़ाये जाते तो मेरा समय कैसी उत्तमता के साथ व्यतीत हुआ करता। पर, यह बात कोसों दूर थी। वहां पर तो हम को आधुनिक इतिहास, कानूनों की व्याख्यायें इत्यादि सभी कण्ठ कराये जाते थे। इस तरह अनावश्यक बातों से हम लोगों के मस्तिष्क निरर्थक सताए जारहे थे। पर इन सब के होते हुए भी एक बात अच्छी थी, कि स्वतन्त्र अध्ययन व खेल-कूद के लिए पर्याप्त अवकाश मिल जाता था। गर्मी की छुट्टियों में हम लोग स्वतन्त्रता पूर्वक विचर सकते थे। खाने और सोने के लिए स्थान तो कोर में नियमानुसार मिल ही जाया करता था। उन दिनों मैं प्रायः नेवा नदी में किश्ती खेया करता और जब कभी रात्रि रात्रि भर व्यतीत कर देता। साथ ही, मुझे नाटयकला से भी विशेष प्रेम था। उस समय सेन्ट पीटर्सबर्ग मे दो दल हो रहे थे। एक दल फ्रांसीसी नाटकों से और दूसरा दल इटेलियनों के भावपूर्ण नाटकों से प्रेम करता था। मुझे स्वयं इटेलियनों का ढग रुचिकर प्रतीत हुआ। प्रत्येक रविवार को हम लोग वहां जाया करते। इटेलियनों के नाटक मौलिक भावों से परिपूर्ण थे और साथ ही उनमें विप्लवकारी भावों का भी सर्वथा अभाव न था। विलियम टेल जैसे वीर स्वाभिमानी पुरुषों के नाटक तो बड़े ही ओजस्वी एवं प्रभावशाली थे। नाटक होते समय जब कभी कोई विप्लव-भावपूर्ण संगीत आ जाता तो हम लोग खिलखिला कर हँस पड़ते, पर एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय कुछ सहम सा जाता था।

इस प्रकार ये इटेलियन नाटकों के संगीत नवयुवकों के स्वच्छ निर्मल हृदयों में नवीन आशाओं का सञ्चार कर रहे थे।

क्रान्ति-युग का प्रसार

ग्रीष्म ऋतु में हमारे कोर के तथा अन्यान्य पाठशालाओं के विद्यार्थी पेटरहाफ भेज दिये जाते थे। वैसे तो वहां स्वास्थ्यरक्षा के विचार से आनन्द था। पर इस केम्पिङ्ग (Camping) से शिक्षकों का अभिप्राय सैनिक कवायद देना व युद्ध विद्या सिखलाना था, जिससे मुझे घृणा थी। जार बहुधा रात्रि के समय बिगुल बजा देते। बिगुल सुनते ही सब लड़के व आफीसर बात की बात में इकट्ठे हो जाते। खेल-कूद अथवा झूठी लड़ाइयां होने लगतीं। पर मुझे इस प्रकार समय का नष्ट होना बहुत खलता था, कारण, मैं इस समय को अन्यत्र ही लगाना चाहता था। इस लिये यदि मुझको बाहर भी जाना होता तो मैं भरसक अपने समय को पैमाइश में या अन्य उपयोगी कामों में व्यतीत करता था। पर, इधर तो खेल-कूदों में समय नष्ट किया जा रहा था और उधर देश में धीरे धीरे आग ही आग लग रही थी। सन १८५७ ई० से लेकर सन १८६१ ई० तक का समय स्वतन्त्र गर्म बातों के लिए विचार का काल था। जो कुछ बातें टरगनेव, [illegible] हेरजन, बाकूनिन, बेलिन, टालस्टाय, शिर्नाशेविस्की, और ओगरेव आदि परस्पर में बैठ कर विचारा करते थे वही सब बातें आज पत्र द्वारा, उपन्यासों द्वारा देश में फैली हुई दृष्टि पड़ने लगीं।

था कि ये सब बातें हमारी पाठशाला तक में प्रवेश कर गईं और हम बालकों को बगावत का पाठ पढ़ाने लगीं। इस प्रकार सुरक्षित से सुरक्षित स्थान तक में अपना प्रवेश करने वाला यह आन्दोलन विचित्र ही था। यह तो मैं आप से पहले ही कह चुका हूँ कि मैं प्रत्येक रविवार को अपनी चाची के पास भी जाया करता था। मेरी चचेरी बहन नवयौवनारूपा एक सुन्दर बालिका थी। अन्य चचेरे भाई उससे प्रेम-व्यवहार करने को बड़े लालायित हो रहे थे। अन्त में उसने भी एक से विवाह कर लेने की इच्छा प्रकट की। पर, उस समय चचेरे भाई से विवाह होना गिरजाघर के नियमों के विरुद्ध था। इस बात की आज्ञा प्राप्त कर लेने के लिए उन दोनों ने बहुत सी चेष्टाएं कीं, पर सब निष्फल हुईं। अब आप स्वयं समझते होंगे कि ऐसे घर में क्रान्तिकारी भावों का कहां तक प्रवेश हो सकता है? पर, ईश्वर की इच्छा ऐसी ही हुई कि सब से प्रथम इसी गृह में मैंने आधुनिक क्रान्ति का प्रथम बार दर्शन किया।

प्रवासी देशभक्त मोशियो हेरज़न ने हाल ही में लंदन में 'पोलर स्टार" नामक पत्र का प्रकाशन करना प्रारम्भ किया था। यद्यपि रूस में इस का आना बन्द था, पर, तो भी मेरी चचेरी बहन चुरा छुपा कर मंगाती थी। इस पत्र के दर्शन मात्र से हृदय में उत्साह का संचार हो उठता था। पत्र के प्रथम पन्ने पर निकोलस् प्रथम द्वारा २५ दिसम्बर सन् १८२५ ई० में शूली पर चढ़ाये गये ५ शहीदों* के चित्र थे। ये चित्र बड़े ही भाव पूर्ण थे। हेरज़न के लेखों की

---

*५ शहीद ये थे—Bestn's eff, Kahovsking, Pistel, Ryhef and Murvion Apostol.

प्रशंसा कहां तक लिखी जावे। सुविख्यात लेखक टर्गनेफ ने कहा है, "श्रीमान् हेरज़न वास्तव में रक्त और आंसुओं से लिखते हैं।" हेरज़न की लेखन-शैली व भावों की गूढ़ता ने मेरे हृदय को तुरन्त उनका अनुयायी बना दिया। मैं एक एक पृष्ठ को बारम्बार पढ़ कर भी तृप्त न होता था।

सन् १८५९ ई० से या सन् १८६० ई० के पूर्वकाल से मैंने भी अपने क्रान्तिवादी पत्र का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया। उस अवस्था में मैं एक व्यवस्था-भक्त के अतिरिक्त और क्या हो सकता था, अतएव अपने पत्र द्वारा रूस में रचनात्मक सुधारों की आवश्यकता पर लिखने लगा। साथ ही महलों के अपव्ययों तथा अन्यान्य ऐसे ही विषयों पर भी लिख देता था। पत्र की तीन प्रतियां लिखकर मैंने उच्च विभागों के ३ उत्साही नवयुवकों के डेस्कों में खिसका दीं। उस में लिखा था कि यदि आप को किसी भी प्रकार की टीका-टिप्पणी लिखनी हो तो आप उसे लिख कर अमुक स्थान पर रख सकते हैं। दूसरे दिन कम्पित हृदय से मैं उस स्थान पर गया, तो वहां पर एक लेख पाया। दो मित्रों का यह स्पष्ट उत्तर था कि हम को आपके साथ पूर्ण सहानुभूति है, पर, सतर्क रहना कहीं आपत्ति में न फंसा देना। दूसरे दिन फिर मैंने वैसा ही किया, परन्तु इसके उत्तर में वे अब की बार स्वयं हमारे पास चले आये। इन तीनों से गहरी मित्रता स्थापित हो गई। एक का विचार था कि पत्र से कार्य न चलेगा, यदि कहीं यह रहस्य खुल गया तो विकट समस्या आ उपस्थित होगी। इस प्रकार बहुत विचारने के उपरान्त प्रचार द्वारा काम करना ही निश्चित रहा। अतएव थोड़े ही दिन पश्चात् पत्र बन्द कर दिया गया और प्रचार

कार्य्य प्रारम्भ हो गया। "दासता का समूलोच्छेदन" यह प्रश्न सब विचारशील पुरुषों का ध्यान उस समय अपनी ओर आकर्षित कर रहा था।

सन् १८४८ ई० के विप्लव की आग ने, जिस किसान-समुदाय को पर्याप्त रूपेण प्रभावित कर रक्खा था, अब सन् १८५० ई० में भभक उठी और नये नये रंग दिखलाने लगी। इसी समय क्रीमियन युद्ध छिड़ जाने से युद्ध-कर की वसूलयावी ने और भी असन्तोष की आग भड़का दी। दास लोग चारों ओर उपद्रव मचाने लगे। दास-स्वामियों की हत्यायें होने लगीं। यहाँ तक कि यह उपद्रव इतना बढ़ गया कि समस्त शाही फौजें मय तोपखाने के इस उपद्रव की शान्ति के हेतु नियुक्त कर दी गई —जहां पर कि पहले ऐसे उपद्रवों को मिटाने के लिए सिपाहियों की १-२ टोलियाँ ही पर्याप्त हुआ करती थीं। एलेक्जेंडर द्वितीय स्वाभावतः दासों के विरुद्ध था पर उसकी स्त्री, भाई व अन्य बन्धुओं ने उसको ठीक मार्ग पर चलाने के लिए बहुत ही प्रयत्न किया। पर, उसकी अभिलाषा थी कि इन सुधारों को दे देने की बात दास स्वामियों व नोबिल लोगों की ही ओर से कही जावे। पर, किसी भी प्रान्त से नोबिलों ने इस आशय के प्रार्थना पत्र न भेजे। एक बार उसने नोबिलों को इस उद्देश से इकट्ठा कर उपदेश भी दिया, पर कोई भी नोबिल न बोला। उनमें से किसी ने टस से मस न की। इस पर एलेक्जेण्डर ने बहुत-कुछ चिढ़ कर उन लोगों को दो-चार खरी-खोटी भी सुना डालीं। केवल पोलैण्ड के गवर्नर जनरल मि० नजीयाफ ने तो इस आशय का प्रार्थना-पत्र अवश्य भिजवा दिया था।

नवम्बर सन् १८५७ ई० में एलेक्जेण्डर द्वितीय ने प्रथम बार लूथेनियन प्रान्त के शासक के पास इस आशय का पत्र भेजा कि वह दासता का नाश करना चाहता है। उसकी यह बात सुनकर हम लोगों के आनन्द का पारावार न रहा। हेरजन आदि दूरस्थ देशभक्त भी पत्रों द्वारा उसके विचारों की सराहना करने लगे और इस बात का आश्वासन दिलाने लगे कि भविष्य में वे जार को शत्रु की दृष्टि से न देखेंगे। कृषक-समुदाय का कृत्य भी उस समय सराहनीय था। उन्होंने ज्योंही यह सुना कि चिर-अभिलाषित इच्छा पूर्ण होने वाली है, वे बहुत कुछ शान्त हो गये और हत्यायें भी कम होने लगीं। इस प्रकार किसान लोग टकटकी बांधे जार की ओर देखने लगे कि कब "स्वतन्त्रता" की घोषणा होती है।

एक समय की बात है, जार कहीं बाहर गये थे। किसानों के झुण्ड के झुण्ड मार्ग में इकट्ठे हो गये और ज्योंही जार उस मार्ग से निकले उन्होंने एक प्रार्थना पत्र दासता को मिटाने के लिए दे दिया। जार उस समय पैदल था, पर क्या करता? दूसरी एक विलक्षण बात जो किसानों में अपवाद स्वरूप फैल रही थी यह थी, कि वे समझते थे कि नेपोलियन तृतीय ने सन्धि करते समय दासत्व प्रथा नाश करा देने की शर्त लगाई है। कई एक किसानों ने मुझ से स्वयं कहा, 'यह दिक्कत तब तक है जब तक गेरीबाल्डी नहीं आता, उसके ही कारण यह बातें हो रही हैं।" यद्यपि उस समय नौकरों के मालिकों की संख्या, जो कि दासता के नाश के लिए घोर उद्योग कर रहे थे, कुछ कम न थी, पर, तो भी विपक्षी दल ने धीरे धीरे उनके कान भर दिये और उन पर प्रभाव जमा लिया। एलेक्ज़े-

एडर ने प्रत्येक प्रान्त में एक एक कमेटी की आयोजना, सुधारों पर रिपोर्ट पेश करने को करदी थी, पर, उसकी नीति का अभी तक कुछ पता न चलता था। उसकी नीति अस्थिर प्रतीत होती थी। प्रेसों पर कड़ा सेन्सर था, कि वे इन बातों पर अधिक वादाविवाद न करें, कारण कि इससे जनता भ्रम में पड़ जाती है और कोई काम सुविधापूर्वक नहीं हो पाता। अन्त में स्वतन्त्रता-विरोधी दल की तूती वड़ा बोलने लगी। वे नाना प्रकार के भयों से सम्राट् के हृदय को कम्पायमान करने लगे। "स्वतन्त्र किसान हम लोगों को जीवित न छोड़ेंगे" आदि निरर्थक बातों से उनके कानों में विष भरने लगे, तथा निरन्तर प्रतारण सूचक दमन के उपदेशों द्वारा उसकी मनेच्छा का खून करने लगे। फलस्वरूप जनता में फिर गड़बड़ी मच गई। वे बारम्बार यह सोच रहे थे कि क्या ज़ार बात कह कर फिर टल सकता है ! पर, शोक ! ज़ार द्वितीय दृढ़ विचार वाले पुरुष न थे। पहली स्कीम स्थगित कर दी गई। दूसरी कमेटी ने दासों के ऊपर क्षतिपूर्ति की ऐसी शर्त लगादी कि उनकी स्व-तंत्रता स्वप्नवत् होगई। पुरानी सुधार-कमेटी के सदस्यों तक में परिवर्तन कर दिया गया और एक बार कड़ाई के साथ पुनः पत्रों का गला घोंट दिया गया। अस्तु, एक बार फिर निराशा के काले बादल उमड उठे। सुधार की बात गई गुजरी सी होगई। सन् १८६० ई० में लोग बिलकुल निराश होगये और एक नई क्रान्ति की फिर सम्भावना प्रतीत होने लगी।

सन् १८६१ ई० में फिर समय-परिवर्तन हुआ और समाचार प्राप्त हुए कि १६ फरवरी को राज्याभिषेक की वर्षगांठ के उपलक्ष में कुछ न कुछ सुधार अवश्य दिये जायेंगे। पर,

१६ फरवरी आकर कोरी चली गई। मैं उस दिन महल ही में था। सुधारों पर वास्तव में १६ तारीख को ही हस्ताक्षर होगये थे। पर, वे एक पक्ष के लिए और रोक दिये गये। पन्द्रह दिन पश्चात् मैं कोर्ट ही में चारपाई पर लेटा हुआ था। ५ मार्च का बाल-रवि उदय हो रहा था कि एक सेवक ने झपट कर कहा, "प्रिन्स! स्वतन्त्रता!! घोषणा पत्र सामने वाली दुकान पर लगा है। क्या आप उसे स्वयं देखेंगे?" यह सुनते ही दो मिनट में मैं कपड़े पहन कर बाहर आया। सैकड़ों आदमी उसे पढ़ कर चले जा रहे थे। इतने ही में एक मित्र ने एक घोषणा-पत्र लाकर मुझे दिया। मैं उसे बारम्बार पढ़ने लगा। स्वतन्त्रता अवश्य थी पर थोड़े काल तक ठहर कर। किसानों को अभी दो वर्ष पर्य्यन्त अपने स्वामियों के अधीन ही रहना होगा। पर इन शर्तों के होते हुए भी यह प्रत्यक्ष था कि दासता का नाश होगया और उनको अपनी अपनी जमीन प्राप्त हो जायेगी, यद्यपि उनको इसके लिए क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी। पर तब दासता की कालिमा अब न रह गई थी।

हम सब वहां से परेड को चले गये। वहाँ पर जब कवायद आदि से निवृत्त होगये तो जार द्वितीय अलेक्जेन्डर ने, हम सबों को एकत्रित करके बोले, "आफीसरो—सैनिकों के प्रतिनिधियो! शताब्दियों का अन्याय नष्ट कर दिया गया। मुझे आशा है कि राजभक्त नोबिल' लोग स्वार्थ-त्याग करेंगे और राज-सिंहासन के प्रति सदैव ही श्रद्धा के भाव रक्खेंगे इत्यादि।" वक्तृता समाप्त होते ही चारों ओर से हर्षध्वनि और 'हुर्रा' 'हुर्रा' होने लगा। वहां से लौटकर हम सब सीधे पाठशाला में आये। नगर में नाना प्रकार के उत्सव मनाये

जा रहे थे। गलियों, कूचों में उत्साही नवयुवकों के झुण्ड के झुण्ड इसी विषय पर वार्तालाप करते दृष्टि-गोचर हो रहे थे। महलों के चारों ओर किसान उत्सव-मग्न हो रहे थे। जार द्वितीय के नगर मे निकलते ही चारो ओर से हर्ष-ध्वनि गूंज उठती थी। जब मैं अगस्त मास सन् १८६२ ई० मे अपने ग्राम निकोलस्काय को गया तो देखा कि उन किसानो मे वैसी ही प्रीति और श्रद्धा विद्यमान है।

यदि कोई अन्तर उनमे पाया जाता है तो वह केवल दासता-जनित कुलक्षणों का अभाव है। मुझे अपनी उस यात्रा में यह भी अनुभव हुआ कि घरेलू सेवकों की दशा कुछ अंशों मे अच्छी नही है। उन्होंने नोकरिया छोड दी। मेरे पिता के ही बहुत थोड़े सेवक रह गये। इन मे से जो हुनर जानते थे वे काम-काज करने लगे। जिनके पास जमीन थी वे काश्तकारी करने लगे। पर इन घरेलू सेवको के पास क्या था? उत्साह मे नोकरी भी छोड़ बैठे थे। पर, तो भी वे स्वतन्त्र होने के कारण खिन्न न थे। दस-ग्यारह वर्ष पश्चात् जब मैं एक बार फिर अपनी रियासत मे गया तो बात ही कुछ और थी। किसानों के छोटे छोटे बालक बडे आनन्द एवं उल्लास से दासत्व-प्रथा के दु:खों को गा रहे थे और स्वच्छन्दता के अपूर्व गुणों की प्रशंसा कर रहे थे। सारांश यह कि सर्वत्र आनन्द था।

पराधीन जीवन

जून मास सन् १८६१ ई० में मैं कोर आफ पेजेस अर्थात् पार्श्व अनुचरों के दल का सारजेन्ट बना दिया गया। मेरे सारजेन्ट बनाये जाने के बहुत से विरोधी थे।

उनका मुख्यतया यह कहना था कि इनके प्रबन्ध में नियंत्रण और शृङ्खला किसी भी प्रकार विधिवत् न रह सकेगी। पर इस में किसी की भी न चली, क्योंकि वहां का यह नियम था कि सब से ऊँचे विभाग का प्रथम बालक ही सार्जेन्ट बनाया जावेगा, और इधर मैं वर्षों से बराबर, दर्जे में प्रथम ही रहा करता था। वास्तव में यह पदवी उस समय महत्वपूर्ण थी क्योंकि सार्जेन्ट का आना जाना जार के पास बहुधा हुआ करता था। इसकी गणना शाही पेजों में थी। इस प्रकार इतने दिनों पश्चात् मुझे स्कूल की आन्तरिक दुर्दशाओं से छुटकारा मिल गया। एक बहुत ही सुन्दर कमरा मुझे पृथक् दे दिया गया, जहां पर हम स्वतन्त्र अध्ययन भली प्रकार कर सकते थे।

उससे ज़ार के साथ साथ देखे। पर, इसके पूर्व मैं ज़ार को बहुत ही वीर एवं परिश्रमी समझता था। सुधारों के समय में वह घंटों नोबिलों से खोपड़ी खाली किया करता था। पर, शनैः शनैः उसकी कलई खुलने लगी, और मुझे उसका वास्तविक ज्ञान होने लगा। प्रत्येक वर्षगाँठ को एक बड़ा जलसा होता था। ज़ार और ज़रीना, एक दूसरे का हाथ पकड़ कर, अगाड़ी अगाड़ी चलते थे और हम सब शाही पेज उनके पीछे चला करते थे। हम लोगों के पीछे अन्यान्य मनुष्यों की भीड़ रहा करती। गिरिजाघर में पहुँच कर सब नोबिल लोग बारी बारी से प्रणाम करते एवं घुटनों के बल बैठ कर उनके हाथ चूमते थे। उस समय यदि ज़ार ने किसी से दो-चार बातें कर लीं, या उसके प्रणाम में शिर को हिला दिया अथवा तनिक मुस्करा ही दिये, तो बस फिर वह नोबिल फूल कर कुप्पा हो जाता था। इस भाँति ऐसे अवसरों पर नोबिलों की नीचता का प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता था। शरद ऋतु में दस-बीस बार (बाल) नृत्य हुए बिना न रहता। उस समय की नौकरी साधारण न थी। ज़ार द्वितीय स्वयं नृत्य में सम्मिलित न होकर चारों ओर घूम घूम कर आनन्द लूटते थे, उस समय मुझे उनके पीछे पीछे चलना होता था। जब कभी किसी तन्वङ्गी के प्रेम-पाश में फँस कर वे यह भी चाहते थे कि मैं उनके पीछे से हट जाऊँ, पर, राज्य-वंश के परम्परानुसार मैं उनको अकेला छोड़ नहीं सकता था और न वे ही बिना किसी पेज के भ्रमण कर सकते थे। मेरी यह कठिनाई उस समय और भी बढ़ जाती थी, जब कि ज़ार स्वयं नवीन नवीन युवतियों के जीते-जागते उद्यान में प्रवेश कर जाते थे।

सचमुच उस उद्यान में मेरे लिए प्रवेश कर जाना बहुत ही कठिन एवं भयंकर था। बड़े बड़े कुल की नव यौवना सर्वांग-सुन्दरी रमणियाँ किस हाव-भाव से जार व उनके ज्येष्ठ पुत्र ग्रांड ड्यूक का चित्त लुभाती फिरती थीं !! कोई मुस्कराती थी तो कोई ऐसा नयन-कटाक्ष करती थी जिससे कि ग्रांड ड्यूक उस रमणी की रूप-छटा पर निछावर हो जावे। इस प्रकार वे युवतियां एक दूसरे से मन ही मन में होड़ लगा लगा कर ड्यूक को रिझाना चाहती थीं। उनके दुर्नीति-परायण माता-पिता भी उनको खूब ठाठ से नृत्य में भेजते थे। यदि नृत्य-शाला में किसी युवती के साथ ग्रांड ड्यूक नृत्य करने लगते तो फिर क्या कहना था ! माता-पिता के हर्ष की सीमा न रहती थी। एक समय ड्यूक महोदय जब १८-१९ वर्ष की ३-४ युवतियों के साथ नृत्य कर चुके तो उस समय में जो बातें हुईं वे बड़ी ही घृणित एवं विचित्र थीं। मुझे पहले पहल द्वितीय एलेक्जेंडर जार में बहुत श्रद्धा थी, परन्तु यह मेरे अनुभव का दोष था। पहले मैं बहुधा यह सोचता था कि अवसर प्राप्त होने पर मैं जार की प्राण रक्षा अपने प्राण देकर भी कर सकता था। परन्तु धीरे धीरे उसने स्वयं ही मेरी आंखें खोल दीं। मेरा हृदय उसकी ओर से बिल्कुल हट गया और घृणा की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई।

उनसे जार के साथ साथ देखे। पर, इसके पूर्व मैं ज़ार को बहुत ही वीर एवं परिश्रमी समझता था। सुधारों के समय में वह धंटों नोबिलों से खोपड़ी खाली किया करता था। पर, शनैः शनैः उसकी कलई खुलने लगी, और मुझे उसका वास्तविक ज्ञान होने लगा। प्रत्येक वर्षगाँठ को एक बड़ा जलसा होता था। जार और ज़रीना, एक दूसरे का हाथ पकड़ कर, अगाड़ी अगाड़ी चलते थे और हम सब शाही पेज उनके पीछे चला करते थे। हम लोगों के पीछे अन्यान्य मनुष्यों की भीड़ रहा करती। गिरिजाघर में पहुँच कर सब नोबिल लोग बारी बारी से प्रणाम करते एवं घुटनों के बल बैठ कर उनके हाथ चूमते थे। उस समय यदि ज़ार ने किसी से दो-चार बातें करलीं, या उसके प्रणाम में शिर को हिला दिया अथवा तनिक मुस्करा ही दिये, तो बस फिर वह नोबिल फूल कर कुप्पा हो जाता था। इस भाँति ऐसे अवसरों पर नोबिलों की नीचता का प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता था। शरद ऋतु में दस-बीस बार (बाल) नृत्य हुए बिना न रहता। उस समय की सौंदर्य साधारण न थी। ज़ार द्वितीय स्वयं नृत्य में सम्मिलित न होकर चारों ओर घूम घूम कर आनन्द लूटते थे, उस समय मुझे उनके पीछे पीछे चलना होता था। जब कभी किसी तन्वङ्गी के प्रेम-पाश में फँस कर वे यह भी चाहते थे कि मैं उनके पीछे से हट जाऊँ, पर, राज्य-वंश के परम्परानुसार मैं उनको अकेला छोड़ नहीं सकता था और न वे ही बिना किसी पेज के भ्रमण कर सकते थे। मेरी यह कठिनाई उस समय और भी बढ़ जाती थी, जब कि जार स्वयं नवीन नवीन युवतियों के जीते-जागते उद्यान में प्रवेश कर जाते थे।

सचमुच उस उद्यान में मेरे लिए प्रवेश कर जाना बहुत ही कठिन एवं भयंकर था। बडे बडे कुल की नव यौवना सर्वाङ्ग-सुन्दरी रमणियाँ किस हाव-भाव से ज़ार व उनके ज्येष्ठ पुत्र ग्राड ड्यूक का चित्त लुभाती फिरती थीं !' कोई मुस्कराती थी तो कोई ऐसा नयन-कटाक्ष करती थी जिससे कि ग्राड ड्यूक उस रमणी की रूप-छटा पर विमुग्ध हो जावे। इस प्रकार वे युवतियां एक दूसरे से मन ही मन में होड़ लगा लगा कर ड्यूक को रिझाना चाहती थीं। उनके दुर्नीति-परायण माता-पिता भी उनको खूब ठाठ से नृत्य में भेजते थे। यदि नृत्य-शाला में किसी युवती के साथ ग्राड ड्यूक नृत्य करने लगते तो फिर क्या कहना था ? माता-पिता के हर्ष की सीमा न रहती थी। एक समय ड्यूक महोदय जब १६–१६ वर्ष की ३-४ युवतियों के साथ नृत्य कर चुके तो उस समय में जो बातें हुईं वे बडी ही घृणित एवं विचित्र थीं। मुझे पहले पहल द्वितीय एलेग्जेण्डर में बहुत श्रद्धा थी, परन्तु वह मेरे अनुभव का दोष था। पहले मैं बहुधा यह सोचता था कि अवसर प्राप्त होने पर मैं ज़ार की प्राण रक्षा अपने प्राणों पर खेल कर भी करूंगा। परन्तु शनैः शनैः उसके चरित्र ने मेरी आंखें खोल दीं। मेरा हृदय उसकी ओर से सन्दिग्ध हो गया और सन्देह की मात्रा उत्तरोत्तर बढती ही गई।

इसी बीच में एक घटना और संघटित हुई। एक समय ज़ार द्वितीय भाइयों सहित कहीं बाहर चले जा रहे थे। मैं भी उनके पीछे पीछे था। इतने ही में एक अत्यन्त दुर्बल किसान सम्मुख आता हुआ दिखाई पडा। उसको आते देख ज़ार की भौंहें सिकुड गईं। पर वह प्रार्थना-पत्र लिये

हुए सामने पृथ्वी पर गिर ही पड़ा। निर्दयी ज़ार तनिक भी विचार न करके अगाड़ी बढ़ गया। इसी प्रकार किसान की सुधि लिये बिना उसके भ्रातृगण भी चले गये। नियमानुसार मुझे भी वैसेही चले जाना चाहिये था। पर, मैंने देखा कि मेरे अतिरिक्त इस समय दूसरा शरीर-रक्षक कोई नहीं है। अतएव, कर्तव्य ने गर्दन आ दबाई और मैंने झट वह प्रार्थना-पत्र उठा लिया। मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि इस प्रकार प्रार्थना-पत्र उठाने वाले को जेल का भी दण्ड हो सकता था और बहुतों को इसी बात पर हो भी चुका है। पर, मुझ से कुछ नहीं कहा गया।

यद्यपि दासों का उद्धार करने के पश्चात् एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय को समस्त सेन्ट पीटर्सबर्ग श्रद्धा एवं भक्ति की दृष्टि से देखने लगा था, पर, तो भी जनता का वास्तविक प्रेम उसकी ओर न था। उसका भाई निकोलस् न जाने कैसे व्यापारियों आदि में प्रिय हो रहा था। एलेक्ज़ेण्डर, और सुधारों के नेता कानस्टेनटाइन—दोनों में से किसी ने भी जनता के हृदयों पर प्रेम-प्रसार नहीं कर पाया था। एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय का स्वभाव वास्तव में उनके पिता के सदृश ही स्वेच्छाचारों से परिपूर्ण था। वह थोड़ी ही सी बात पर अपनी शान्ति भङ्ग करके अपने ऊँचे से ऊँचे दरबारियों तक का अपमान कर डालता था। उसकी बात में कोई स्थिरता न थी। उसके मिलने वाले भी बड़े धूर्त एवं रिश्वतखोर थे। अस्तु, सन् १८६२ ई० ही से ज़ार द्वितीय अपने पिता के दुर्व्यवहारों की पुनरावृत्ति करने लगा। थोड़े से भी उपद्रव को दबाने के लिए कड़े से कड़े नियमों का प्रयोग करने लगा। सन् १८६१ ई० में होने वाले

सेन्ट पीटर्सबर्ग, मास्को व कज़न के विश्वविद्यालयों के उपद्रवों को उसने बड़ी ही निर्दयता से दबा दिया। पोलैण्ड में ज्योंहीं देशभक्ति पर दो-चार व्याख्यान हुए कि उसने फौजकी की सेना भेज कर उन लोगों पर गोली चलवादी। इसी प्रकार वारसा में भी अग्नि-वर्षा की गई। बस, ऐसे ही अत्याचार दिन प्रति दिन होने लगे।

उस समय राज्य-वंश में यदि सब से उत्तम कोई आत्मा थी तो वह केवल शाहज़ादी मेरी एलेक्ज़ेण्ड्रोवना थी, जिसने दासता-नाश कराने में बड़ा ही उद्योग किया था। आप एक ही विदुषी थीं और इसी कारण आपने अपने बालक को उच्चतम शिक्षा दिलवाई थी। निकोलस् एलेक्ज़ेण्ड्रोविच बड़ा ही बुद्धिमान एवं मिलनसार युवक था। पर, रीढ़ की बीमारी ने उसकी मृत्यु २२ वर्ष ही की अवस्था में हो गई। उसके भाई एलेक्ज़ेण्डर का स्वभाव, जो आगे चल कर ज़ार तृतीय के नाम से सन् १८६५ ई० में सिंहासनासीन हुआ, अपने मृतक भाइयों के बिलकुल विपरीत था। इनको शैशव काल ही से पढ़ने-लिखने से घृणा थी। हठी तो यह एक ही थे।

साइबेरिया की यात्रा

मई सन् १८६२ ई० को मुझे आज्ञा मिली कि मैं सब बालकों से पूछ पूछ कर रिपोर्ट लिखूं कि वे कौन सी रेजीमेन्ट के नायक बनना चाहते हैं, क्योंकि उस समय यह नियम था कि उच्च विभाग का प्रत्येक उत्तीर्ण बालक अपनी इच्छानुसार किसी भी रेजीमेन्ट को पसन्द कर सकता था।

आज्ञानुसार मैंने तुरन्त सूची तय्यार करली। सहपाठी बालक उस समय मेरे मन की बात जानने को बहुत उत्सुक हो रहे थे। वे बराबर पूछ रहे थे कि मैंने कौनसी रेजीमेण्ट पसन्द की है। पर, हमने वास्तव में कोई बात निश्चित नहीं कर पाई थी। अतएव, मैं क्या उत्तर देता? अन्त में सब से पूछ ताछ कर मैं चुपचाप अकेले अपनी कोठरी में जा बैठा। यहां की रेजीमेन्टों के नायक होने का विचार तो मैं हृदय से पृथक ही कर चुका था। कारण कि मुझे सैनिक कवायद व ज़ार के नृत्यों में सम्मिलित होने से अत्यन्त अश्रद्धा हो गई थी। मेरी अभिलाषा उस समय विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होकर विद्याध्ययन करने की अवश्य थी, पर, मैं जानता था कि ऐसा करने से पिता जी की सब आशाएं विलीन हो जावेंगी और वे क्रोधित हो जावेंगे। क्योंकि उनकी इच्छा तो मुझे एक सैनिक-आफीसर बनाने ही की थी। दो-चार बार पिता जी की आज्ञा के प्रतिकूल आचरण करने की भी बात मेरे जी में आई, पर, ऐसी दशा में आर्थिक कठिनाइयों का प्रश्न सम्मुख आ उपस्थित होता था। मुझे यह भली भांति मालूम था कि विश्वविद्यालय में पहुँचते ही मेरा मासिक खर्च बन्द हो जावेगा। इस प्रकार सोचते सोचते मेरा मस्तिष्क कोसों दूर चला गया, और वह साईबेरिया की नदी आमूर के प्रदेश में चक्कर मारने लगा। इस प्रदेश को रूस ने हाल ही में विजय करके अपने अधिकार में किया था। आमूर व उसकी सहायक नदी एवं वहा के पर्वतों के सम्बन्ध में मैंने बहुत कुछ पुस्तकों में देखा-भाला था। इन सब बातों के अतिरिक्त मैंने सोचा कि यह प्रदेश एकदम नवीन है। यहा पर नये नये सुधारों की आयोजना होने के कारण, उदार-प्रकृति

वाले कार्य्यकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ेगी। मेरे विचार अब इस ओर बिलकुल झुक गये, बस, केवल दो बातें खटक रही थीं। पहिली बात 'दूरी' की थी और दूसरी बात थी 'भाई के वियोग' की। पर, पहली बात की इतनी अधिक चिन्ता न थी, जितनी कि दूसरी बात की।

ऐसी ही उलझनों में पड़ा हुआ मैं बहुत काल तक सोचता रहा। अन्त में यही निश्चय किया कि वहाँ चलना उचित है, रही भाई की बात तो उसको भी वहां बुला लेंगे। किन्तु, एक दूसरी आपत्ति और थी कि दूसरी प्रदेश में केवल काज़कों ही का एक रेजीमेन्ट था जो कि हमारी आयु के बालकों के लिए ठीक न था। अतएव, दूसरी प्रदेश को त्याग मैंने साईवेरिया के घुड़सवार काजकों के रेजीमेन्ट में अपना नाम लिखा दिया। मेरे इस निर्णय पर सब को विस्मय था। वे इसे स्वाभाविक प्रहसन समझ कहने लगेः—"वाह! क्रोपाटो!! क्या ही विचित्र जीव, तुम क्या लगोगे? अरे—रीछों के सदृश वालदार काली टोपी! पायजामा क्या कहना है!" ऐसी ही बातें कर के वे सब हमारा मज़ाक उड़ाने लगे। किसी को हमारे निर्णय पर विश्वास न था। पर, जब उनको यह ज्ञात हुआ कि मैं अपने निश्चय पर दृढ़ हूँ तो वे अत्यन्त उदास हो मेरी ओर करुणापूर्ण दृष्टि से देखने लगे। दूसरे दिन जब यह बात प्रोफेसर ब्रोभोवस्की ने सुनी, तो उनको बहुत ही दुःख हुआ, क्योंकि वे समझते थे कि मैं आगे विद्याध्ययन अवश्य करूंगा।

वे बड़े आश्चर्य में थे कि मैंने विश्वविद्यालय में पढ़ने की इच्छा क्यों छोड़ दी। पर, उनको मेरी वास्तविक स्थिति का ज्ञान न था, और मुझको भी यह दुःख रहा कि मैं उनको इसका

परिज्ञान करा भी न सका। प्रोफेसर साहब की आय कम और गृहस्थी बड़ी थी। मैंने अपनी आर्थिक कठिनाइयों की बात उनको इसी कारण और भी नहीं बतलाई। साथ ही मुझे यह भी विश्वास था कि मेरी यह बात सुन कर, वे तुरन्त ही मुझे सहायता देने पर उतारू हो जावेंगे, क्योंकि वे एक बड़े साधुस्वभावापन्न एवं उदार प्रकृतिवाले अध्यापक थे। मैं उनके स्वभाव से भली प्रकार परिचित था। पर मैं स्वयं, सिद्धान्तानुसार, उनकी ऐसी दशा में अपना कच्चा चिट्ठा खोल कर, उन पर अपने पढ़ने-लिखने का भार नहीं डालना चाहता था। इस प्रकार उनको भी मैंने विस्मय-सागर में गोते लगाते वहीं छोड़ दिया। किन्तु, यह बात मुझे बहुत दिनों तक खटकती रही। इधर ज्योंही ये समाचार पिता के पास पहुँचे, उन्होंने तुरन्त डाइरेक्टर साहब को तार द्वारा सूचित करा दिया कि मेरा पुत्र किसी भी तरह साईबेरिया न भेजा जावे। अब समस्या विकट आ उपस्थित हुई। होते होते यह मामला बड़े ड्यूक तक जा पहुँचा। वे इस पाठशाला के संरक्षक थे। मैं बुलाया गया। पहुँचते ही मैं आमूर प्रदेश की महिमा का गुणगान करने लगा, कारण कि मैं इनके सामने भी विश्वविद्यालय में न पढ़ने का कारण धनाभाव बतलाना न चाहता था। यदि धनाभाव की बात मैं तनिक भी छेड़ देता तो कोई न कोई नोबिल तत्क्षण ही धन देने को प्रस्तुत हो जाता, पर, मैं तो ऐसे धन को छूना भी न चाहता था।

इस भांति मेरी इच्छा-पूर्ति में अनेकों बाधाएं उपस्थित हो रही थीं, पर, मैं अपने निश्चय पर अटल था। उसी समय एक विलक्षण घटना हो गई, जिसकी ओर सब लोगों का ध्यान

आकर्षित हो गया। यह घटना थी एक भीषण अग्निकाण्ड जिसके कारण अप्रत्यजल्प में मेरी साईबेरिया जाने की समस्या हल हो गई। सोमवार २६ मई 'होली घोस्ट' (पवित्र भूत) के त्योहार के दिन सेन्ट पीटर्सबर्ग में अपराक्सिन डवर (Apioxin Door) में प्रचण्ड अग्नि लग गई। यह एक खुली हुई जगह थी, जहां पर कि सैकड़ों दूकानें लग रही थीं। इसके पीछे मन्त्रणा-गृह था, जहाँ पर कि राज्य के सभी अमूल्य एवं आवश्यकीय काग़ज़ात रहा करते हैं। सामने की ओर राज्य की मुख्य स्टेट बैङ्क थी। उसके एक ओर की दीवार कोर आफ़ पेजेस के स्कूल से सटी हुई थी। मन्त्रणा-गृह के सामने लकड़ियों की एक टाल थी। यहां पर भी ४ बजे शाम को अग्नि लग गई। यदि उस समय वायु प्रतिकूल होती तो आधा नगर भस्मसात् होगया होता। स्टेट बैंक, मंत्रणागृह व शाही पुस्तकालय का न जाने क्या हाल हुआ होता। मैं उस दिन स्कूल ही में था। धुआं देखते ही मैं तुरन्त वहाँ जा पहुँचा। अग्नि बड़े वेग पर थी। कुछ करते धरते न बनता था। प्रधान कार्य्याध्यक्षों के होश गुम थे। वे पागलों की भांति इधर उधर दौड़ने और हाहाकार मचाने लगे। दुर्भाग्यवश कोई भी पानी बुझाने का कल वहां पर उपस्थित न था। बड़ी दौड़-धूप और परिश्रम के साथ एक एञ्जिन मनुष्य ही घसीट लाये और उससे मन्त्रणा-गृह की रक्षा होने लगी। बड़े ड्यूक भी भड़भड़ाते हुए वहां पर आये, पर न जाने क्यों शीघ्र ही लौट गये। रात्रि को जब कि बैंक बच चुकी थी, ज़ार स्वयं भी वहां आये और कोर आफ़ पेजेस को देखकर चिल्लाने लगे कि अब कैसे हो स्कूल की रक्षा होनी चाहिए, क्योंकि इसके

नष्ट होने से रियासत का सब से बड़ा पुस्तकालय नष्ट हो जायगा। वायु का प्रकोप अधिक हो जाने के कारण अग्नि ने फिर एक बार ज़ोर पकड़ा और इस बार तो वह मन्त्रणा-गृह के कँगूरों तक जा पहुँची।

वहाँ का इन्सपेक्टर भय के मारे काँपने लगा, क्योंकि उस समय तक वह कुछ प्रबन्ध न कर पाया था। हम सब लड़के पोथे के पोथे मन्त्रणा-गृह से उठा उठाकर बाहर फेंकने लगे। इधर अब अग्नि का प्रकोप कोर आफ पेजेस की ओर होगया। दीवारों से पत्थर उचट उचट कर पृथ्वी पर गिरने लगे। यह देखकर हम सब लड़के अपने अपने वासस्थान बचाने को दौड़ पड़े। उस समय का दृश्य बड़ा भयानक था। लड़के तपी हुई भूमि पर खड़े हुए 'पानी'! 'पानी'!! चिल्ला रहे थे। उनकी आवाज़ें हृदय को कम्पित किये डालती थीं। हम लोगों ने पानी की नली को ले लिया और स्वयं दीवारों पर पानी फेंकने लगे। मन्त्रणा-गृह तो कुछ कुछ सुरक्षित सा मालूम होता था, पर, पाठशाला की स्थिति भयानक होती जाती थी। पाठशाला की गली में काठ का कुछ सामान भरा पड़ा था, इससे भय और भी अधिक था। इस भयानक परिस्थिति को देखकर मैं सेन्ट पीटर्सबर्ग के अन्य अधिकारियों की खोज करने लगा। पता चला कि वे सब बंक में इकट्ठे हैं। अस्तु, मैं दौड़ कर बंक में घुसने लगा। संतरियों ने रोकना चाहा, पर, मुझे झगड़े पर उतारू देखकर, वे कुछ झेंपे और मैं इसी बीच में अधिकारियों के समीप जा पहुँचा। उनको देखते ही मैं 'आँच" "आँच" कोर आफ पेजेस नष्ट' इत्यादि शब्दों को कह कर चिल्लाने लगा।

एक अधिकारी—आपको किसने भेजा है ?

मैं—साथियों और विवेक ने, पुस्तकालय नष्ट होता है।

शासक—"हूँ!—पुस्तकालय नष्ट होता है! फाँसी"

ऐसा कह कर वह तत्काल ही नंगे शिर भागता हुआ गली में आ पहुँचा। आते ही बड़ी सावधानी से उसने सिपाहियों द्वारा गली साफ करवा दी। पानी के समस्त इञ्जिन पाठशाला की दीवारों पर पानी फेंकने लगे। इस प्रकार बड़े परिश्रम और प्राणों पर खेल करके कहीं ३ बजे रात्रि को स्कूल सुरक्षित कर पाया। अग्नि भी ठंढी हो गई। प्यास से व्याकुल तो था ही, पानी पीकर खाट पर पड़ रहा। अधिक परिश्रम से थक जाने के कारण निद्रा तुरन्त आगई। प्रातःकाल जो जागा, तो सामने से ग्राण्ड ड्यूक को आते देखा। तुरन्त उठकर उनके साथ हो लिया और वार्ड के चक्कर मारने लगा। लड़के जागते और फिर सो जाते थे। किसी का मुख काला हो रहा था, किसी की आँखें दुख रही थीं तो किसी की जुल्फें ही झुलस गई थीं। कोई पड़ा पड़ा कराह रहा था और कोई जली हुई अंगुली पर स्याही पोत रहा था। सब लड़कों की हुलिया बिगड़ रही थी। ड्यूक इन सब को देखते हुए चले जा रहे थे। मैं भी पीछे पीछे चला जा रहा था कि वे अकस्मात् घूम कर मुझ से पूछने लगे—"तुमने आमूर प्रदेश जाने का विचार क्यों किया है? क्या वहाँ पर कोई तुम्हारे मित्र हैं?"

मैंने कहा—"महाराज! न तो कोई मित्र ही है और न कोई जान पहचान का।" ये वचन सुन कर वे कुछ विस्मय से बोले—"तो तुम फिर वहां क्यों जाना चाहते हो? वहां के

शासकों ने कहीं तुमको कासकस्सों के ग्राम में भेज दिया तो फिर क्या करोगे ?"

मैं—"श्रीमान् ! जो कुछ होगा सब देख लिया जावेगा।"

ड्यूक —"अच्छा, यदि तुम्हारी उत्कट इच्छा वहाँ जाने की है, तो मैं वहाँ के शासकों से तुम्हारी सिफारिश कर दूंगा।"

यह सुनते ही मैं मन ही मन अतीव प्रसन्न हुआ, क्योंकि मैं जानता था कि मेरे पिता इस 'सिफारिश' के शब्द को सुन कर अवश्य शान्त हो जावेंगे। ऐसा ही हुआ भी। पिता जी जी यह सुनते ही शान्त हो गये और मैं यात्रा की तय्यारी करने लगा। इस भांति उस अग्नि-काण्ड ने अप्रत्यक्ष रूप से मेरे साईबेरिया जाने की समस्या हल करदी। पर, एलेक्ज़ेण्डर इसके कारण अब बहुत चिन्तित था, और वास्तव में यह घटना कोई साधारण न थी। अग्निकाण्ड में सब से अधिक विस्मय की बात तो यह थी कि अग्नि एक-दम से चारों ओर से प्रज्वलित हुई। इससे मालूम होता था कि किसी न किसी ने अवश्य ही आग लगाई। देश-प्रेमी हेर्ज़न के विपक्षियों ने यह अपराध उनके अनुयायियों पर मढ़ने की चेष्टा की। पर, वास्तव में किसने आग लगाई, यह जानना कठिन था।

इसके पश्चात् ऐसे ही अग्निकाण्ड के समाचार अन्य गांवों से भी आने लगे। पोलैण्ड विप्लव के लिए कमर कस रहा था, जो कि आगामी जनवरी मास में प्रत्यक्ष रूप से सामने आगया। गुप्त क्रान्तिवादी नई सरकार की रचना की बात सुनाई पड़ने लगी। लंदन से आये हुए व्यक्तियों के दूत राजधानी तक में पाये जाने लगे। धीरे धीरे अशान्ति फिर बढ़ने लगी। उधर

पोलैण्ड में काउन्ट लूडरस को किसी ने गोली से मार दिया। जब उनके रिक्त स्थान पर ड्यूक कान्सटेनटाइन की नियुक्ति हुई तो २८ जून को वे भी मार डाले गये। इन सब बातों से, उस अग्निकाण्ड को करने वाले क्रान्तिवादी ही समझे जाते थे। पर, इन मामलों में कोई बात प्रमाणित न हो सकी। दूसरी ओर प्रजातन्त्र वादियों का विश्वास एलेक्जेण्डर द्वितीय कृत सुधारों से भी नहीं उठने लगा, जिसका कारण ज़ार द्वितीय का विपक्षियों में मिल जाना ही था। इन लोगों के विचारानुसार दासों को स्वतन्त्रता न प्राप्त हुई थी। उनका कहना था कि वे विचार कार्यपूर्ति करते करते ही मिटे जाते हैं। इसी कारण क्रान्ति की घोषणा राजधानी में हो गई। बहुत से नवयुवक अराजकता के भावों को राजधानी तक में फैलाने लगे। किसानों में असन्तोष के डोरे डाले जाने लगे। चारों ओर से गुमनाम चिट्ठियां राज्य में आने लगीं।

दूरस्थ वालगा नदी के प्रदेशों में अग्नि और विप्लव के समाचार आने लगे। विपक्षी गण इतना अपराध लन्दन प्रवासी देश-प्रेमियों के गुप्तचरों पर मढ़ रहे थे। उन्हें मालूम था कि ज़ार अति उग्र स्वभाव का है, इस लिए वे सब शासन प्रथा को नष्ट करने वाला स्कीम को स्थगित करा देने के लिए जुटे पड़े। यह स्कीम नियमानुसार १६ फरवरी सन् १८६३ ई० को कार्य रूप में परिणित हो जाने वाली थी, पर, विपक्षी इसे नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहते थे। अन्त में ज़ार विपक्षियों के फन्दों के मोहपाश में फंस गया और भविष्य में रूस में सुधारों का नाम तक लेना विद्रोह समझा जाने लगा। एक बार विपक्षियों की तूती फिर बोल गई। उदार उद्देश्य-सम्पन्न सज्जनों का

निरापराध गला घोटा जाने लगा। एलेक्ज़ेण्डर वार वार स्कूलों में आते और उपदेश देते थे कि कृषक नीच है। स्मरण रहे, जो इन मामलों मे फँसेगा वह क़ानून की कड़ी से कड़ी धारा का शिकार वनेगा।

इधर मेरे साईवेरिया जाने का समय समीप आगया। ज़ार ने सब वालकों को वुला भेजा। मेरी रेजीमेन्ट सव से छोटी थी, अतः मैं सब से पीछे खड़ा था। क्रमानुसार सब को विदा करके वे मेरे पास आकर मुझसे कहने लगे—"अच्छा! तो तुम साईवेरिया जावोगे? क्या तुम्हारे पिता ने तुम्हें आज्ञा देदी?"

मैं—जी हां—आज्ञा मिल गई।

ज़ार—क्या तुम इतनी दूर जाने से नहीं डरते? यदि मेरे पास रहते तो भी अच्छा था? मैंने तुरन्त ही विनम्रता से उत्तर दिया—"श्रीमान्! मै कार्य्य करना चाहता हूँ। साई-वेरिया में कार्य्य की आवश्यकता है, क्योंकि वह अभी ही राज्यान्तर्गत किया गया है। वहॉ पर सुधारों की भी आवश्य-कता होगी।" "सुधार" का नाम सुनते ही वह कुछ चौकन्ना हो गया, पर, थोडी ही देर पश्चात् शान्त हो बोला—"अच्छा, जाओ, प्रत्येक मनुष्य अपने को सर्वत्र लाभदायक बना सकता है।" यह कह कर वह संदिग्ध पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखता हुआ आगे वढ गया। सन्ट पीटर्सवर्ग की दशा उस समय भयंकर हो रही थी। सिपाही चारों ओर गलियों में पहरा दे रहे थे। प्रासाद के चारों तरफ़ काजकों का दुहरा पहरा था। किले, क़ैदियों से भरे पडे थे। अतएव मैंने संन्ट पीटर्सवर्ग को वग़ैर किसी दुख के साथ छोड दिया।

आवश्यकीय कागजात लेकर मैं सीधे भाई से मिलने आया और वहाँ से तुरन्त ही साईवेरिया को प्रस्थान कर गया।

इर्कुटस्क में सुधारों की चेष्टा

वे पांच वर्ष जो मैंने साईवेरिया में व्यतीत किये, मेरे लिए भविष्य में बड़े ही लाभदायक सिद्ध हुए। वहाँ मुझे निम्न से निम्न तथा उच्च से उच्च श्रेणी के मनुष्यों से मिलने जुलने का काम पड़ा। दुष्टों के समूह, शिक्षितों के समुदाय तथा विपक्षियों तक के दल में मुझे जाना पड़ा। मैं नित्यप्रति किसानों के रहन-सहन, आचार-विचारों को स्वयं देखता जिससे कि मेरा अनुभव उनकी आन्तरिक दशा के सम्बन्ध में पहले से कहीं अधिक होगया। साथ ही जो मुझे ५० हजार मील की यात्रा कहीं रेल, कहीं किश्ती, कहीं पैदल और अधिकतर घोड़े पर करनी पड़ी, उससे मेरे स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ा और मैं इस परिश्रम के कारण अधिक बलवान हो गया। मार्ग में नाना प्रकार के कष्टों को झेलकर मुझ में कष्टों को सहन करने का साहस होगया। वास्तव में, मुझे इस बात का भी पूर्ण अनुभव होगया कि मनुष्य को कितनी स्वल्प चीजों की आवश्यकता है। सहस्रों मील तक घोड़े पर चढ़े हुए, झोले में रोटी रखे हुए, और कोट में पानी की बोतल लटकाये हुए स्वच्छन्दता पूर्वक दुर्गम घाटियों एवं पहाड़ों में भ्रमण करते हुए यात्रा करना वास्तव में कष्टदायक होते हुए भी कैसा मनोहर था !!

इस प्रकार यदि यात्रा का विवरण मैं सविस्तार लिखने लगूं, तो बहुत सम्भव है कि एक दूसरी ही पुस्तक तय्यार हो जावे, किन्तु, मुझे अपने जीवन के बहुत से वृत्तान्त लिखने हैं, अस्तु, इस विषय पर अधिक न लिखेंगे।

साईबेरिया बर्फ से ढका हुआ प्रदेश नहीं है, और न वह केवल प्रवासी भाइयों ही का निवास-स्थान है। उसका दक्षिणी भाग प्राकृतिक पैदावारों के लिए वैसाही उपजाऊ है, जैसा कि केनाडा का दक्षिणी भाग, तथा इसकी प्राकृतिक बनावट भी कुछ कुछ उसी से सादृश्यता रखती है। वहां पर उस समय लगभग ५ लाख आदिम निवासियों के अतिरिक्त लगभग ४० लाख रूसी भी निवास कर रहे थे। पश्चिमी साईबेरिया का दक्षिणी भाग मास्को खास के उत्तरी भाग के सदृश रूसी लोगों से खचाखच भरा हुआ है। कई वर्ष। तक पूर्वी साईबेरिया के शासक काउन्ट एन० एन० मुराबियाफ रहे, जिन्होंने ही आमूर प्रदेश को रूस के अन्तर्गत किया था। वे एक बुद्धिमान, सरल-स्वभाव और शासन-कार्य्य में निपुण परिश्रमी सज्जन थे। इन्होंने बड़े परिश्रम से बेईमान, लुटेरे आफीसरों को निकाल कर, उनके स्थानों पर ईमानदार, परोपकारी आफीसरों की नियुक्ति की थी।

जब कि मैं पूर्वी साईबेरिया की राजधानी इर्कुटस्क पहुँचा तो मुझे ज्ञात हुआ कि यह प्रदेश सेन्ट पीटर्सबर्ग की कुटनीतियों से कितना बचा हुआ है। वहाँ के नवयुवक गवर्नर जेनरल कोरसकाफ ने मेरी बड़ी आवभगत की और अत्यन्त प्रेम से मुझ से भेंट की। इनके विचार उदार मालूम होते थे। जेनरल स्टाफ के सेना-पत मि० कुकेल, जिनकी आयु अभी

केवल ३५ वर्ष ही की होगी. मेरे प्रोफेसर थे और मैं इनका अङ्ग-रक्षक होगया। वे मुझको उसी दिन अपने गृह के एक कमरे में ले गये और अपना पुस्तकालय दिखलाने लगे। वास्तव में उनके यहां अच्छा संग्रह था। रूसी उत्तम लेखकों की अमूल्य पुस्तकें, हेरज़न की क्रान्तिकारी अमूल्य प्रतियाँ आदि अनेकों पुस्तकें उनके यहां देखने में आईं। अस्तु, हम दोनों में शीघ्रही गाढ़ी मित्रता होगई। इसी बीच में जेनरल कुकेल उस समय अस्थायी रूप से ट्रांसबेकालिया के गवर्नर बना दिये गये। थोड़े ही दिनों पश्चात् बेकाल की परम रमणीय झील को पार कर हम दोनों उस प्रान्त की राजधानी चिता (Chita) में जा पहुँचे। राजाज्ञानुसार हम दोनों को उस समय ग्राम-संगठन, पुलिस, कारागार, प्रवासी आदि अनेकों विषयों पर सुधारों के लिए रिपोर्ट तैयार करनी थी। मो० कुकेल एक तीव्र बुद्धि वाले योग्य कर्नल पेडासेन को साथ में लिये हुए दिन-रात परिश्रम कर रहे थे। मैं भी दो सब-कमेटियों का मन्त्री बना दिया गया। एक तो कारागार की व्यवस्था तथा दूसरी प्रवासी भाइयों के निर्वासन के सम्बन्ध की थी, साथ ही कुंगी-स्वराज्य की भी बात मेरे सुपुर्द थी। मैं भी इस कार्य्य में तन, मन से तल्लीन हो गया। मेरी अवस्था इस समय १९ वर्ष की थी।

मैंने रूस में इन विषयों का बहुत अध्ययन किया था। अस्तु, मैं अपना कार्य्य योग्यता पूर्वक कर रहा था। यदि उस समय साइबेरिया को, थोड़ी सी भी स्वतन्त्रता जुगों में दे दी जाती तो वह देश अभी तक बहुत उन्नति कर गया होता। पर, हम लोगों के इस परिश्रम का कुछ भी फल न निकला।

उन दिनों तो हम दोनों का विशेष समय सुधारों के वादाविवाद ही में व्यतीत होता था। मैं और कुकेल दूने उत्साह से काम कर रहे थे। कुकेल किसी को, प्रान्त में अत्याचार करते न देख सकते थे। मुझे स्मरण है कि, प्रान्त में ज़िलाधीश (District Chief) एक पुलिस कर्मचारी था, जो कि अत्यन्त नीच था। वह रातदिन निर्धन किसानों का रक्त चूसा करता और औरतों तक पर कोड़ों की मार निर्दयता पूर्वक लगवा देता था। मुकदमा लगने पर तो वह आदमियों को बहुत ही तंग करता और जब तक कि उसे रिश्वत न मिल जाती, तब तक वह निपटारा होने ही न देता था। गवर्नर ने उसको कभी का बरखास्त कर दिया होता, पर, वह भी लाचार था, क्योंकि उसके पतपानी सेन्ट पीटर्सबर्ग में विराजमान थे। किन्तु, उनके अत्याचारों से विवश हो अन्त में यही निर्धारित रहा कि यह निकाला जाना चाहिए और मैं जाकर उसके सम्पूर्ण मामले की जाँच करूं तथा उसके विरुद्ध गवाहियां एकत्रित करूं। यह काम सरल न था, किसान भय के मारे मेरे पास तक न आते थे। उनका कहना था—"यम तो दूर है, पर, ये चाबुक तो सर पर ही सवार है।" अत्याचार-पीड़ित मनुष्यों में इतना तक साहस न था कि वे उन औरतों तक को हमारे पास आने देते, जिनके नृशसता से कोड़े लगे थे। बस, मैं वहां ठहर गया और नित्य-प्रति किसानों से बातचीत करने लगा। धीरे धीरे उनको विश्वास होगया कि, मैं अवश्य ही उनके दुःखों को नष्ट करने आया हूँ। इस प्रकार उस धूर्त के विपक्ष में मैंने अनेकों अकाट्य सप्रमाण गवाहियां एकत्रित करलीं। इसके फल स्वरूप, वह निकाल दिया गया। पर,

उसके कुछ ही समय पश्चात् यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि, वही दुष्ट कामचटका में ऊँचे ओहदे पर नियुक्त करके भेज दिया गया है। वहाँ पर भी उसने खूब जेब गर्म की और स्वल्प काल ही में बहुत सा धन एकत्रित करके सेन्ट पीटर्सबर्ग लौट कर विपत्तियों के दल में मिल गया।

विपत्तियों की हवा अभी साईबेरिया तक न पहुँच पाई थी, अतएव, राजनैतिक दण्ड में निर्वासित किये हुए भाइयों के साथ दया का बर्ताव होता था। मुझे स्मरण है कि, सन् १८६१ ई० में कविवर मिखेलाफ को एक क्रान्तिमयी भावों की कविता लिख डालने के अपराध में साईबेरिया-निर्वासन का दण्ड दिया गया। पर, साईबेरिया में प्रवेश होते ही एक कर्म्मचारी ने उनको भोज दिया, जिसमें प्रायः बहुत से सरकारी कर्म्मचारी उपस्थित थे। ट्रान्सबेकालिया में आने पर उनको राजाज्ञानुसार कठोर दण्ड नहीं दिया गया। वे अस्वस्थ थे, अतः उनको एक स्वच्छ मकान रहने को दे दिया गया। इसी समय की बात है कि, वहाँ पर स्थित कुछ धूर्त लोगों के कारण सेन्ट पीटर्सबर्ग पुलिस के अफसर इस बात का ज्ञान करने को स्वयं पधारे। पर एक अर-दली द्वारा गवर्नर कुकेल को पता चल गया, और उन्होंने उनको एक सुन्दर सा भोज देकर बीच ही में बिलमा लिया। इधर मैंने आकर तुरन्त उनको सूचना करदी और वे सूचना पाते ही तत्क्षण कारागार में आ बैठे।

पोलैंड का विद्रोह

जनवरी सन् १८६३ ई० में पोलैण्ड में सशस्त्र बलवा उठ खड़ा हुआ। लड़ाई छिड़ गई। लन्दनस्थ रूस के प्रवासी विद्वान् पोलैण्ड निवासियों ने युद्ध को स्थगित

कर देने के लिए क़लम तोडने लगे। उनका विचार था कि, इस से ये परास्त होंगे और साथ ही रूस के सुधार-युग को नष्ट करा देंगे। पर, कुछ भी न चल सकी। वारसा में गरम दल वालों पर किये गये अत्याचारों ने एक ऐसी आग लगादी थी, जो शान्त न होसकी। उस समय जैसे पालिस (पोलैण्ड-निवासी) लोगों से सहानुभूति प्रकट करने वाले पहिले कभी रूस में इतनी प्रचुर मात्रा मे न देखे गये थे। गरम दल वालों की तो बात ही क्या कहे, नरम दल वाले भी खुल्लमखुल्ला चिल्ला रहे थे :—"बागी प्रजा से पडोसी मित्र अच्छा, पोलैण्ड वालों से मित्रता स्थापित करने ही मे रूस का लाभ है। पोलैण्ड अपनी राष्ट्रीयता कभी भी नष्ट न होने देगा और वह सुदृढ आधार पर अवलम्बित है। चाहे पराजय ही क्यों न हो, पर, वह अपनी भाषा, वेष और भाव को कभी भी त्यक्त करने को प्रस्तुत न होगा।"

इस प्रकार सन १८६३ ई० में बलवा के प्रारम्भ हो जाने पर समस्त रूस मे खलबली मच गई। बहुत से सैनिकों ने पोलिसों के विरुद्ध लडने से अनिच्छा प्रकट करदी और वे तुरन्त गोली मे मार दिये गये। रूस तक में बलवाइयों को सहायता के लिए चन्दा एकत्रित हो रहा था और साईबेरिया मे तो यह चन्दा खुल्लमखुल्ला हो रहा था। इसी समय रूस में एक अफवाह जोरों के साथ फैल गई कि, बागियों ने रूसी सिपाहियों को १० जनवरी को सोते ही मे कत्ल कर दिया। अस्तु, दोनों राष्ट्रों का वैमनस्य-भाव अपनी अपनी उत्पत्ति में एक दूसरे से सादृश्यता रखते हुए भी, राष्ट्रीयता के भावों में विभिन्न होने के कारण और भी प्रज्वलित हो गया। पर, धीरे

धीरे उस भाव में पुनः परिवर्तन होने लगा। पोलैण्ड निवासियों की वीरता ने उनको फिर एक बार अपने खोये हुए सम्मान को प्राप्त करा दिया। साथ ही अब तक यह बात भी तय हो गई थी कि, उस हत्याकाण्ड का ब्यौरा बहुत ही बढ़ा कर सुनाया गया है। इस प्रकार १८ महीने तक निरन्तर युद्ध होता रहा। किन्तु, पोलैण्ड की बागी सरकार को, दासों की भूमि वापिस दिलवाने की बात ही स्मरण न थी और इस गलती से रूसी सरकार ने बहुत ही लाभ उठाया, वह अपने को पोलिस किसानों की रक्षक बतलाने लगी।

आरम्भ में जब बलवा शुरू ही हुआ था, यह बात निर्विवाद मानी जाती थी कि, पोलैण्ड की बागी सरकार एकदम उदार नीति का अवलम्बन करेगी, जो कि स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले प्रत्येक राष्ट्र का प्रथम लक्ष्य होना चाहिये। पर इस पोलैण्ड के बलवे में धनी लोग भी प्रवेश कर गये थे, अतएव वह बात जो किसानों की मुक्ति के विषय में तुरन्त होनी चाहिये थी नहीं हुई। इसके विपरीत एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय ने मिलर चेरकासी व मुलटिन को पोलैण्ड में किसानों के उभाड़ने को भेज दिया और कहलवा भेजा कि हमारी सरकार तुम लोगों को मुक्त करवावेगी, चाहे जमींदारों का सर्वनाश ही क्यों न हो जावे। इसका प्रभाव वहाँ के किसानों पर बहुत पड़ा, और उन्होंने युद्ध से बहुत कुछ हाथ खींच लिया। पर तो भी युद्ध इतना प्रचण्ड हुआ कि रूसी विद्यार्थियों के रेजीमेन्ट तक युद्धक्षेत्र में भेज दिये गये। मेरे चचेरे भाई पीटर निकोलेविच क्रोपाटकिन मुझ से तब कहा करते थे कि समस्त बागियों का इतना प्रबल जमघट था कि, उनको पीछे हटा देना बड़ा कठिन

था। प्रसिद्ध मिखेल मुरोवियाफ वहुधा कहा करते थे कि पोलैण्ड तो हाथ से गया, यदि इस समय लूथानिया ही बचा ली जावे तो बहुत है।

वास्तव मे, रूसी सैनिकों का पोलैण्ड निवासियों के मारे नाको दम हो गया था। वे अचानक किसी पहाड या गुप्त स्थान से फौज पर टूट पडते और मार-पीट कर फिर भाग जाते। उनके ही देश मे उनका पता चलना बहुत मुश्किल था। इस प्रकार यह मामला वहुत दिनो चला। अन्त में प्रिन्स चेर-कसी व मुलटिन ने, घोर युद्ध करके किसानों को स्वतन्त्र करा दिया और उनका पक्ष लेकर लडने लगे। बस, फिर क्या था, किसान-समुदाय हमारे साथ हो गया और उनकी सहायता से रूसी सेना बागियों के झुण्डों को पकडने लगी और वलवे की इतिश्री हो गई। मैंने इस विषय पर साईबेरिया में रहने वाले अनेकों पालिसों से कई बार वार्त्तालाप किया और उन सब ने एक स्वर से इस भारी भूल पर पश्चाताप किया। सच तो यह है कि, किसी क्रान्ति की सफलता उसके न्यायानुकूल सिद्धान्तों पर ही हो सकती है, न कि, उन कोरी प्रतिज्ञाओं पर, जो बहुधा जनता को हरित उद्यान दिखलाने के लिए उनसे की जाती है।

ऐसी अनेक गलतियों के कारण पोलैण्ड निवासियों को परास्त होकर अनेकों दुःख झेलने पडे। उनके साथ बडी कठो-रता के व्यवहार हुए। न जाने, कितने युद्ध-क्षेत्र में काम आये? न जाने, कितने शूली पर चढा दिये गये? और न जाने, कितने सहस्र रूस और साइबेरिया के सुदूरस्थ प्रदेशों में निर्वासित कर भेज दिये गये? यदि आप साधारण जनता की गणना को

छोड़ कर सरकारी विज्ञप्ति पर ही दृष्टिपात करेंगे तो आपको विदित हो जावेगा कि केवल लूथेनियन प्रान्त ही से मुरोवियाफ व मिखेल ने स्वयं अपने अधिकार से १२८ पोलिसों को शूली पर चढ़वा दिया और ६४७३ नर-नारियों को निर्वासित कर के न जाने कहाँ कहाँ भेज दिया। रूस से प्रकाशित सरकारी विज्ञप्ति देखने से और भी पता चलता है कि १८६७२ नर नारी पोलैण्ड से केवल साइबेरिया को भेज दिये गये।

इधर रूस पर भी इस युद्ध का प्रभाव बुरा पड़ा। सुधारों की चर्चा तो नो-दो-ग्यारह होगई। सन् १८६४ व १८६६ में प्रान्तिक स्वराज्य व अदालतों में कुछ सुधार अवश्य हुए। पर, ये सुधार सन् १८६२ ई० में तैयार होगए थे। इस बीच में विपक्षी-दल के नेता वेलूस ने एक दूसरी आयोजना और तैयार कर दी थी। ज़ार को भी वह पसन्द आई। अतएव दोनों ही स्कीमों का एक दूसरे में समावेश करके सुधार-स्कीम प्रकाशित की गई जिससे पहले विचारे गये सुधारों की उपयोगिता बहुत कुछ नष्ट-प्राय होगई। इसका कारण यह था कि अब सुधारों में उपनियमों की बहुत भरमार कर दी गई थी। तत्पश्चात् जो कोई भी वास्तविक सुधारों की चर्चा तक करता वह कटकाफ द्वारा 'वागी स्कीम' के नाम से पुकारा जाता। होते होते विपक्षियों की कूटनीति सुदूरस्थ प्रदेश साइबेरिया तक में अपना आतंक जमाने लगी। एक दिन मार्च के महीने में एर्कुटस्क से एक विशेष दूत एक आज्ञा-पत्र लाया, जिसमें जेनरल कुकेल को ट्रांसबेकालिया के शासन-भार को शीघ्र ही त्याग कर एर्कुटस्क चले जाने को कहा गया था। वहाँ पर इनको इनके सम्बन्ध में विशेष आज्ञाएं प्राप्त होंगी।

ऐसा क्यों ? इसका क्या अर्थ हो सकता है ? कुकेल के मित्र स्वयं गवर्नर जेनरल ने भी कोई शब्द इस रहस्य पूर्ण आज्ञा के सम्बन्ध मे न लिखा था। अस्तु, क्या इसके यह माने समझे जावें कि विचारा निर्दोष कुकेल जीवित ही सेन्टपीटर व पालके क़िलों में संतरियों के पहरे मे दफ़ना दिया जावेगा। सब सम्भव था। बाद को ज्ञात हुआ कि मेरे अनुमान वस्तुत. यथार्थ थे। ज़ार की तो यही इच्छा थी कि जेल में ठूस दिये जावें, और ऐसा ही होता, यदि आमूर प्रदेश के विजयी वीर निकोलस मुरोवियाफ स्वय इस मामले के बीच में न आ जाते। उन्होंने दयार्द्र हो ज़ार से स्वय जाकर प्रार्थना की कि कुकेल की यह दशा न की जावे। ख़ास रूस मे इन्होंने कई प्रदेशों को जीत कर मिलाया था। यही कारण था, कि, ज़ार इनकी बात बहुत मानते थे। अस्तु, इनके ही समझाने बुझाने से मामला जहा का तहा दबा दिया गया। मि० कुकेल और उनके कुटुम्ब के चले जाने से मेरा हृदय बडा खिन्न रहा करता। उनके वियोग से मुझे बहुत ही कष्ट पहुँचा। रिक्त स्थान पर एक नए गवर्नर जेनरल आये। यह स्वभाव के तो अच्छे थे, पर, एकान्त-प्रिय थे। मैंने अब अधिक परिश्रम करके शीघ्र ही देश-निकाले तथा चुंगी के सम्बन्ध की स्कीम, पूरी करदी। गवर्नर महोदय ने जहा तहा एक दो अशुद्धियों को बता कर स्कीम पर हस्ताक्षर कर दिये। वह तुरन्त सेन्ट पीटर्सबर्ग भेज दी गई। पर, उस स्कीम का वहां क्या हुआ ? क्या उस पर कोई विचार हुआ ? नहीं, वरन् वह भी अन्यान्य स्कीमों की भाति एक कोने में सदैव के लिए सड़ने को डालदी गई। किसी ने उसे

अवलोकन तक नहीं किया। देश-निकाले की प्रथा यथावत् बनी रही, और उसके नियम पूर्ववत् गला घोटने वाले बने रहे।

उस समय प्राय सब इस मत के थे कि एलेक्जेण्डर द्वितीय झूठी आशाओं के चक्कर में अपना सर्वनाश कर रहा है। कभी कभी तो वह जनता की मांगों को स्वीकार कर बैठता, समस्त रूस में सुधारों के लिए स्कीमें बनाने की आज्ञा दे डालता, पर ज्योंही वे ठीक होकर उसके सामने आतीं, वह उन को देखते ही घबड़ा कर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर देता। यद्यपि उसको ऐसा करने से रोकने वाला कोई भी न था, पर यह भय कि वह, कुछ अवश्य किये डालता है, उसको कभी भी नये कार्य में अग्रसर न होने देता था। इस प्रकार आगामी ३४ वर्ष तक परिवर्तन की बात कहने वाला प्राणी संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता था और सुधारों का तो नाम लेना ही पाप था।

आमूर नदी की दुर्घटना

चिता में सुधारों के सम्बन्ध में कोई आशा न देखकर ग्रीष्म ऋतु सन् १८६२ ई० में मैंने आमूर प्रदेश के निरीक्षण करने की बात सहर्ष स्वीकार करली। आमूर नदी के बायें किनारे का उत्तरी भाग, जोकि, नीचे दक्षिण में शांति महासागर से लगा हुआ वलाडीवोस्टक (Vladivostok) तक चला गया है, वीर मुरोवियाफ ने जीत लिया था, यद्यपि रूसी सरकार इसके पक्ष में न थी और न उसने मुरोवियाफ को विशेष सहायता ही दी थी। इस प्रकार यह काम मुरोवियाफ

ने अपनी ही जिम्मेदारी पर किया था। बड़ी दौड़-धूप और परिश्रम से उसने इस प्रदेश को नर-नारियों से बसा दिया। कुछ कैदियों को रिहा करा कर वहां बसवा दिया। उन लोगों के विवाह उसने स्वयं खड़े होकर करा दिये। इन घटनाओं के ९ वर्ष पश्चात् मैं वहां पहुँचा था। वे निर्धन थे। ज़मीन को ठीक करने में उनको बहुत परिश्रम करना पड़ता था। किन्तु मुरोवियाफ का उद्योग असफल न हुआ था। विवाह बहुत सोच विचार कर कराये गये थे, इस कारण वे सुखी थे।

प्रत्येक वर्ष उन लोगों के लिए नमक, आटा व अन्यान्य खाद्य पदार्थ पहुँचाये जाते थे। और इसके लिए लगभग १५० किश्तिया इङ्गनोडा, शिका व आमूर नदी द्वारा चिता से सामान लेकर दक्षिणी आमूर को जाती थीं। इन किश्तियों के साथ वे ही मनुष्य रक्खे जाते थे जिन पर प्रान्तीय सरकार को विश्वास होता था। इस वर्ष में भी मेजर मारोवस्की का, जो कि इस वर्ष प्रधान थे, नाइब बनाकर इन किश्तियों के साथ भेजा गया। ये सब किश्तिया ४–६ टुकड़ियों में भेजी जाती थीं। नाविक की हैसियत से मेरा यह पहला ही अवसर था। साथ ही संयोगवश हमको खेने के लिए भी अनुभवी मनुष्य न मिले। जब वे नाव पर लाये गये, सब शराब के नशे में बेसुध थे और उनको होश में लाने के लिए कई घंटे नदी में नहलवाना पड़ा। मार्ग में हम उनको आवश्यक सूचनाएं बराबर देते जाते थे। कुछ दिन तक तो हम आनन्द पूर्वक यात्रा करते रहे। एक समय का बात है, सन्ध्या का समय था कि हमारी एक किश्ती, जिस पर हम बैठे थे, एक चट्टान के नीचे जा फँसी। पानी वहां अथाह था। हमारे १० नाविकों ने बहुत प्रयत्न किया, पर, वे

उसे यहां से न हटा सके। वरन् इसी प्रयत्न में किश्ती की तली फट गई और पानी आने लगा, मछलियां किश्ती में तैरने लगीं। उस समय मैं भौचक्का सा खड़ा सोच रहा था कि क्या करूं और क्या न करूं ! पीछे मुझे ज्ञात हुआ कि ऐसे अवसर पर हम को यह चाहिए था कि आटे का एक बोरा उस छिद्र पर डाल कर कूद देते, पर, हममें से कोई भी इस उपाय को तब न जानता था।

सौभाग्यवश उसी समय एक दूसरी किश्ती आती देख पड़ी। उस समय की प्रसन्नता को मैं नहीं कह सकता, जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि इस किश्ती का स्वामी हमारा एक कासक मित्र है। आते ही उसने हमारी मूर्खता एवं अनभिज्ञता पर पश्चाताप प्रकट करते हुए कहा कि यह किश्ती किसी भी प्रकार से यहां से नहीं निकल सकती। अस्तु, उसके बतलाए हुए उपाय से छिद्र बन्द हुआ, पानी तुरन्त किश्ती से बाहर फेंका गया। सब असबाब इस किश्ती से उसकी किश्ती पर लाद दिया गया और प्रातः होते ही हम सब आनन्द पूर्वक यात्रा करने लगे और आमूर-नद के पार अभिमत स्थान पर पहुँच गये। वास्तव में प्रकृति से प्रेम करने वाले को आमूर के ऊपर का भाग बड़ा ही सुन्दर लगेगा। चारों ओर ऊंची ऊंची चट्टानों से झरने का झरना, सुहावने दृश्य आदि सब बड़े ही मनोहर थे। आमूर नदी कोई साधारण नदी नहीं है। जिन्होंने मिसीसिपी और पानटीसीक्याग नाम की नदियों को देखा है वेही इस बात का अनुमान कर सकते है कि सुनगरी नदी के और मिल जाने पर उसका विस्तार कितना अधिक हो जाता होगा, और तूफान के समय में उसकी लहरों की क्या ऊंचाई होती होगी।

वर्षा-ऋतु में यूसरी व सुनगरी नदी के मिल जाने पर आमूर का जो विकराल रूप हो जाता है, वह प्रायः नदियों का अन्यत्र नहीं हुआ करता। कहीं कहीं तो उसकी चौड़ाई दो से लगार ५ मील तक हो जाती है। बहुत से छोटे छोटे टापू जल-मय हो जाते हैं। और इसी अन्तर में, यदि चीन सागर से कहीं टाईफून* (Typhoon) नदी में आगया, तब तो फिर कहना ही क्या है? हम लोगों को भी इस टाईफून का एक बार अनुभव हो चुका है। मैं मेजर मारोवस्की के साथ किश्ती पर बैठा था। तूफ़ान आते देख हम लोग एक सहायक नदी के किनारे जाकर ठहर गये। वहाँ पर हम दो दिन के लगभग ठहरे, पर, और लोग अपनी अन्यान्य किश्तियों के लिए बड़े ही आतुर हो रहे थे। हम लोगों को भय था कि कहीं हमारी नावें तूफान में फँस कर नष्ट न होगई हों। तूफ़ान शान्त होते ही हम लोग नदी में आ गये। दुरबीनें लगा कर दूर दूर तक दृष्टि डाली, पर, नावों का कुछ भी पता न था। इस प्रकार चलते चलते दो तीन दिन हो गये, पर, नावों की कुछ भी खबर न मिली। मेरे मित्र मारोवस्की की नींद व भूख दोनों ही मारी गई, और उनका चेहरा पीला पड़ गया। वे कई दिनों तक नाव के तख्ते पर चुपचाप बैठे हुए पश्चात्ताप करते रहे। कोई ग्राम पास में दृष्टि न पड़ता था। होते होते एक दूसरा तूफान आगया, पर, जो सवेरा हुआ तो हमारी किश्ती एक ग्राम के निकट जा पहुँची। वहां पर पूछने से ज्ञात हुआ कि, कोई भी किश्तियां यहां से नहीं निकलीं, हां, कुछ टूटे-फूटे

* एक प्रकार की गर्म व तेज वायु जो चीन सागर में चला करती है।

नावें कल के दिन अवश्य बहते हुए निकले थे। अतएव यह प्रत्यक्ष प्रगट हो गया कि चालीस नावें जो खाद्य पदार्थों से लद भरी थी नष्ट हो गई और अबकी वार आमूर प्रदेश में घोर दुर्भिक्ष पड़ेगा। अस्तु, हम लोगों ने बैठ कर परामर्श किया और उसमें यह निश्चय किया कि मारोवस्की जितनी शीघ्र हो सके आमूर के मुहाने पर जाकर वहाँ के ग्रामों से अनाज खरीदे और इस बीच में, मैं जिस तरह हो सकेगा दो हजार मील की यात्रा तय करूंगा और नष्ट हुई नौकाओं का पता लगा कर शीघ्र ही चिता के अधिकारीवर्ग को सूचना दूंगा, जिसमें वे कुछ और प्रबन्ध कर सकें। अतः कहीं पैदल कहीं घोड़े पर, कहीं नाव पर यात्रा करता हुआ मैं वहाँ से चल दिया। मार्ग में अनेकों सकटों को झेलता हुआ येनकेनप्रकारेण मरता-गिरता उस स्थान पर जा निकला, जहाँ पर कि दो हजार मन आटे से भरी हुई नावें डूब गई थीं। इन समाचारों को लेकर मैं आगे बढ़ा।

आमूर प्रदेश के निवासियों के विचार से हृदय काँप उठता था कारण कि थोड़े ही दिनों में नदी में नावें न चल सकेंगी। वे बिचारे अब क्या खावेंगे- इन्हीं विचारों में निमग्न मैं ट्रान्स-बेकालिया के मुख्य नगर चिता में जा पहुँचा। वहाँ के गवर्नर मेरे मित्र जनरल पिटासहेल्सकी ने तुरन्त सामान भेजने का आवश्यक प्रबन्ध करवा दिया। ऐसा होने पर मैं सीधा इर्कुटस्क को, बड़े गवर्नर को सब वृत्तान्त सुनाने चल दिया। वहाँ सब को इसी बात का बड़ा विस्मय था कि मैं इतनी दूर इतने थोड़े समय में किस प्रकार आगया। पर मैं भी चकनाचूर था। विश्राम के लिए वहीं ठहर गया। एक सप्ताह तक

बाहर उठकर नहीं आया। इस बीच में इन दिनों में कितने कितने घंटे सोया, इसका कोई हिसाब नहीं, तथा मुझे अब बताने में लज्जा आती है। इस प्रकार एक सप्ताह पश्चात् जब मैं बाहर आया, तो गवर्नर महोदय ने पूछा—"क्या आप पूर्ण विश्राम कर चुके?"

मैं—"जी हां—धन्यवाद—मैं अब फिर चंगा हूं।"

गवर्नर—"तो क्या आप अब सेन्ट पीटर्सबर्ग जा सकते हैं? आप वहां जाकर कुल समाचार सुना आइए।"

इसका अभिप्राय लगभग २० दिन में ३२०० मील की दूसरी यात्रा थी। सेन्ट पीटर्सबर्ग के लिए निजनी नोवोगाड से रेल मिलेगी, पर, वहाँ तक पहुँचना तो साधारण बात न थी। उस समय की यात्रा के लिए बैलगाडी या पैदल के अतिरिक्त और कोई चारा न था। प्रथम तो मैं यह सुनकर चुप होगया; परन्तु, उसी क्षण भाई से भेंट हो जाने की लालसा हृदय मे लहरें मारने लगी। मन ही मन सोचने लगा कि सब से मिलने का यह अच्छा सुअवसर है। ऐसा ही कुछ विचार कर मैं जाने को सहमत होगया। उसी क्षण मेरा समुचित प्रवन्ध करा दिया गया और मैं शीघ्रता से सेन्ट पीटर्सबर्ग की ओर चल दिया। जब मैं पश्चिमी साईबेरिया की सीमा, यूराल पर्वत की घाटियों के समीप पहुँचा तो बर्फ से बहुत कष्ट होने लगा। गाडियों के पहिए बर्फ में धँस जाते थे, बार बार मुझे उतरना पडता था। सर्दी के कारण पैर ठिठुरे जाते थे। जैसे तैसे मैं ओब नदी पर पहुँचा तो उसमे बर्फ की चट्टानों का बहना प्रारम्भ हो गया था। नदी मे क्षण क्षण पर प्राणों की बाजी लग रही थी। उस समय बस,

यही मालूम होता था कि, अब कोई चट्टान हमारी नाव से टकराती है और मैं रसातल को जाता हूँ।

इस भयानक दृश्य को भी जैसे तैसे पार कर मैं टाम नदी के किनारे जा पहुँचा। अहा! यदि इसे पार न करना होता तो क्या ही मनहरण, मनोहर दृश्य था!! बहने वाली नव चट्टानें यहां पर एकत्रित हो रही थीं। उस नदी-तटवासी मुझे पार उतारने को तैयार न थे। उनका कहना था कि आपको नदी में डुबाकर हम सब को अपने प्राण सकट में नहीं डालने है। कहीं आप डूब गये तो हम सब की आपत्ति आ जावेगी। जब मैंने उनको बहुत तरह से समझाया-बुझाया तो वे एक रसीद मांगने लगे, जिससे कि यदि मैं डूब जाऊं तो उन पर कोई आपत्ति न आवे। मैंने उनके कहते ही तुरन्त एक रसीद लिखदी, जिसका आशय इस प्रकार है :—

"I, the undersigned, hereby testify that I was drowned by the will of God, and through no faults of the peasants"

अर्थात् "मैं, जिसके कि नीचे हस्ताक्षर हैं, इस बात की साक्षी देता हूँ कि मैं (टाम) नदी में ईश्वरेच्छा से डूब गया, इसमें किसानों का कोई अपराध नहीं है।"

यह रसीद पाते ही वे सदर्प तैयार हो गये। उनमें से एक उत्साही नवयुवक तुरन्त एक बांस लेकर मेरे आगे हो लिया। वह बांस से बर्फ का निरीक्षण करता हुआ बड़ी सावधानी से मुझे उस पार ले गया। अन्ततोगत्वा मैं मास्को जा पहुँचा। यहां मैं अपने भाई से मिला। हम दोनों वहां से सेन्ट पीटर्सबर्ग को चल दिये। जब मैं सेन्ट पीटर्सबर्ग पहुँचा

तो मुझे ज्ञात हो गया कि मैं ही इस रिपोर्ट को लेकर क्यों भेजा गया ? किसी को यहा पर इतनी नौकाओं के नष्ट होने पर विश्वास न होता था। मुझे देखते ही प्रश्नों पर प्रश्न होने लगे, विशेषकर युद्ध-सचिव डिमवी मिलूटन ने तो बहुत ही कुछ पूछ डाला। क्या आपने नौकाओं को स्वय नष्ट होते देखा ? क्या आपको पूर्ण विश्वास है कि नौकाएं नष्ट हो गई है ? क्या बीच मे कोई गोलमाल तो नहीं हो गया ? ऐसे ही अनेकों प्रश्न मुझ से किये गये। शान्ति पूर्वक मैंने सब प्रश्नो के उत्तर सन्तोषजनक रूप से उनको दे दिये। उस समय मुझे मन ही मन कर्म्मचारियो की अज्ञानता पर दु.ख होता था। ये साईबेरिया के मन्त्री बन कर राजधानी मे तो बैठे है, पर, वहा की वास्तविक स्थिति का कुछ भी पता नही है। क्या ही विचित्र लीला है !!

जब उपस्थित महानुभाव मुझ से मनमाने प्रश्न कर चुके, तब काउण्ट इगनाटिफ़, जो कि आमूर नदी से जानकारी रखते थे, पीछे से बोले—"ठीक—अब समझ मे आया। यह बड़ा ही अच्छा हुआ कि, आप स्वय सब बातें बतलाने आये और आपने स्वयं उस स्थान को देखा है, जहा पर कि, नौकाएं नष्ट हुई थीं। मैंने सोचा था कि धनापहरण का यह कोई नया आविष्कार है। हम सब को सशय था कि धन कहीं बीच ही में न हड़प कर लिया गया हो। पर, आप पहिले अग-रक्षक-दल में रह चुके है और वहां पर भी गये आपको थोड़ा ही समय हुआ है, अतएव आपकी बातों पर विश्वास किया जाता है।" यह सुन कर हृदय को सान्त्वना हुई, क्योंकि मेरा परिश्रम भी सफल हुआ, और उस निर्दोष गवर्नर का मुह भी काला न हुआ।

साईबेरिया का जीवन

मैं सेन्ट पीटर्सबर्ग में बहुत दिनों तक न ठहर कर थोड़े ही दिनों पश्चात् इर्कुटस्क वापिस चला गया। मुझे उस समय यह जानकर कि मेरे बड़े भाई अब शीघ्र ही कासकस् दल के अफसर बना कर इर्कुटस्क भेजे जाने वाले हैं, बड़ी प्रसन्नता थी। इधर धीरे धीरे शीत ऋतु आगई। मैं बर्फ की उन सफेद चादरों को पार करता हुआ, बीच में कहीं कहीं केवल एक दो घंटे का विश्राम करके, १९ ही दिनों में इर्कुटस्क जा पहुँचा। मैं २०० मील प्रति दिवस की गति से बराबर चला यहाँ तक कि अन्त की ८६० मील की यात्रा मैंने ७० घंटों ही में तय की। पाला भी अब कुछ कम था। घोड़े मैदानों में सरपट दौड़ते चले जाते थे। कहीं पर्वतों के ऊपर, कहीं घाटियों के बीच में, कहीं नदी के किनारे प्राकृतिक सुख का अनुभव करते हुए यात्रा करना सचमुच बड़ा आनन्द दायक मालूम होता था। मेरे लौटने का समाचार सुनकर गवर्नर बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने मुझे पूर्वी साईबेरिया के कारबारों से सम्बन्धित विषयों के लिए अपना निजी सलाहकार बना लिया। मैं अब इर्कुटस्क ही में रहने लगा पर यहाँ कोई काम न था। मेरा जी यहां से ऊब उठा। अतएव मन्चूरिया के भौगोलिक अनुसन्धान का काम मैंने हर्ष पूर्वक अपने हाथ में ले लिया।

भौगोलिक अनुसन्धान के अतिरिक्त सुधारों की ओर कोई विशेष कार्य होते न देखा। मैं कुछ अन्य समस्याओं के

सुलझाने का प्रयत्न करने लगा। उस समय यूसरी प्रदेश के कोसेक्स लोगों की आर्थिक स्थिति का पता लगाना बहुत ही आवश्यक था। कारण यह था कि प्रत्येक वर्ष उनकी फसल नष्ट हो जाती थी और उनके पोषणार्थ सरकार को प्रति वर्ष कुछ न कुछ देना पड़ता था। मैंने इस बात की पूर्णतया जांच कर एक रिपोर्ट पेश की, जिससे उनकी स्थिति में बहुत कुछ अन्तर पड़ गया। चारो ओर से मेरी प्रशंसा होने लगी। मुझे उच्च पदवी प्रदान की गई तथा कुछ पारितोषिक भी दिया गया। उस रिपोर्ट में मैंने जिन जिन बातों की सिफारिश की, वे सब स्वीकार कर ली गईं। कोसेक्स लोगों की भलाई के लिए उनको जानवर दिलवाने के लिए भी रुपया मंजूर हो गया। किन्तु, उन सब बातों को कार्य्यरूप में परिणत किये जाने का भार उन्हीं पापी शराबखोरों के हाथों में सौंप दिया गया, जो उस धन को पाते ही उड़ाने लगे और कोसेक्स को कोड़ों से पिटवाने लगे। बस, सेन्ट पीटर्सबर्ग से लेकर यूसरी व कामचटका तक चारों ओर हाहाकार मच गया।

यह मैं स्वीकार करूंगा कि साइबेरिया के प्रति सब की उदार नीति थी। सरकार उसे अच्छे ढंग से शासित कराना चाहती थी। पर क्या हो? शासन-प्रणाली का ढंग ही इतना दूषित था कि कुछ काम अच्छा हो ही नहीं सकता था। वहाँ पर इस बात की चिन्ता न थी कि अमुक कार्य्य से देश को लाभ पहुँचेगा या हानि, यदि कोई चिन्ता थी, तो बस केवल इस बात की कि उस काम से शासन-प्रणाली पर क्या प्रभाव पड़ेगा, अथवा उस कार्य्य से उच्च अधिकारियों की मान-रक्षा होगी या नहीं? शनै शनै. मैं अपनी शक्ति को अधिक

रूप से वैज्ञानिक अनुसन्धानों की ओर लगाने लगा। सन् १८६४ ई० में मैंने ज्वालामुखी पर्वतों के सम्बन्ध में चीनी सरहद के ऊपर बहुत कुछ जाँच-पड़ताल की। साइबेरिया में रहने से जो अनुभव मुझे हुआ, सम्भव है वह अन्यत्र न हो पाता। मुझे इस बात का भी आभास होने लगा कि वर्तमान शासन-प्रणाली के अन्तर्गत रहकर मैं जनता का कोई भी काम न कर सकूँगा। इस प्रकार मेरे चित्त का भ्रम सदैव के लिए विलीन हो गया। और इस भ्रम के हटते ही मैं मानवीय स्वभावों के लक्षणों को ही नहीं वरन् मानव समाज के जीवन की आन्तरिक उत्पत्ति को भी कुछ कुछ समझने लगा। अविख्यात पुरुषों के रचनात्मक कार्य्यक्रम जिनका उल्लेख प्रायः पुस्तकों में भी नहीं पाया जाता, पर जो वास्तव में समाज को किसी न किसी रूप में संगठित कर देते हैं मेरे नेत्रों के सम्मुख घूमने लगे। उन अविख्यात लोगों के वे प्रशंसनीय कार्य्य जो मुख्य मुख्य ऐतिहासिक घटनाओं के जन्मदाता हैं मुझे प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ने लगे। अतः मेरे भी विचार टालस्टाय के उन विचारों के तद्रूप होगये, जो उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "युद्ध और शान्ति (War and Peace) में जनता और नेताओं के सम्बन्ध में प्रकट किये हैं।

लता एवं साधारण समझौते की सफलता का अनुभव करने लगा। मुझे पूर्णतया अवगत होगया कि पहला सिद्धान्त तो केवल सैनिक परेड अथवा ऐसे ही कामों के लिए काम में लाया जा सकता है। परन्तु जहां जीवन-संग्राम की बात आ जावेगी, वहां इष्ट-सिद्धि के लिए उपरोक्त बात कभी काम न दे सकेगी। इस प्रकार साईबेरिया से ही मेरे हृदय का शासन-निग्रह-रूपी भूत पलायमान होगया और मैं एक अनारकिस्ट (अराजक) बनने को तैयार होगया।

उन्नीस वर्ष की अवस्था से पच्चीस वर्ष की अवस्था तक मुझे सेकडों सुधार-स्कीम बनानी पडीं, नानाप्रकार के मनुष्यों से काम पडा, थोडे ही धन में बडी कष्टदायक यात्राएं करनी पडीं, तथा सैकडों घटनाओं का सामना करना पडा, पर इन सब बातों से मुझे तो पूर्ण अनुभव होगया कि बडे बड़े गम्भीर कार्य्यों में अनुशासन से कुछ काम नहीं चल सकता। साथ ही मेरी यह भी धारणा है कि यदि शासन-निग्रह के विधान सोचने वाले, इसके प्रथम कि वे कोई काम करते, या कल्पनाएं करते, सब में प्रथम क्रियात्मक-जीवन का अनुभव कर लेते तो बहुत ही अच्छा होता। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि केवल पुस्तकों ही से ज्ञानोपार्जन करना भारी मूर्खता है। ज्ञानोपार्जन के लिए मेरे विचार से हाथ-पैर भी हिलाना चाहिए, केवल पुस्तकों ही के सहारे भाव-गगन में सैर करना अनुचित है।

इन्हीं सब कारणों से मुझे साईबेरिया अब अधिक आकर्षक एवं प्रिय न रहा। मेरा भाई सन् १८६४ ई० में अफ़सर होकर इर्कुटस्क में आगया था, हम दोनों एक साथ रहने से सुखी थे। हम दोनों का बहुत सा समय विज्ञान, साहित्य,

राजनीति सामाजिक एवं ऐतिहासिक विषयों के अध्ययन में व्यतीत होता था। पर यहां पर कोई शिक्षित समाज-मंडल न होने के कारण हम असन्तुष्ट थे। इधर पश्चिमीय यूरोप की वैज्ञानिक तथा विशेषकर राजनीति सम्बन्धी बातें हम दोनों के हृदयों को रूस की ओर जाने के लिए आकर्षित कर रही थीं। निर्वासित पोलंड निवासियों के उपद्रव तथा उन पर किये गये लोमहर्षण अत्याचारों ने हम दोनों की आँखें एकदम खोलदीं। अतएव हम दोनों अपने अपने सिपाही पदों की निस्सारता पर मनही मन विचार कर लज्जित होने लगे।

प्रवासी पालिशों का उपद्रव

मैं सुदूरवर्त्ती पर्वतों पर भ्रमण कर रहा था। उन्हीं दिनों प्रवासी पालिशों (पोलंड-निवासियों) ने जो बैकाल झील के चारों ओर चट्टानों को काट काट कर नया मार्ग बनाने में लगे हुए थे, अपनी अपनी हथकड़ियों को तोड़ कर मंगोलिया होते हुए चीन भाग जाने का प्रयत्न किया। मैंने ये समाचार इर्कुटस्क लौटने पर सुने थे, जब कि ग्यारह प्रवासी पालिशों पर मार्शल ला की अदालत में अभियोग चल रहा था। मैं भी अभियोग सुनने गया और वहां की सब कार्रवाइयों के नोट लेता रहा जिनको मैंने बाद में एक रूसी पत्र में छपवा दिया। इस बात से गवर्नर महोदय मुझ से अप्रसन्न थे।

बड़े घराने के सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित थे। इनमें से अधिकांश को कड़ा दण्ड मिला था। और लोग जो इधर उधर ग्रामों मे भेज दिये गये थे, कोई काम न होने के कारण भूखों मर रहे थे। जिनको सपरिश्रम दण्ड की सजा थी, वे लोग या तो चिता में आमूर के लिए नावें तैयार करते थे, या नमक बनाने के काम पर लीना नदी के तट पर थे। नमक का काम करने वाले सब से दुखी थे। ये लोग नमक का काम प्रारम्भ करने के दो तीन वर्ष बाद ही क्षय रोग से मर जाते थे। पीछे से अधिकांश पोलैंडवासी बैकाल झील के दक्षिण ओर चट्टान काट काट कर सड़क खोदने में जुटा दिये गये। इसके पहले रूसी प्रवासी भी इसी काम को करते थे, पर वे लोग सदैव दब कर रहा करते थे, यद्यपि वे घुल घुल कर ही मरते रहे। किन्तु, स्वाभिमानी पोलैंड-वासी ऐसे न थे, और इस बार वे खुल्लम-खुल्ला विद्रोह कर बैठे।

यह बात प्रत्यक्ष थी कि वे अपने कार्य्य में सफल न हो सकेंगे, पर तो भी वे भिड़ ही गये। एक ओर तो उनके सामने बड़ी झील तथा पीछे की ओर बड़े बड़े पर्वत थे, फिर कहीं उन पर्वतों के ऊपर मंगोलिया के मैदान थे। इन सब बाधाओं के होते हुए भी उन्हों ने हँसिया, गड़ाँसे और कुल्हाड़ियों को लम्बे लम्बे बाँसों में बांध करके सिपाहियों से उनकी राइफलें छीन लेने की धारणा करली। उनकी इच्छा उस समय ऐसा करके अंग्रेजी जहाजों द्वारा चीन भाग जाने की थी।

थोड़े दिन बाद इर्कुटस्क में समाचार आगया कि पोलैंड प्रवासियों ने गारद को नष्ट-भ्रष्ट करके सिपाहियों की राइफलें बलात् छीनली है। यह समाचार पाते ही गवर्नर महोदय ने

प्रवासी पोलिशों का उपद्रव

तुरन्त ८० जवान उनके दबाने के लिए भेज दिये। लेफ्टिनेन्ट पोटालाक ने कई बार अपने अध्यक्ष से य- आज्ञा चाही कि वे उन घनी झाड़ो पर धावा बोलदे जिनमें से कि विद्रोही पालिश छिपी हुई राइफिलों द्वारा सिपाहियों पर निशाना दाग रहे हैं। पर अध्यक्ष ने उसे झिड़क दिया। थोड़ी देर बाद झाड़ी में से गोलियों की आवाजें लगातार सुनाई पड़ने लगीं। लेफ्टिनेन्ट को न देख सिपाहियों ने जो झाड़ी पर धावा किया तो पोटालाक को घास पर तड़फते देखा। वास्तव में बात यों हुई कि पोटालाक से न रहा गया और वह झाड़ी में घुस ही गया। उसने दो चार पालिशों को अवश्य ही मार डाला. पर अन्त में उन लोगों ने हथियारों से उसको घायल करके गिरा दिया। कुछ समय तक युद्ध होने के पश्चात् पोलेण्ड-वासियों ने आत्मसमर्पण कर दिया।

कारण पोलैण्ड प्रवासी भाइयों की दशा पहले से कुछ सन्तोष-जनक हो गई, पर यह सब पॉच शहीदों के बलिदान के ही कारण हुआ। मुझे व मेरे भाई के लिए तो इस उपद्रव ने एक जीते-जागते उदाहरण का काम दिया। रूसी सेना में रहने का अर्थ अब पूर्णतया मेरी समझ मे आगया। घटना के समय मैं तो दूर था, पर मेरा भाई इर्कुटस्क ही में था। उन से भी पालिशों को दबाने के लिए जाने को कहा गया था, पर उनका प्रधान अफसर उनके स्वभाव से भलीभाति परिचित था, अतः उसने दूसरे अफसर को भेज दिया। वास्तव में यह बडा ही उत्तम हुआ, कारण कि भाई इस आज्ञा को कभी भी स्वीकार नहीं करते और उसका परिणाम केवल प्राण-दंड ही था। हम दोनों ने दृढ संकल्प कर लिया कि अब नौकरी न कर के शीघ्रही रूस को लौट जावेंगे। इस काम में भी बाधाएं थीं। भाई ने एक साइबेरियन महिला से विवाह कर लिया था। पर, अन्त मे सब प्रबन्ध ठीक कर लिया गया और सन् १८६७ ई० के प्रारम्भ काल ही में हम दोनों नोकरी को त्याग सेन्ट पीटर्सबर्ग वापिस चले गये।

भौगोलिक अनुसन्धान

सन् १८६७ ई० से मैं अपने भाई के साथ सेन्ट पीटर्सबर्ग में रहने लगा। यहा आते ही मैं दुबारा अल्प-वयस्क और नौजवान विद्यार्थियों के साथ विश्वविद्यालय मे पढने लगा, जैसी कि पाच वर्ष पूर्व मेरी इच्छा थी। मैंने अब सैनिक-कार्य्य से बिलकुल हाथ खींच लिया। इस बात

ने मेरे पिता मुझ पर बड़े नाराज थे। वे मुझे सारी पोशाक में देख कर मुझ से बहुत ही घृणा करने लगे। हम दोनों भाइयों को अब अपने ही बल पर निर्वाह करना था। विश्व-विद्यालय में पढ़ने और विज्ञान का काम करने ही में मेरे छात्र के ५ वर्ष व्यतीत हुए। उस समय मेरा अधिकांश समय भूगोल के अध्ययन में व्यतीत होता था। लाइबेरिया में रहने के कारण कठिन परिश्रम का अभ्यास भी मुझे बना हुआ था। मेरी प्रथम रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी थी, पर एक दूसरी समस्या अब मेरे सम्मुख उपस्थित थी। [illegible] के नक्शों में कुछ गड़बड़ी थी। उन में लाइबेरिया के सम्बन्ध में अटकल से काम लिया गया था। इस कारण विश्वविद्यालय के काम से अवकाश मिलने पर मैं इन्हीं नक्शों का संशोधन करने में लगा रहता था।

जब मैंने नक्शों की बड़ी सावधानी से जाँच-पड़ताल की तो वे गलत ही जान पड़े। महीनों उन नक्शों पर [illegible] करने पर, बाद अन्त में [illegible] पता नहीं चल सकता। [illegible] उस समय की प्रसन्नता का मैं बखान नहीं कर सकता। [illegible] मैं जिसने इस आनन्द को एक बार भी प्राप्त कर लिया [illegible] होगा। [illegible] और पुरस्कार प्राप्त करने की इच्छा प्रबल [illegible] यों भी मैं विज्ञान सम्बन्धी कार्य का एक [illegible] मेरा विचार इस विषय पर एक [illegible] पर जब सन् १८९३ ई० में मैंने [illegible] तब मैंने उन सब बातों पर [illegible] दिखाई पड़ने लगी [illegible] व्याख्या लिख डाली। [illegible] रचना भी सौंप डाला।

कारण पोलैण्ड प्रवासी भाइयों की दशा पहले से कुछ सन्तोष-जनक हो गई, पर यह सब पाँच शहीदों के बलिदान के ही कारण हुआ। मुझे व मेरे भाई के लिए तो इस उपद्रव ने एक जीते-जागते उदाहरण का काम दिया। रूसी सेना में रहने का अर्थ अब पूर्णतया मेरी समझ में आगया। घटना के समय मैं तो दूर था, पर मेरा भाई इर्कुट्स्क ही में था। उन से भी पालिशों को दबाने के लिए जाने को कहा गया था, पर उनका प्रधान अफसर उनके स्वभाव से भलीभाति परिचित था, अतः उसने दूसरे अफसर को भेज दिया। वास्तव में यह बड़ा ही उत्तम हुआ, कारण कि भाई इस आज्ञा को कभी भी स्वीकार नहीं करते और उसका परिणाम केवल प्राण-दंड ही था। हम दोनों ने दृढ सकल्प कर लिया कि अब नौकरी न कर के शीघ्रही रूस को लौट जावेंगे। इस काम में भी बाधाएं थीं। भाई ने एक साईबेरियन महिला से विवाह कर लिया था। पर, अन्त मे सब प्रबन्ध ठीक कर लिया गया और सन् १८६७ ई० के प्रारम्भ काल ही में हम दोनों नोकरी को त्याग सेन्ट पीटर्सबर्ग वापिस चले गये।

भौगोलिक अनुसन्धान

सन् १८६७ ई० से मैं अपने भाई के साथ सेन्ट पीटर्स-बर्ग में रहने लगा। यहा आते ही मैं दुबारा अल्प-वयस्क और नौजवान विद्यार्थियों के साथ विश्वविद्यालय में पढने लगा, जैसी कि पांच वर्ष पूर्व मेरी इच्छा थी। मैंने सैनिक-कार्य्य से बिलकुल हाथ खींच लिया। इस बात

ने मेरे पिता मुझ पर बड़े नाराज थे। वे मुझे सादी पोशाक मे देख कर मुझ से बहुत ही घृणा करने लगे। हम दोनो भाइयो को अब अपने ही बल पर निर्वाह करना था। विश्व-विद्यालय मे पढ़ने और विज्ञान का काम करने ही मे मेरे आगे के ५ वर्ष व्यतीत हुए। उस समय मेरा अधिकाश समय भूगोल के अध्ययन में व्यतीत होता था। साईबेरिया मे रहने के कारण कठिन परिश्रम का अभ्यास भी मुझे बना हुआ था। मेरी प्रथम रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी थी, पर एक दूसरी समस्या अब मेरे सम्मुख उपस्थित थी। एशिया के नक्शों में कुछ गडबडी थी। उन मे साईबेरिया के सम्बन्ध मे अटकल से काम लिया गया था। इस कारण विश्वविद्यालय के काम से अवकाश मिलने पर, मै इन्ही नक्शो का सशोधन करने मे लगा रहता था।

जब मैंने नक्शों की बडी सावधानी से जांच-पडताल की तो वे गलत ही ज्ञात पडे। महीनों उन गलतियों पर विचार करने के बाद अन्त मे एकायक सब बाते समझ मे आगईं। उस समय की प्रसन्नता का मैं वर्णन नहीं कर सकता। वास्तव मैं जिसने इस आनन्द को एक बार भी प्राप्त कर लिया है, वह उसे बारम्बार प्राप्त करने की इच्छा अवश्य करेगा। इस कार्य को भी मै विज्ञान सम्बन्धी कार्यों का एक अग मानता हूं। मेरा विचार इस विषय पर एक सम्पूर्ण ग्रन्थ लिख देने का था, पर जब सन् १८७३ ई० मे मेरे पकडे जाने के बहुत कुछ चिन्ह दिखाई पडने लगे, तब मैंने उन सब बातों पर एक छोटी सी व्याख्या लिख डाली। साथ ही एशिया का एक संशोधित नक्शा भी खींच डाला। ये दोनों ही काम भविष्य में भूगोल

समिति ने, जब कि मैं सेन्ट पीटर की जेल में था, छपवा कर प्रकाशित करा दिये। उन्हीं दिनों मैंने भूगोल समिति के प्राकृतिक विभाग में मन्त्री की हैसियत से बहुत कुछ काम किया। मैं फिनलैण्ड के ग्लेशियरों (बर्फ की नदियों) के अनुसन्धान को भेजा गया। वहां जाकर फिनलैण्ड की बर्फ की नदियों के सम्बन्ध में मैंने नये विचारों को स्थिर किया, तथा स्वेडन तक खोज की। भूगोल समिति ने मेरी रिपोर्ट तुरन्त प्रकाशित करवा दी, जिससे मैं भी वैज्ञानिक संसार में प्रख्यात हो गया। मुझे पूर्णतया स्मरण है कि जब मैं फिनलैण्ड की बर्फ की नदियों में भ्रमण कर रहा था तो मेरे हृदय में भूगोल समिति के मंत्री हो जाने की एक तीव्र लालसा हो रही थी। मैं सोचता था कि वहां लिखने-पढ़ने का अवकाश यथेष्ट मिल जावेगा। सन् १८७१ ई० की बात है, मैं समुद्र-तट पर भ्रमण करता हुआ खोज के काम में व्यस्त था कि यकायक भूगोल समिति से एक तार इस आशय का प्राप्त हुआ कि "भूगोल समिति प्रार्थना करती है कि आप मन्त्रित्व के पद को अङ्गीकार कर लीजिये।" उसी समय भूतपूर्व मन्त्री का भी एक पत्र इसी आशय का प्राप्त हुआ। मैं बैठ कर विचार करने लगा। पर, हृदय में एक ऐसी ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी, जिससे मन्त्री का पद स्वीकार करने से शान्ति होती नहीं दिखाई पड़ती थी। अन्त में बहुत सोच विचार के बाद लिखना ही पड़ा—"मेरा हार्दिक धन्यवाद, परन्तु, इस पद को स्वीकार नहीं कर सकता।"

यह लिख कर मैं पुनः सोचने लगा कि मनुष्य कहीं राजनैतिक, कहीं सामाजिक, कहीं वैज्ञानिक, और कभी इसमें, कभी

उसमें जो खिचता रहता है, आखिर उसका कारण क्या है? सोचते सोचते अन्त करण ने सादी दी कि इसका कारण केवल यही है कि वह भली भांति सोच तक नहीं पाता कि कौन सा कार्य्य उसकी शक्ति, बल, बुद्धि और स्थिति के अनुकूल है; और कौन सा कार्य्य उसे सान्त्वना प्रदान करेगा, जैसी कि प्रत्येक मनुष्य को अपने कार्य्य से आशा रखनी ही चाहिए। कार्य्यकर्त्ताओं को प्रायः यह रोग हुआ करता है। प्रातः उठते ही वे एक नये काम में जुट जाते हैं, रात्रि होते ही वे उस पर विचार करते करते सो जाते हैं। दूसरे दिन जो उठे, तो अवशिष्ट कार्य्य की पूर्ति में लग गये। इसी प्रकार उनका समस्त जीवन व्यतीत होता रहता है और उन्हे विचार करने का अवकाश ही नहीं मिलता कि उनका कार्य्य-प्रवाह उनको किस ओर शीघ्रता से लिये जा रहा है। ऐसी ही दशा कुछ कुछ मेरी थी। परन्तु, यहां फिनलैंड में हमको विचार करने का अवकाश था। मैंने वहां स्वयं देखा कि फिनिस किसान कैसे परिश्रम से पृथ्वी को समथल करते हैं और कैसी कैसी यातनाओं को सह कर पत्थर फोड़ते हैं! इस बात को देख कर मैं मन ही मन कल्पना करने लगा कि मैं एक प्राकृतिक भूगोल लिखूंगा जिससे इन किसानों को यह बतलाऊंगा कि वे किस प्रकार सरलता से खेत जोत-बो सकते हैं। हां, अमरीकन मशीन भी ठीक होंगी ... पर इन बातों से क्या लाभ? मशीन के लिए किससे कहूं? किस मुंह से कहूं? सारे दिन परिश्रम करने पर जिनको रोटियां भी नसीब नहीं, उनसे क्या कहूं? तो क्या मैं भी इनके साथ साथ रहूँ? बस, यकायक मेरे विचार फिनलैंड से निकोलस्काय तक घूम गये। मैं इन्हीं बातों को

सोचता हुआ दुःख रूपी समुद्र में निमग्न हो गया। इस प्रकार मैं किंकर्त्तव्यविमूढ हो रहा था कि सामने नदी में एक वस्तु दिखलाई दी। देखते ही मैं सोचने लगा कि अहा! विज्ञान भी कैसी आनन्ददायक वस्तु है। यह विचार उठ रहे थे कि एक महिला का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा। सुनते ही मेरे विचार कोसों दूर हो गये।

मैं विचार करने लगा कि जब मनुष्य-समाज इस प्रकार दुखी हो, तो मेरे विद्याध्ययन से क्या लाभ? वास्तव में मनुष्य समाज का प्रबन्ध कैसा लचर है? कुछ लोग तो अटूट परिश्रम करें और कुछ लोग साहित्य, विज्ञान का आनन्द लूटें। इतिहास-वेत्ताओं और समाज-तत्वविज्ञों को मानवजाति की कितनी अच्छी जानकारी होती, यदि वे उसका परिचय केवल पुस्तकों से न करके मनुष्यों के दैनिक जीवन-व्यवहारों से करते! कवि को प्रकृति के सौन्दर्य का कैसा उत्तम अनुभव होता, यदि वह स्वयं हल चलाता हुआ किसानों के साथ बाल-रवि का स्वागत करता—यदि वह नाविकों के साथ जहाज पर तूफ़ानों का सामना करता—यदि उसे दुख-सुख, संग्राम और विजय की सच्ची कविता मालूम होती! अस्तु, मुझे क्या अधिकार है कि मैं आनन्द भोगूं जब कि हमारे चारों ओर क्लेश, कलह और रोटियों की तबाही का घोर चीत्कार मचा हुआ है? मेरा सुखी रहना, आनन्द उडाना, केवल दीन दुखियों के मुख से रोटी छीन कर उनके भी भाग को हडप कर जाना है। यह माना कि ज्ञान एक अपूर्व शक्ति है। मनुष्य को उसे जानना भी चाहिए। परन्तु, हम लोग तो उसे पर्य्याप्त रूप से प्राप्त कर चुके हैं, अब और क्या ही अच्छा हो, यदि सब लोगों को उसके जानने

का अवकाश मिल जावे। जनता उसे जानना चाहती है। सफेद वर्फ से ढके हुए पर्वतों एवं नदियों के कैसे सुहावने दृश्य हैं! कोई भी किसान इनको देखकर प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। हमारी भांति वे भी अपनी बुद्धिविकास का अवसर चाहते हैं। पर, उनको एक तो समय नहीं है, तथा दूसरे उनको शिक्षा देने की आवश्यकता है। अस्तु, यही मार्ग है जिसका हमें अवलम्बन करना चाहिए और यही पुरुष है, जिनसे हमको अब भविष्य में काम करना चाहिए। यही विचार अब हृदय में वारम्बार उमड़ रहे थे। मेरी अन्तरात्मा मुझ से कह रही थी कि मुझे क्या अधिकार है कि मैं विज्ञान के अध्ययन से प्राप्त सुख को भोगू? मेरे इतने रूसी भाई जब तक जार द्वारा पद-दलित होते रहेंगे, तब तक मैं अपनी ज्ञान-वासना को तृप्त करके अपने जीवन की उत्कट इच्छा को कैसे शान्त कर सकता हूँ। बस ऐसे ही विचारों से प्रेरित होकर मैंने मन्त्रित्व पद को अङ्गीकार नहीं किया।

सरकारी सेन्ट पीटर्सबर्ग

सेन्ट पीटर्सबर्ग में मुझे अब सन् १८६२ की अपेक्षा, जब कि मैंने उसको छोड़ा था, महान् परिवर्तन प्रतीत होने लगा। मैं अब भी उस समय का स्वप्न देख रहा हूँ, रूस में शरनीशवस्की का सितारा बुलन्द था। किन्तु, अब तो सब ठाठ ही निराला था। काउन्ट निकोलस् मुरोवियाफ आदि सुधार के समय के सब वयोवृद्ध सज्जन सदिग्धपूर्ण दृष्टि से देखे जाते थे। पुराने सलाहकारों मे से केवल एक

डिमत्री मिलूटन बच रहे थे, कारण कि वे युद्ध-सचिव थे। शेष सुधारों के समय के सब कार्य्यकर्त्ता एकदम अलग कर दिये गये थे। सब ओर निरकुशता की तूती बोल रही थी। स्टेट (राज्य) पुलिस के प्रधान जेनरल शुभालाफ व सेन्ट पीटर्सबर्ग के प्रधान जेनरल ट्रेयाफ वास्तव में उस समय रूस के शासक हो रहे थे। एलेक्जेण्डर तो केवल उन लोगों के हाथ की कठ-पुतली हो रहा था। उन लोगों के शासन करने का मूलमन्त्र 'भय" अथवा "त्रास" था। ट्रेयाफ ने जार पर कुछ ऐसा जादू डाल रक्खा था कि वह रातदिन विप्लव ही का स्वप्न देखा करता। यदि उसे दरबार आने में थोड़ा भी विलम्ब हो जाता तो ज़ार द्वितीय नगर की शान्ति-रक्षा के सम्बन्ध में पूछने पछते व्याकुल हो जाते थे।

शुभालाफ ने भी स्वामी की बेवकूफ़ी का अच्छा फायदा उठाया। उसने नाना प्रकार से दमनकारी क़ानूनों को तैयार किया। जब कभी जार उन पर हस्ताक्षर करने से अनिच्छा प्रकट करता तो वह एकदम गदर मच जाने का भय सामने ला खड़ा कर देता। वह लुई चौदहवें का वृत्तान्त सुनाने लगता और ज़ार को इस प्रकार भयभीत कर देता कि वह भड़भड़ा कर अन्त में हस्ताक्षर कर ही देता। इस प्रकार शुभालाफ मनमाना अत्याचार करता था। जब कभी एलेक्जेण्डर उदास हो अपने सुधारों के समय की और अब की आलोचना करने लगता, अपने को बुरा-भला कहने लगता, तो शुभालाफ तुरन्त कोई न कोई मनोरंजक बात कह देता, जिससे उसका चित्त फिर व्यसनों में फँस जाता, और तब शुभालाफ निर्द्वन्द हो अपना काम पूरा करता। इस प्रकार वह डराकर, फुसलाकर,

कौतूहलों मे फँसा कर अपना उल्लू जार से सीधा करता था। एलेक्जेण्डर द्वितीय स्वभाव से भीरु न था। वह दयालु था पर थोड़ी ही देर मे भीषण से भीषण कार्य्य कर सकता था। वास्तविक भय के समय मे वह शान्त रहता, पर मानसिक भय के कारण चक्कर खाया करता था। इस प्रकार वह दो घोड़ों पर सवार था। पर, इन झगड़ों मे रात-दिन फँसे रहने के कारण राक्षसी विचारों ने उसे दबा लिया और अपने अन्तिम दिनों में वह शुभ कर्म्मों से बिलकुल निराश हो गया। सन् १८७२ ई० में शुभालाफ कार्य्य-विशेष से राजदूत की हैसियत से विलायत भेजे गये। उनके मित्र जेनरल पोटायाफ भी अपने मित्र ही की नीत्यानुसार टर्किश युद्ध में सन् १८७७ तक अपना काम पुराने ही ढङ्ग पर चलाते रहे। इस बीच में सरकारी खजाने का रुपया खूब लुटाया गया। लिथुनियां के किसानों को सताया जा रहा था। वे बलात् पैसा देने को बाध्य किये जारहे थे। ऐसे बहुत से मामलों की जांच अदालत में पहुँची। पोटायाफ भय से पागल हो गया। ट्रेयाफ भी बरखास्त कर दिये गये। जाँच में गवाहों से पता चला कि जेनरल पोटायाफ किस प्रकार भीतरी आदमियों से मिल कर बेचारे किसानों को बेंतों से पिटवा कर धन चूस रहा था। उसके सम्बन्ध में ट्रेयाफ की भी पाप की हांडी फूट निकली। इधर ट्रेयाफ के एक युवक ने गोली मारदी। उसने घायल होकर मरने के भय से सब माल-असबाब की वसीहत अपने पुत्र के नाम करदी।

उसके पास बहुत धन निकला। वह अपनी निर्धनता पर सदैव जार के सामने रोया करता था, यह भी भेद खुल गया।

बहुत से मुसाहबों ने ज़ार से इस बात की रिपोर्ट की। ट्रेयाफ की प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। इधर तीनों लुटेरों के अन्य अन्य समाचार भी क्रमशः न्यायालय में आ पहुँचे। रेलवे और उद्योग सम्बन्धी विभागों में बड़ा गोलमाल निकला। पर, ज़ार द्वितीय इन तस्करों में विप्लव के दबाने की शक्ति समझता था, और उसने, जहाँ तक चली, उसे दबाना चाहा, पर अन्त में विवश हो उसे उन तीनों ही का मुंह काला करना पड़ा। इधर ज़ार के लड़कों का भी अजब ढङ्ग था। तरह तरह के स्वांग रचा करते। बड़ा पुत्र बड़ा कंजूस और किफ़ायतसार था। एक पुत्र पर पिता को सन्देह रहा करता। तीसरा पुत्र तुर्किस्तान को भेज दिया गया, क्योंकि उसने अपनी माता के कुछ रत्न चुरा लिये थे। शाहज़ादी मेरी एलेक्ज़ेण्ड्रोवना अपने पति से छोड़ दी गई थी। वह अत्याचारों को बढ़ते देख भयभीत हो भक्तिनि बन गई और माल ले तुरन्त पुजारी के हाथों में हो गई। इन पुजारियों को भी इतना काम बना रहता था, कि ये विचारे अपने ग्रामों के बालकों तक को शिक्षा न दे सकते थे। इनको रात-दिन विवाह कराते और बपतिस्मा ही पढ़ते बीतता था। दूसरी ओर रूसी बालकों में विद्या पढ़ने की उत्कट इच्छा पैदा हो रही थी। सरकार बहुत थोड़ा रुपया पाठशालाओं में लगाये हुए थी। बालक कारीगरी सीखना चाहते थे तो स्कूल नहीं थे। राज्य का अधिकांश धन भोग-विलास, आमोद-प्रमोद तथा युद्धों में नष्ट हो रहा था। केवल मामूली पाठशालाएं खुली हुई थीं, जिनमें कि बड़े बड़े कोर्स रक्खे हुए थे। इन पाठशालाओं में केवल २-३ फ़ीसदी विद्यार्थी बड़ी कठिनाई से ८ वर्ष का कोर्स समाप्त कर पाते थे। मन्त्रि-

मंडल इस प्रकार बालकों के स्वतन्त्र विद्याध्ययन मे बाधा डाले हुए था। इस बात का प्रयत्न बराबर होता रहता कि जैसे हो विद्यार्थियों की संख्या कम की जावे। कुछ मनुष्यों के विचार से तो शिक्षा देना एक प्रकार का व्यसन था। औद्योगिक शिक्षा का प्रचार करने को कहने वाला उस समय एक प्रकार से विप्लवकारी समझा जाता था। इने गिने उद्योग आदि कलाओं की शिक्षा देने वाले स्कूल थे। प्रत्येक वर्ष दो तीन हज़ार नवयुवक उनमें भरती होने जाते, पर "स्थान नहीं" कोरा जवाब पाकर लौट आते थे।

जनता की भलाई चाहने वालों के लिए निराशा के काले बादल छा रहे थे। किसानों पर कर-वृद्धि कर दी गई थी और शेष कर सैनिक-नियमों से वसूल किया जा रहा था। प्रान्तों के वे ही गवर्नर राजधानी में भले समझे जाते थे जो कि टैक्सों को कड़े से कड़े नियमों द्वारा वसूल करते थे। सरकारी सेन्ट पीटर्सबर्ग की यह दशा थी, और इस प्रकार सरकार समस्त रूस पर अपनी निरंकुशता का आतंक जमाये हुए थी।

दमन का परिणाम

पाठकों को स्मरण होगा कि जब हम साईबेरिया से सेन्ट पीटर्सबर्ग आने का विचार कर रहे थे, तो उस समय वहाँ आकर मानसिक एवं बौद्धिक आनन्द का उपभोग करना ही हमारा अभीष्ट लक्ष्य था। आते ही हम दोनों भाइयों ने माडरेटों तथा रेडीकलों से जान-पहिचान करली। वे बुद्धिमान अवश्य थे, पर उनके राजनैतिक विचारों

से मुझे कुछ भी सन्तोष न हुआ। अग्नेयवस्क ऐसे धुरन्धर लेखकों का या तो निर्वासन हो गया था, या वे पीटर पाल के दुर्ग में बन्द थे। बहुतों ने उदास होकर अपने विचार ही बदल डाले थे। बहुत से नवयुवक यद्यपि अपने विचारों में अटल थे पर वे उन विचारों को प्रकट करने में बहुत ही दूरदर्शिता से काम लेते थे, यहाँ तक कि मुंह से शब्द निकालना भी पाप था। सुधारों के समय के हेरजन व टपगूनेफ के अनुयायी अब दुम दबाये बैठे थे और वे इस प्रकार मौन-व्रत धारण किये थे कि कहीं उन पर सन्देह भी न हो जावे। इस प्रकार कुछ ऊंचे लेखन-कला के प्रवीण सम्पादकों को छोड़ कर सब मौन थे। ये लोग भी केवल जनता और किसानों पर होने वाले अत्याचारों की सूचना बड़ी सावधानी से प्रकाशित कर रहे थे, तथा समय समय पर कोई जोरदार टिप्पणी भी कर डालते थे। हम लोग कुछ सोसाइटियों में भी जाने लगे। मेरा भाई स्वाभाविक तौर से भी जब कभी कोई गम्भीर प्रश्न छेड़ देता तो वहां के अन्य सदस्य इस बात को चटपट समाप्त करके दूसरा ही प्रसंग छेड़ देते। वयोवृद्ध सज्जन प्राय सब एक मत के हो रहे थे। वे बारम्बार हम लोगों से यही कहा करते—"बुद्धिमान नवयुवको! लोहा घास-फूस से मजबूत है! कोई अपने शिर से पत्थर की दीवाल नहीं फोड़ सकता। हम लोगों ने अपने जीवन-काल में कुछ काम किया है। अब अधिक काम करने को हम से न कहो, अथवा, सन्तोष धारण करो, ऐसा भी समय सदैव न बना रहेगा।" पर, इन बातों से हम नवयुवकों को सन्तोष न था। हम सब तो झगड़े पर उतारू थे। और इधर तो काम करना, जोखिम उठाना, सर्वस्व का बलिदान कर

देना आदि सिद्धान्त हो रहे थे। हां, हम उनसे केवल यह चाहते थे, कि वे समय समय पर हमको शिक्षा दें, चेतावनी दें तथा साथ ही साथ कुछ मानसिक सहायता भी दे।

मैं यह बात मानता हूं कि सुधारों के पश्चात् राजनैतिक गति कार्य्यकर्त्ताओं के लिए बड़ी विकट होगई थी। उनका काम न करना और उसके प्रमाण देना एक अवस्था में सब ठीक थे। विशेषत: अप्रैल सन् १८६६ ई० से, जबकि कराकोज़ाफ ने एलेक्जेण्डर द्वितीय पर निशाना दागा था, हाल बेहाल होगया। उस समय से तो पुलिस सर्वशक्तिमान हो गई। सन्देह मात्र पर मनुष्य कारागार भेज दिया जाता। साईबेरिया भेजा जाना, कोड़े लगाये जाना और पीटर पाल के क़िलों में वर्षों सड़ाये जाना साधारण हो रहा था। कराकोज़ाफ का मत अब तक रूस में अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है। मैं उस समय साईबेरिया में इसके बारे में सुना करता था। उस समय दो दल हो रहे थे। एक तो यही और दूसरा दल विद्यार्थियों तथा पढे लिखे प्रोफेसर इत्यादि विद्वानों का था। उनका सिद्धान्त यह था कि जनता में खूब शिक्षा का प्रचार किया जावे। अवैतनिक पाठशालाएं खोली जायँ, ताकि भविष्य में ऊंचे और स्वतंत्र विचार के बालक हों। दूसरा दल कराकोज़ाफ आदि का था। वे अत्याचार सहन नहीं कर सकते थे। इधर विपक्षियों के सरदारों ने गुट बना कर अपने प्रतिपक्षियों का नाम ही मिटा देना चाहा। सन् १८६२ से सन् १८६६ तक ज़ार द्वितीय की पालिसी एकदम दमनकारी रही। उसके चारों तरफ घोर विपक्षियों का सदैव जमघट रहता था। यही सब बातें थीं, जिन्होंने कि कराकोज़ाफ और उसके मित्रों को

इस विचार तक पहुँचा दिया कि यदि जार एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय का शासन बना रहेगा तो थोड़ी सी स्वतन्त्रता, जो अभी बची हुई है, यह भी हाथ से निकल जावेगी। बस, ऐसा ही विचार कर कराकोज़ाफ ने एलेक्ज़ेण्डर पर, जबकि वह गर्मी की ऋतु मे बगीचे मे लौट कर गाड़ी पर सवार हो रहा था, गोली दाग दी। पर निशान खाली गया और कराकोज़ाफ तुरन्त उसी स्थान पर पकड़ लिया गया।

केटकाफ, जो इस समय विपक्षी दल का मुखिया था, ऐसा सुअवसर पाकर धन पैदा करने और धर-पकड़ में जुट गया। उसने समस्त लिबरलों और रेडीकलों को कराकोज़ाफ का साथी बता बता कर तंग करना प्रारम्भ कर दिया। यहां तक कि ग्रांड ड्यूक कानस्टेनटाइन भी, जो कि सुधारों के पक्ष में थे, इस दोषारोपण से न बच पाये। पाठक, अनुमान कर सकते हैं कि उस समय जार को कितनी बेचैनी होगी, और वह न जाने कितने भयभीत किये गये होंगे। मिखेल मुराबियाफ, जिसने पोलैण्ड-वासियों के बलवे में 'जल्लाद' का नाम पैदा कर लिया था, इस घटना की जांच के लिए नियुक्त किया गया। उसने सभी विचार वाले मनुष्यों को गिरफ्तार करा लिया। सन् १८६६ ई० में मैं साईबेरिया में था। उस समय एक साईबेरियन अफसर का, जो कि हालही में रूस से आया था, कहना था—"कराकोज़ाफ बड़ा ही साहसी था। उसको बहुत धमकाया कि वह अपने अन्य साथियों के नाम बतादे, पर उस के मुंह से कभी भी कोई शब्द नहीं निकला। मेरे लिए यह आज्ञा थी कि वह एक मिनट भी न सोने पावे। दो-दो घंटे बाद पहरा बदलता था। पर, वह हम सब को धोखा देने के

लिए एक टांग हिलाता रहता और स्वयं उस बीच में सो लेता। पर, यह बात भी हम लोग ताड़ गये।" कराकोज़ाफ के फांसी के समय भी मेरा एक मित्र उपस्थित था। उसका कहना है कि जब वह फांसी के लिए लाया गया, तो हम लोग यह विचार करते थे कि वह निद्रा-भंग तथा भूख-प्यास के कारण अवश्य ही अधमरा होगया होगा। पर, यह बात न थी। वह कूदता हुआ फांसी के तख़्ते पर चढ़ गया। हम सब आश्चर्यान्वित रह गये। उसके मुख पर एक प्रकार की कान्ति और प्रसन्नता की झलक थी। पर, आग काफी लग चुकी थी। मुराविया‌फ अपने दल समेत रेडीकलों का सेन्ट पीटर्सबर्ग से नामोनिशान मिटाने में लगे थे। सब लोग नौजवानों से बातचीत करने में भय खाते थे। और यह बात यहां तक बढ़ गई कि वृद्ध माता-पिता ही नहीं, वरन् तीस वर्ष की अवस्था से ऊँचे मात्र गण भी अपने को नवयुवक भाई अथवा पुत्र से पृथक रखने लगे, एवं उनसे किनारा करने लगे। नवयुवक साम्यवाद की ओर झुक रहे थे, पर उनके वृद्ध जन उनका साथ देने को तैयार न थे। मैं उस समय मन ही मन विचारा करता कि क्या कभी इतिहास में ऐसी भी बात हुई होगी, कि दमन से पीड़ित नवयुवक अपने माता-पिता एवं ज्येष्ठ भ्राताओं तक की सहायता का विचार न करके केवल न्याय और सत्य पर भरोसा रखकर ऐसी बलवान् ज़ारशाही से जा भिड़े हों! क्या इस से भी भयानक युद्ध पहले कभी हुआ होगा?

सेन्ट पीटर्सबर्ग की कोई बात यदि मुझे उस समय सान्त्वना दे रही थी, तो वह केवल रूसी युवा और युवतियों की जाग्रति थी। रूसी महिलायें इस आन्दोलन में अग्रसर हो

सब को चकित करने लगीं। इस प्रकार एक बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ, और शनैः शनैः बहुत संस्थाएं भी स्थापित होने लगीं। इन महिलाओं में विद्याध्ययन की एक विशेष इच्छा उत्पन्न हो रही थी। नाना प्रकार के उपाय सोचे जाने लगे। अनुवाद करने के काम, प्रकाशन-विभाग, जिल्द-साज़ी आदि के काम प्रारम्भ कर दिये गये, ताकि गरीब बच्चे अपना निर्वाह स्वतन्त्र रूप से कर सकें। जब सरकार ने इन महिलाओं के विद्याध्ययन के लिए यूनीवर्सिटियों में और भी अधिक कड़ाई करदी, तो समस्त देश में रात्रि पाठशालाएं तथा बहुत सी स्वतन्त्र पाठशालाएं खुल गईं। उदार स्वभाव वाले प्रोफेसर उनसे बग़ैर किसी वेतन के लेक्चर देने जाते थे। महिलाओं के इस प्रबन्ध ने समस्त देश में खलबली मचादी। इन बातों से ज़ार द्वितीय बड़े बेचैन थे। वह जब कभी मार्ग में किसी लड़की को चश्मा लगाये हुए देखता, तो कांप उठता था। क्रमशः ये युवतियां रेडीकेलस् या विप्लवकारी सिद्धान्त की मानने वाली होगई। धीरे धीरे उनका विकास भी होने लगा। यूनीवर्सिटियों के अभाव के कारण वे अन्यान्य प्रदेशों में जाकर पढ़ने लगीं, जहाँ पर कि उनको रूस के प्रवासी विद्वान मिला करते थे। ज्यूरिच आदि स्थानों में गई हुई महिलाएं एकदम क्रान्तिकारिणी हो गईं, क्योंकि वहाँ पर उनका साथ रात दिन उन क्रान्तिवादी विद्वानों से होता था, जो कि रूस से भाग कर वहाँ जा बसे थे। यह देख कर ज़ार ने उन महिलाओं को वापिस आने को कहा। उन्होंने आते ही सरकार को महिलाओं के लिए स्वतन्त्र यूनीवर्सिटियाँ खोलने को बाध्य कर दिया, और इस प्रकार एकदम चार बड़ी यूनीवर्सिटियां रूस

में केवल स्त्रियों के लिए ही स्थापित हो गईं। वास्तव में यह आन्दोलन बहुत बड़ा था और स्त्रियों ने इस में सफलता भी वैसे ही पाई। उनकी सफलता के मुख्य कारण दो थे, एक तो उनमें सेवा-भाव की कमी न थी, दूसरे वे आपस में मतभेद रखती हुईं भी एक थीं। वृद्ध स्त्रियां उन युवतियों से घृणा न करती थीं जोकि निहलिस्ट अथवा क्रान्तिवादी दल की थीं। उनमें नाम कमाने अथवा पद पाने की लालसा का अभाव था। साथ ही उद्देश्य शुद्ध होने से उनको अवश्य ही सफलता प्राप्त हुई।

इधर पिछले वर्षों से मेरे पास बराबर यह समाचार आ रहे थे कि पिता जी का स्वास्थ्य दिन-बदिन बिगड़ता जारहा है। सन् १८८१ ई० में हम दोनों भाई पिता जी को देखने गये तो डाक्टरों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि पिता जी अब अधिक जीवित न रह सकेंगे। पिता जी हम दोनों से, विशेष कर हमारे बड़े भाई एलेक्जेण्डर से तो बहुत ही अप्रसन्न थे, पर मैं कहूँगा कि भाई साहब ने कभी भी उन से घृणा नहीं की। जब हम दोनों घर पहुँचे तो पिता जी बड़े भाई को देख कर कुछ विस्मित से होकर रह गये, पर और सब घर में प्रसन्न थे। हमारी छोटी बहिन पोलाइना बहुत ही प्रसन्न थी, तथा पिताजी भी कुछ कुछ आनन्दित ही से थे। किन्तु हमको भी इस बात का दुःख रहा कि उनका वह आनन्द कुछ काल तक न रह सका। पिताजी समझते थे कि ये दोनों बालक अपने कर्मों से हानि उठा कर अब मुझसे क्षमा मांगने और अपने किये हुए पर पश्चात्ताप प्रकट करने आये हैं। उनको उस समय यह पूर्ण विश्वास हो रहा था कि ये दोनों बालक अवश्य ही धना-भाव के दुःखों को भोग कर सहायता के निमित्त याचना करने

आये हैं। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर पिता जी हम लोगों से उसी सम्बन्ध में बातें करने लगे, पर उनका कथन समाप्त हो जाने पर मैंने अति विनम्र भाव से उनसे स्पष्टतया कह दिया—"पिता जी! आपकी तबीयत अच्छी नहीं है। आप इन बातों में अपनी तबीयत को न फँसाइए। आप की कृपा से सब आनन्द है। हम लोगों को धन की किंचित् भी आवश्यकता नहीं है।" यह सुनते ही पिता जी का रंग बदल गया और वे बड़े धीमे स्वर से बोले—"यदि ऐसा है, तो अच्छा ही है।" हम लोग वहाँ अधिक न ठहर सके। भाई को एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना था और मेरी फिनलैंण्ड जाने की पूरी तैयारी हो चुकी थी।

अन्त में पिता जी का मृत्यु-समाचार मुझे फ़िनलैंड में मिला। समाचार पाते ही मैं सीधा मास्को आया और पिता जी के मृतक-संस्कार में शामिल हुआ। पुराने इक़ेरी क्वाटर का भी अब रंग बदल चला था। मेरे गृह के समीप ही स्टेपनापक किसानों के भेष में आकर रहने लगे। ये साम्यवाद-प्रचार मे पकड़े गये थे, पर अपनी बुद्धि-बल से वहाँ से निकल आये। मास्को का पुराना इक़ेरी भी अब बदल चला था। जो क्वाटर आज से १५ वर्ष पूर्व नोबिलों, धनकुबेरों का सुदृढ़ निवास-स्थान था, अब नये विचारों से परिपूरित क्रान्तिवादियों का अड्डा बन गया।

ज्यूरिच में विद्यार्थी

दूसरी वर्ष सन् १८७२ ई० मे मैंने प्रथम बार पश्चिमीय यूरोप की यात्रा की। जिस समय हम रूसी सीमा को पार कर रहे थे, उस समय जन्म-भूमि छोड़ने

के कारण हृदय खिन्न हो रहा था। अपना देश कैसा ही क्यों न हो, पर उससे बिछुड़ने में हृदय को क्षोभ होता ही है। जब तक रेल रूसी सरहद में रही चारों ओर बर्फ और चट्टानें दृष्टि पड़ रही थीं, पर प्रशिया (जर्मनी) में प्रवेश करते ही सब ठाठ बदल गया। अब बर्फ से ढके हुए टूटे-फूटे ग्रामों का पता न था। चारों ओर पक्की सड़कें, परमरम्य उद्यान और नाना प्रकार के सुन्दर गृह शोभा दे रहे थे। इस प्रकार ज्यों ज्यों हम जर्मनी में प्रवेश करने लगे त्यों त्यों नई नई बातें दृष्टिगोचर होने लगीं। रूस और यहाँ की जलवायु में भी महान् परिवर्तन था। जो कुछ समय पहले हम बालों का लबादा पहने रहते थे, अब बग़ैर लबादे ही के सैर करने लगे। आगे चल कर राहिन नदी मिली और तत्पश्चात् स्विट्ज़रलैंड, जहाँ पर कि सूर्य-देव भली प्रकार से प्रकाशमान हो रहे थे। उस समय ज्यूरिच रूसी विद्यार्थियों से परिपूरित हो रहा था। रूसी युवक और युवतियां दोनों ही वहां विद्याध्ययन कर रहे थे। ये सब वहां अपने सादे लिबास और साधारण आहार के लिए विख्यात हो रहे थे। धन को वे बड़ी ही किफ़ायतसारी से व्यय करते थे। जिन के पास धन की बाहुल्यता थी, वे उसको पुस्तकालय तथा स्विस लोगों के पत्रों की सहायता में लगा देते थे। रूसी युवतियों का साहस भी सराहनीय था। वे अपना भरण-पोषण बहुत ही कम ख़र्च में कर लेती थीं। वे प्रायः सब नवयुवतियां थीं, पर अपने लिबास में वे बहुत तडक भडक नहीं चाहती थीं। वास्तव में उनके अंग पर सभी वस्त्र खुलते थे। सुविख्यात प्रर्गफ़िन ने ठीक ही कहा है— "कौन सा टोप षोड़षवर्षीया युवती के सिर पर शोभा न देगा?"

पढ़ने-लिखने तथा कठिन से कठिन काम करने में भी ये युवतियां युवाओं से किसी तरह भी पीछे न थीं।

वहां पहुँच कर बहुत दिनों तक मैंने अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-संघ (International workingmen's Association) के विषय में जांच-पड़ताल की। रूसी समाचार पत्रों में इसका उल्लेख बहुधा हुआ करता था, पर सेन्सर की कड़ाई के कारण उसका विस्तृत वृत्तान्त पत्रों में न प्रकाशित हो पाता था। यहाँ पर अब मैं इस बात की जांच करने को पूर्ण स्वतंत्र था।

सन् १८४० ई० से लेकर सन् १८४८ ई० तक यूरोपियन कार्य्यकर्त्ताओं के हृदय में बड़ी बड़ी आशाएँ उठ रही थीं। साम्यवादी साहित्य का प्रचार बहुत हो गया था। उन सब का प्रयोजन क़ानूनी व राजनैतिक समता को ही प्राप्त करना न था, वरन् आर्थिक समता पर भी विशेषकर ध्यान था। इतने ही में समय ने पलटा खाया। पेरिस में बलवा हो गया, वह दबा दिया गया। इधर निकोलस् प्रथम ने हंगेरी में बलवे को सेना द्वारा दबा दिया, इटेली को फ्रांस ने परास्त कर दिया। फलस्वरूप विपत्तियों की तूती बोल गई, और उसके विरुद्ध समस्त यूरोप में एक लहर उठ खड़ी हुई, जिसने कि उस आन्दोलन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उसका साहित्य, उसका कार्य्य, उसका सिद्धान्त एवं विश्वव्यापी भाईचारे का उच्च आदर्श आगामी २० वर्षों के लिए विस्मरण सा हो गया। यह सब कुछ हुआ, पर कार्य्यकर्त्ताओं का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हुआ, और कुछ फ्रेञ्च प्रवासी संयुक्त राज्य में और रावर्ट ओयन के अनुयायी इङ्गलैंड में उस आन्दोलन का बराबर प्रचार करते रहे, जिसने कि अपना रंग सन् १८६२ ई० में लंडन

की प्रदर्शिनी में फिर दिखा दिया, वे आशाएँ जो २० साल से लुप्तप्राय हो रही थीं, फिर बँधने लगी।

"मजदूर अपना उद्धार स्वयं ही करेंगे" इस शङ्खनाद ने जाति-पांति, रंग-रूप के भेदों को मिटा कर फिर एक बार सब को हाथ से हाथ मिला कर काम करने को तैयार कर दिया। उधर पेरिस की सन् १८६८ व ६९ ई० की दो हड़तालों ने फिर इस आन्दोलन में साम्राज्यवादियों के विरुद्ध नवीन जीवन का संचार कर दिया। इस प्रकार यह आन्दोलन फ्रान्स, इटली और स्पेन में अग्निवत् तेजी से फैलने लगा। बड़े बड़े बुद्धिमान, परिश्रमी तथा सच्चे कार्य्यकर्त्ता इसमें हाथ बटाने लगे, यहा तक कि पूंजीवादियों में से भी कुछ चुने हुए कार्य्यकर्त्ता हमारे आन्दोलन में पूर्णतया भाग लेने लगे। अतएव एक उत्तेजना, जिसका कि कभी स्मरण भी न था, समस्त यूरोप में दिन-ब-दिन बढ़ने लगी। और यह आग, न जाने कितनी भड़क गई होती, यदि फ्रांस-जर्मनी युद्ध में फरासीसियों की गहरी हार न हुई होती। यदि यह आन्दोलन अपने उभाड के समय फ्रांस-जर्मनी युद्ध से बन्द न हो जाता, तो न जाने यूरोप में क्या क्या अच्छे काम हो गये होते। परन्तु जर्मनी की जीत से फिर कार्य्य शिथिल हो गया और समस्त यूरोप में सैनिकवाद फैल गया, जिसका प्रभाव अब तक बराबर चला आ रहा है।

सन् १८७०-७१ ई० का युद्ध उन्नति-गति में केवल बाधा ही डाल सका, किन्तु वह उसको पूर्णतया कुचल देने में असमर्थ रहा। स्विट्जरलैंड के प्रत्येक औद्योगिक केन्द्रों में अन्तर्राष्ट्रीय शाखाओं-प्रशाखाओं की सभाएं हुआ करती, जिनमें कि

व्यक्तिगत भूम्यधिकरण की वर्तमान प्रथा एवं पूंजीवादों के नियमों का अन्त कर देना ही वारम्बार निश्चित होता था।

स्थानीय कार्य्रमों के उत्सव नगर नगर और गाँव गाँव हुआ करते। इन्हें देख कर पूंजी वाले तथा मध्यम श्रेणी के मनुष्य भी घबड़ा उठते थे। सब से अधिक जोर उन श्रम-जीवियों का इस बात पर था कि हम तो अटूट परिश्रम करते रहें और परिश्रम का उपभोग कुछ चुने हुए पूंजी वाले करते रहें और हम सब जैसे के तैस फकीर ही बने रहें। इटली में विशेष कर उसके मध्य और उत्तरी भाग में तो इन सोसाइटियों का बहुत जमघट था। पुकार पुकार कर श्रमजीवियों से बलवे के लिए कहा जा रहा था, कि वे शीघ्र ही समस्त खेतों पर किसानों का अधिकार तथा फैक्टरियों पर मजदूरों का अधिकार जमादें। प्रजातन्त्र और साम्यवाद की लहर चारों ओर व्याप्त हो रही थी। स्पेन में भी वह आन्दोलन तीव्रता के साथ काम कर रहा था। केवल स्पेन ही में अस्सी हजार से अधिक चन्दा देने वाले अन्त-र्राष्ट्रीय दल के सदस्य थे। उनकी नीति ने वहाँ की समस्त प्रजा को अपना कर लिया था। वेलजियम, हालैंड और पुर्तगाल भी कुछ पीछे न था, वहाँ के कोयले की खानों के श्रमजीवी व जुलाहे इसमें पूर्णतया योग दे रहे थे। इंगलैंड वाले भी सहानुभूति रखते थे, वे हड़तालों में तथा कुछ सीमा तक पूंजीवाद के विरुद्ध भी सहायता देने को तत्पर थे, पर अपने को खुल्लमखुल्ला साम्यवादी कहलाने में संकोच करते थे। आस्ट्रिया हंगेरी भी अपने काम को तेजी से किये जा रहा था। साम्यवादियों की हार के बाद फ्रांस में उस समय अन्त-र्राष्ट्रीय संघटन हो सकता था। सब लोगों की यह धारणा थी

कि इस संघर्षण के युग का अन्त नहीं होगा। फ्रांस अब बहुत देर तक दबा न रहेगा और वह शीघ्र ही पुनः संघ का काम ज़ोरों से प्रारम्भ कर देगा।

जब मैं ज्यूरिच पहुँचा, तब मैंने भी अन्तर्राष्ट्रीय-मज़दूर संघ की एक स्थानीय शाखा में अपना नाम लिखा दिया और अपने कतिपय रूसी मित्रों से इस आन्दोलन के भीतरी मर्म को समझने की चेष्टा करने लगा। पर उन सब का केवल एक ही उत्तर था कि आप ध्यान पूर्वक इसका तथा इसके साहित्य का अध्ययन करें। मेरी साली, जो उस समय ज्यूरिच में पढ़ रही थी, मेरे वास्ते समाचार पत्रों और पुस्तकों की भर-मार किये रहती। इस भांति ज्यों ज्यों मैं अध्ययन करने लगा त्यों त्यों मेरे विचारों में एक नवीन प्रकार का परिवर्तन होने लगा। साम्यवादी साहित्य सुनहरी पुट्ठेदार जिल्दों में नहीं है, किन्तु वह छोटे छोटे विज्ञापनों तथा समाचार पत्रों में बाहुल्यता से पाया जाता है। ज्यों ज्यों मैं अधिक अध्ययन करता गया, त्यों त्यों मुझे एक नवीन कार्य्यक्षेत्र कार्य्य करने को दृष्टि-गोचर होने लगा, तथा साथ ही यह भी धारणा होगई कि यदि किसी को पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है, तो वह श्रमजीवियों के साथ रह कर उनके नित्य नैमित्तिक रहन-सहन का निरीक्षण अवश्य करे। अतएव मैं ज्यूरिच को छोड़ कर जेनेवा चला गया। जेनेवा उस समय अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य केन्द्र बन रहा था। जेनेवा में सब के एकत्रित होने का स्थान "मेसोनिक टेम्पिल अतीक" था। इसके बड़े हाल में २००० से अधिक मनुष्य एकत्रित हो सकते हैं। यहाँ से श्रमजीवियों को सदैव ही स्वतन्त्र सम्मतियां प्राप्त होती हैं। यह स्थान एक प्रकार से

सब के मिलने का मुख्य स्थान बन रहा था। स्थानीय आन्दोलन के प्राण एक रूसी सज्जन मि० ऊटिन तथा प्रधान कार्यकर्त्री रसियन लेडी मि० मेडम उलगा थीं। दोनों ही ने बड़े प्रेमपूर्वक मेरा स्वागत किया। उनकी अनुकम्पा से थोड़े ही दिनों में मेरी जान-पहचान सब से हो गई और मैं वहाँ की सभाओं में स्वतन्त्रता से भाग लेने लगा। पर सभा-सोसाइटियों की अपेक्षा मुझे तो मजदूरों के पास बैठना ही अच्छा लगता था। मैं बहुधा एक फरासीसी पत्थर-फोडा के समीप बैठा रहता। उन लोगों में उठने बैठने से मुझे उनकी आन्तरिक अवस्था का पता चलने लगा। उन लोगों की सब आशाएं अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन पर लगी हुई थीं। युवा-वृद्ध सभी अनीक टेम्पिल पर काम करने के पश्चात् एकत्रित होकर अपने नेताओं से भविष्य के लिए शिक्षा ग्रहण किया करते। उनको निरन्तर यही शिक्षा दी जाती थी कि जाति-पाति, धर्म, मत-मतान्तरों का कोई विवाद यहां नहीं है। सबको आर्थिक कठिनाइयों में सफलता प्राप्त करने के लिए शान्तिमय अथवा अशान्तिमय विप्लव में विश्वास था। वे सब युद्ध करने के विरोधी थे, पर साथ ही उनका कहना था कि यदि शासक गण अपनी हठ से युद्ध को अनिवार्य ही बना देंगे, तो फिर भयकरता के साथ स्वतन्त्रता के लिए युद्ध अवश्य किया जावेगा। सचमुच जेनेवा के श्रमजीवी बड़े उदार तथा अन्तर्राष्ट्रीय संघ के प्रेमी थे। उनको भूखे पेट रह कर भी संस्था के पत्र तथा अन्य आवश्यक बातों के लिए चन्दा एकत्रित करना स्वीकार था। इसलिए उन्होंने धूम्रपान, मदिरापान आदि तक त्यक्त कर रक्खे थे। बाहरी मनुष्य उनके स्वार्थ-त्याग की सीमा तक नह

पहुँच सकता कि वे किन किन कष्टों का सामना करके संघ के ख़र्च को सहन कर रहे थे।

इसलिए मेरी तो धारणा है कि साधारण मनुष्य उस संघ का सदस्य भी नही हो सकता। उसमे शामिल होने के लिए अधिक नैतिक बल की आवश्यकता है। जिस प्राणी मे बलिदान करने का साहस नही है, वह उस संघ का सदस्य कदापि रह ही नहीं सकता। यही नही, वे श्रमजीवी बड़े परिश्रमी भी थे। हम लोगों को तो सभा में जाना एक साधारण सी बात है, पर ज़रा उन ग़रीब भाइयों का विचार कीजिए, जो आठ-आठ दस-दस मील चल कर तथा दिन भर घोर परिश्रम करने के पश्चात् सभा मे आकर सम्मिलित होते थे। मुझे इस बात से असीम वेदना होने लगी। मैं सोचने लगा कि यह शिक्षित मनुष्यों ही का कर्तव्य होना चाहिए कि उन ग़रीब भाइयों के परिश्रम का विचार करते हुए अपने आराम को छोड़ कर जनता मे प्रचारार्थ भ्रमण करें तथा सार्वजनिक सङ्गठन का काम करें। शिक्षा ग्रहण करने के लिए कितने श्रमजीवी उत्सुक है, पर उनको शिक्षा देने के लिए कितने अल्प सख्यक मनुष्य पाये जाते है। इस भाति मेरी अन्तरात्मा निरंतर मुझ से कहने लगी कि शिक्षित मनुष्य कितने डरपोक हैं, जो अपनी शक्ति, अपनी योग्यता, एवं अपनी विद्या उन मनुष्यों की सेवा में लगाने से हिचकते हैं जो उनके ज्ञान-रूपी स्वाति-जल के लिए चातक हो रहे हैं। अतएव कहां है वे पुरुष, जो कि जनता की वास्तविक सेवा करना चाहते हैं, नकि उससे अपनी महत्वाकाक्षाओं की पूर्ति ही करना केवल उनका लक्ष्य है? शनैः शनै मुझे अनीक टेम्पिल के आन्दोलन

की सार्थकता में भी सदेह होने लगा, इसके थोडे समय पश्चात् अनीक टेम्पिल में एक विराट सभा का होना निश्चित हुआ। इस सभा का मुख्य उद्देश पूंजी वालों के एक पत्र का तीव्र प्रतिवाद था, क्योंकि उसने अपने एक लेख मे यह बात प्रकाशित की थी कि अनीक टेम्पिल एक ऐसी बात की रचना मे लगा हुआ है, जिससे कि सन् १८६९ ई० की ऐसी विराट हड़ताल फिर हो जावे। सहस्रों मनुष्य एकत्रित हुए। ऊटन ने उस समय एक प्रस्ताव पेश किया कि सम्पादक ने जो अनीक टेम्पिल को हड़ताल का उत्तरदायी बतलाया हे, वह बिलकुल असत्य एव निराधार है। इसके समर्थन म आपने एक छोटी सी स्पीच (व्याख्यान) देकर कहा कि हम समझते है आप अवश्य ही इससे सहमत होगे और इसी में आप लोगों की भलाई है। अतएव आप लोग कहिए तो उसे प्रेस मे भेज दें। मैं बडे विस्मय से ये बातें सुन रहा था। ऊटन उठने ही को थे कि एक श्रमजीवी ने उठ कर कहा कि यदि इस विषय पर विचार हो जाय, तो अनुचित न होगा। एक के कहते ही और भी खडे हो गये, तथा अब वे साफ साफ कहने लगे कि गत वर्षों से वेतन इतने कम हो गये है कि भरण-पोषण दुर्लभ हो रहा है। वेतन-वृद्धि होनी चाहिए, यदि ऐसा न होगा, तो हडताल का होना भी क्या आश्चर्य है? बडा वाद-विवाद हुआ। मेरी भी सहानुभूति जनता से थी। ऊटन के व्यवहार से मुझे बडा दुःख था और दूसरे दिन ऊटन से मैंने कुछ अप्रिय शब्द भी कह डाले। पर मुझे ऊटन का अभिप्राय नहीं मालूम था। बाद में उन्हों ने हम से कहा कि मैं हडताल का विरोधी इस-लिए था कि यदि ऐसा हो जाता तो एक वकील चुनाव में

असफल हो जाते, जोकि बड़े काम के आदमी हैं। पर, इस बात से मुझे सान्त्वना न हुई। कहां तो उनकी वे गरम स्पीचें और कहां उनका यह कृत्य! दोनों में नभ-पृथ्वी का अन्तर था। इस प्रकार मैं वहां से निराश हो गया। दूसरे दिन हमने ऊटन से कहा कि कृपया मुझे जेनेवा के दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय संघ से भी परिचय करा दीजिये, जो कि उस समय बाकूनिस्ट के नाम से प्रख्यात हो रहा था। अनारकिस्ट (अराजक) शब्द उस समय अधिक प्रचलित न था। यह सुनते ही ऊटन ने हमारा परिचय निकोलस् जाकावस्की से भी करा दिया और बोले—"अच्छा, अब आप हमारे पास न आओगे और वहां ही रहोगे जहां पर कि जाना चाहते हो।" वास्तव में उनका विचार सत्य ही हुआ।

न्यूचेटल की यात्रा

वहां से चलकर मैं सीधा न्यूचेटल पहुँचा और वहां एक-दो सप्ताह जूरा पर्वत के घड़ी बनाने वालों में रहा। इस भांति हमने प्रथम ही उस विख्यात जूरा संघ की जानकारी प्राप्त की जिसने कि विगत वर्षों में साम्यवाद में अराजकता के भावों का सम्मिश्रण करने में बड़ा ही योग दिया था। सन् १८७२ ई० में जूरा संघ और अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-संघ में बड़ा मतभेद हो रहा था। जूरा संघ का तो एकमात्र यही उपदेश था कि कैसी भी अच्छी सरकार क्यों न हो सरकार का तो होना ही बुरा है। अ० म० संघ उसे पसन्द न करता था। अराजकता की यह पहली चिनगारी थी

और यही आपस का मनभेद था। जो अन्तर मैंने रेडिकल अतीक जेनेवा में नेताओं और श्रमजीवियों में देखा, उसका जूरा पर्वत पर नाम भी न था। यहा पर सब काम करने वाले थे। जो जितना बुद्धिमान है, वह उतना ही अधिक काम करता है। सब ने प्रवीण तथा विद्वान जेम्स गुलैम स्वयं पत्र की प्रूफ रीडरी और उसका सम्पादन करते थे। जब इस प्रकार से भी उदर की पूर्ति न होती, तो वे अपना शेष समय पुस्तकों के अनुवाद में व्यतीत करते। न्यूचेटल में मैंने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की, पर उनका कहना था कि दुर्भाग्यवश वे गप्प-सप्प के लिए कभी दो घंटे भी न दे सकेंगे। यह देखकर पत्रों पर पर्चे चिपकाने का काम हमने ले लिया तथा इस प्रकार जो समय उनको मिलता उसमें हम उनसे बातचीत कर लिया करते। पहली ही भेंट में मेरी उनकी गाढ़ी मित्रता हो गई। उस दोपहर को हम भी आफिस ही में रहे। वे अख़बारों पर पते लिखते रहे और मैं उन पर चिप्पे चिपकाता रहा। लगभग २ घंटे के पश्चात् बातें हुईं। सन्ध्या का समय समीप आ गया। आप को जूरी सघ के मुखपत्र "बुलेटिन" नामक पत्र का सम्पादन करना था, अतएव वे शीघ्र ही विदा होकर चले गये। शनै शनै मेरी जान पहचान वहां के श्रमजीवियों से भी होगई। इन लोगों के विचार बड़े गम्भीर तथा उच्च थे। मेलन नामक एक टिपारी बनाने वाले के पास मैं बहुधा बैठा करता था। इसका मकान एक ऊंचे टीले पर बहुत ही अच्छा बना हुआ है। पहले यह भेड़े चराता था, पश्चात् मैं इसके साथ पेरिस चला गया। वहाँ पर मेलन ने पिण्डी इत्यादि कार्य्यकर्ताओं के साथ

इतना नाम पैदा किया था, कि नेपोलियन तृतीय ने सन् १८६६ ई० में उसको कारागार भेज दिया। उस दिन से वह पेरिस के श्रमजीवियों में पुजने लगा। मेलन को नाना प्रकार की घटनाएँ याद थीं, जिनको वह बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में सुनाया करता था। एक बालक की कहानी उसने मुझे सुनाई थी, जो मेरे हृदय पर अभी तक अंकित है। एक समय की बात है कि एक बालक को राजनैतिक अपराध में फांसी दिये जाने का हुक्म हुआ। उसकी आयु बहुत थोड़ी थी। अन्य लोगों के पश्चात् जब उसकी पारी आई तो वह अफसर से कहने लगा कि कृपया मुझे यह चांदी की घड़ी अपनी छोटी बहिन को दे आने दीजिए, क्योंकि वह इसे बहुत चाहती है। अफसर ने दयालु होकर उसे छोड़ दिया ताकि वह फिर लौट कर न आवे। छूटते ही वीर बालक सीधा घर गया और सब को विस्मयरूपी समुद्र में गोते मारते छोड़, तुरन्त फांसी के स्थान पर जा खड़ा हुआ और वहाँ से कहने लगा—'मैं तैय्यार हूँ—धन्यवाद।" बारह गोलियों ने उसके प्राण-पखेरू उड़ा दिये।

न्यूचेटल से मैं सानवार्डलर्स् को गया। यह गांव एक घाटी में बसा है, जिसके चारों ओर और भी छोटे-मोटे कसबे हैं। उन ग्रामों में अधिकतर फ्रांसीसी घड़ीसाज वास कर रहे थे। यहाँ पर भी एक अढेमर नामक सच्चे कार्य्यकर्ता डटे हुए थे। वे घटों घड़ीसाजों में बैठ बैठ कर उनको अराजकता की बातें तथा आगे होने वाली कांग्रेस के कार्यक्रम सुनाया करते थे। उस सन्ध्या को वहां एक बड़ा मीटिंग होने वाली थी, पर इसी बीच में तूफान आगया। हाथ पैर सर्दी के मारे ठिठुरने लगे। रक्त नसों में जमने लगा, पर इन सब कष्टों के होते हुए

भी श्रमजीवी ७-७ मील की दूरी से मीटिंग में सम्मिलित होने आये। इसी से आप को उन लोगों के उत्साह का पता चल सकता है। साथ ही हम को यह भी अनुभव हुआ कि यहा के श्रमजीवियों की मानसिक स्थिति एक साधारण जनता के सदृश नहीं है, जिससे कि वे कुछ मनुष्यों के आदेशानुसार ही सदैव चलाये जायं और उन्हें स्वतन्त्र विचार करने का अवकाश भी न दिया जाय, वरन् उनके नेता एक प्रकार से वे ही थे जोकि स्वय रात-दिन काम मे लगे रहते थे। अतएव अधिकांश में अनेक नेता, केवल नामधारी नेता न थे, प्रत्युत उनको काम मे जुटा देने वाले व्यावहारिक ज्ञान से पूर्ण अनुभवी व्यक्ति थे। निरीक्षण मे विज्ञता, निर्णय में गम्भीरता, जटिल सामाजिक प्रश्नों को सुलझाने की पटुता आदि गुण जो मैंने इस ज़ूरा संघ में देखे, वे मेरे हृदय को प्रभावित करने एवं उसका प्रेमी बना देने को पर्याप्त थे। सघ के सदस्यों के आचार-विचारों की स्वच्छता एवं सत्यता उनके लिए बडी लाभदायक हो रही थी। वाकूनिन के पवित्र विचारों से उनकी मानसिक शुद्धि हो रही थी। स्वतंत्र विचार करना तो एक प्रकार से इस संघ का आधार-स्तम्भ ही बन रहा था। इस प्रकार इन पहाडों में घूम फिर कर मैंने अपने साम्यवाद सम्बन्धी विचारों को दृढ बना लिया। फलस्वरूप मैं एक पक्का अराजक (Anarchist) हो गया।

प्रसिद्ध वाकूनिन उस समय लोकरने मे था, अतएव मैं उससे न मिल पाया। और रूस जाकर चार वर्ष व्यतीत होने के बाद जब मै पुन स्विट्ज़रलैण्ड वापिस आया तो यह जान कर मुझे बडा ही दु ख हुआ कि कार्य्यकर्त्ताओं में प्रमुख वाकूनिन इस सन्सार से सदैव के लिए कूच कर गये। यह वही महापुरुष था,

जिसने कि जूरा पर्वत के मित्रों के विचारों को श्रेणी-बद्ध किया था। यह देशप्रेमी वाकूनिन ही था, जिसने वहां के निवासियों के हृदयो में एक शक्तिशाली, ज्वलन्त और अप्रतिरोध्य क्रान्तिकारी उत्साह का सचार कर दिया। ज्योंही उसने देखा कि गुलैम के सम्पादकत्व मे एक ऐसे निर्भीक भाव वाले पत्र का प्रचार हो रहा है वह शीघ्र ही वहां पहुँच कर पत्र को सहायता देने लगा। उसने पत्र में स्वातन्त्र्य-पथ-प्रदर्शक ऐसे अद्वितीय लेखों को प्रकाशित कराया, जिनको पढकर समस्त यूरोप क्षुब्ध हो गया। और वास्तव मे उन्ही लेखों के प्रभाव से यूरोप के अन्यान्य भागो में अराजकता पोषित हुई। यहां से वह लोकरनो चला गया और वहाँ पहुँचते ही उसने इटली में एक वैसे ही प्रवाह को चालू कर दिया और अपने मित्रों द्वारा स्पेन मे भी इस आन्दोलन की जड जमाने लगा। जूरा मे प्रारम्भ किये काम का भार उसने वहाँ के निवासियों ही पर छोड दिया। जूरासियनों के वार्तालाप में मिकेल का नाम भी उनकी जबानों पर बहुधा रहा करता था। मिकेल को वे किसी अनुपस्थित नेता के सदृश न मान कर अपने मध्यवर्ती एक मित्र के सदृश सदैव सुमंत्र का दाता समझते थे। वाकूनिन के सम्बन्ध में वे लोग उसकी मानसिक प्रगति की अपेक्षा उस के नैतिक भावों को अधिक श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। सघ के सम्बन्ध की बातचीत में मैंने यह कभी नहीं सुना कि वाकूनिन की क्या विशेष सम्मति है। उसके लेख व उसकी उक्तियां कभी भी वाक्य-वचन नहीं माने गये, जैसा कि दुर्भाग्य-वश प्रायः राजनैतिक नेताओं के विषय में हुआ करता है। विवादग्रस्त विषयों में जहां पर कि मानसिक शक्ति से विशेष

काम पड़ता है, वहाँ पर प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यतानुसार अपने विचारों को प्रकट करने के लिए स्वच्छन्द था। इस यात्रा से लौट कर पूर्व कथनानुसार मैंने साम्यवाद के सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से अपने हृदय में अंकित किया और तत्पश्चात् अपने विचारों को कार्य्यरूप में परिणित करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करता रहा। मैं स्पष्ट रूप से समझ गया कि वह महान परिवर्तन, जिसमें कि समाज के अधिकार में जीवन की आवश्यकताएं आजाती हैं, वे चाहे सर्व साधारण के हित के लिए हों, अथवा स्वतंत्र रूप से सम्मिलित सबों के हित के लिए, और जिसका कि अराजक भी समर्थन किया करते हैं, उन क्रान्तियों से अधिक व्यापक किसी भी क्रान्ति को जन्म देगा, जिनका कि इतिहास के पृष्ठों में उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उस समय कार्य्यकर्त्ताओं को न केवल उन शक्तिविहीन रहीसों की श्रेणी के मनुष्यों का ही सामना करना पड़ता, जिनके विरुद्ध फरासीसी कृषक एवं प्रजावादी घोर उपद्रव कर चुके थे, किन्तु उन मध्यम श्रेणी के मनुष्यों से भी, जो कि वास्तव में शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों के विकास में बढ़े-चढ़े माने जाते हैं और जिनके प्रभाव में राज्य-सत्ता की प्रत्येक सामग्री उपस्थित रहती है। साथ ही मुझे यह भी मालूम होगया कि कोई भी शान्तिमय अथवा अशान्तिमय क्रान्ति ऐसी नहीं हुई जिसमें कि नवीन विचारों का समावेश उस दल में न हुआ हो, जिसकी कि आर्थिक व राजनैतिक दशा पर आघात पहुँचने की सम्भावना होती हो।

मैंने रूस में दासत्व-प्रथा का नाश होते हुए देखा और मैं जानता हूं कि यदि उनके स्वत्वों के नष्ट होने का परिज्ञान उन

दासों के अधिकारियों में पूर्णतया न फैल गया होता, तो उन्हीं दासों को स्वतन्त्रता प्राप्त करने का कार्य्य इतना सरल न हो जाता, जैसा कि उनको सन् १८६१ में प्राप्त हो गया। साथ ही मुझे यह भी पता चल गया कि श्रमजीवियों को उनके वर्तमान वेतन पर निर्वाह कराने की कुप्रथा से उबारने के विचार धीरे धीरे मध्यम श्रेणी की जनता के हृदयों में भी अग्रसर हो रहे थे। उस समय की परिस्थिति पर दृष्टि डालने से साफ विदित होता था कि विप्लव अर्थात् सामयिक शीघ्रगामी परिष्कृत उद्धार अथवा शीघ्रता पूर्वक होने वाले परिवर्तन मनुष्य के स्वभाव में उतने ही आवश्यक हैं, जितने कि वे परिवर्तन जो सभ्य मनुष्य-समाज में शनै शनै स्वतः ही हुआ करते हैं। प्रत्येक समय में जब जब यकायक होने वाला परिवर्तन व संघटन समाज में हुआ करता है, तब Civil war (प्रजा-विद्रोह) का होना अनिवार्य ही हो जाता है। उस समय प्रश्न यह उपस्थित नहीं होता कि किस प्रकार से विप्लव शान्त हो किन्तु, विचारणीय यह होता है कि थोडे से ही उपद्रव से किस प्रकार अधिकतर लाभ प्राप्त हो सके, तथा थोड़ा ही नुकसान हो और आपस का वैमनस्य भी अधिक न बढने पावे।

इस लक्ष्य-सिद्धि के हेतु केवल एक ही मार्ग है और वह यह है कि समाज का उत्पीडित दल इस बात को भलीभाति समझ ले कि उनको इससे क्या क्या और कैसे कैसे लाभ प्राप्त होंगे, पर साथ ही उनके हृदय भी उसके प्राप्त करने के उपायों से भली प्रकार रगे होने चाहिये। बस, ऐसी ही अवस्था में उनको समाज के दूरदर्शी व वर्तमान विषयों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने वाले नीतिज्ञ पुरुषों का भी सहाय्य सरलता

से प्राप्त हो सकेगा। फ्रांस की दुर्घटना इस विषय का एक ज्वलन्त उदाहरण है, जिसमें कि विचारों को परिपक्व किये बिना कार्य्य प्रारम्भ कर देने का कुफल प्रजा को भोगना पड़ा था। विप्लव के शान्त होने पर भी मध्यम श्रेणी के मनुष्यों का कुछ विचार न किया गया और धनिकों ने दोनों को दबाने के लिए अपने हृदय के दुष्ट भावों का पूरा दुरुपयोग किया। प्रायः ३० सहस्र मनुष्य इस उपद्रव के शान्त होने के पश्चात् भी काम आये। यदि उन्होंने प्रजा की सम्पत्ति को साम्यावस्था में लाने के लिए ही यह किया होता तो इस काण्ड में इतनी भीषणता कदापि न होती।

इन सब बातों से मैंने यह परिणाम निकाला है कि मानवीय उन्नति के युग में एक ऐसा समय आता है, जबकि युद्ध अनुपेक्षणीय हो जाता है और विशेष व्यक्तियों की इच्छा न रहते हुए भी गृह-युद्ध छिड़ जाता है। इस दशा में युद्ध छिड़ जाने दो,—अनिश्चित भावों को लेकर कदापि नहीं, किन्तु किसी विशेष लक्ष्य को सामने रख कर, किन्हीं ऐसे गौण कारणों को सामने रख कर नहीं, जिनकी नगण्यता युद्ध की हिंसा को कम नहीं करती, किन्तु विशालतर लक्ष्य को सामने रख कर, ऐसे लक्ष्य को, जिसकी महानता मानव-दृष्टि के सम्मुख विस्तृत क्षितिज की सृष्टि करके समाज को अधिकाधिक उत्साहित करती है। ऐसे अवसरों पर इन विद्रोहों के परिणाम तोप व बन्दूक पर निर्भर न रहते हुए समाज-सुधार के हेतु महज्जनों के कार्य्य सञ्चालन की बुद्धि पर ही निर्भर रहा करते हैं। इस प्रकार जब युद्ध महत्तम कारणों को लेकर लड़ा जायगा, तब वह सामाजिक वायुमण्डल को पवित्र करेगा और

इस तरह दोनों ओर हताहतों की संख्या उतनी अधिक नहीं होगी, जितनी कि उस अवस्था में होती, जब कि मनुष्य की निम्न पाशविक वृत्तियों को पूरी तौर पर उभड़ने का मौका मिलता। इन विचारों को लेकर मैं रूस को लौट आया।

निहिलिज़्म

मैंने अपनी यात्रा में बहुत से साम्यवादी समाचार-पत्र तथा पुस्तकें एकत्रित करली थीं। रूस में इन पुस्तकों को ले जाने की कड़ी रोक थी। तो क्या मैं इनको यहीं छोड़ दूं? पर हृदय यही कह रहा था कि ऐसा तो होना असम्भव है। मैं जानता था कि ये पुस्तकें मित्रों के लिए कितनी अमूल्य हैं, तथा वे उनको कितनी प्रिय होंगी। अतएव मैं उन को हर तरह से ले जाने को उद्यत हो गया, यद्यपि यह बात सेन्सर के कारण बहुत ही अनुचित थी। वारसा और वीना होता हुआ मैं सेन्ट पीटर्सबर्ग को लौट रहा था। मुझे ज्ञात था कि पोलिस सीमाप्रान्त पर बहुत से ऐसे यहूदी मिलते हैं, जो कि अपना भरण-पोषण निषिद्ध वस्तु को चुपचाप ले जाने ही से किया करते हैं। वहां पहुँचते ही मैं उनकी खोज करने लगा। पर, यह सोच कर कि रेल से उतरते ही ऐसे आदमियों की खोज करना अनुचित है, मैं यहूदियों की बस्ती के काव को चला गया। मैं वहाँ घूम ही रहा था कि होटल के समीप कुछ यहूदियों को अपने पेशे की खोज में घूमते पाया। मैंने उनके पास पहुँच कर सब ब्योरा सुना दिया। मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनकर उन यहूदियों में से एक बोला—'आपका

काम ठीक हो जावेगा। मैं अभी अभी चोरी के माल ले जाने वाली विश्वव्यापी कम्पनी के मैनेजर को बुलाये लाता हूँ।' इसके बाद यहूदी वहा से चल दिये। थोडे ही समय पश्चात् सुन्दर वस्त्रालङ्कृत एक नवयुवक मेरे सामने आ खडा हुआ। वह नाना प्रकार की भाषाएं बोल सकता था। उसने ध्यान-पूर्वक मेरे पुलिन्दे की ओर देख कर पूछा कि मोशियो! इसमे क्या है - मैंने स्पष्ट उत्तर दे दिया कि यह पुलिन्दा उन पुस्तकों से भरा हुआ है जिनकी कि रूस मे मनाही है। वह बोला—"क्या पुस्तके! राज्यविद्रोही !! तब तो मैं लाचार हूँ। मेरा काम तो निषिद्ध वस्तु अथवा चुंगी से चोरी के माल को चुपचाप पहुँचा देने का है। यह मामला राजनैतिक है। कहीं इसमे पकडे गये तो बडी दुर्दशा होगी।" यह सुनते ही मेरा चेहरा फीका पड गया। मुझे इस तरह उदास होते देख उसे दया आ गई और वह मुझ से कहने लगा—"मूल्य अधिक होगा, घबड़ाइये नहीं—प्रबन्ध कराये देता हूँ।" मैंने कहा—"मूल्य की कोई चिंता नहीं, मैं अपना सब धन दे सकता हूँ।" "नहीं—ऐसा नहीं—हमारा काम सच्चाई का है।" ऐसा कहकर वह चला गया। थोडी देर बाद वह एक तगडे युवक के साथ लौटा और मेरा पुलिन्दा उसके हाथों सुपुर्द कर बोला—"आप भी कल प्रस्थान कर जाइए। यह पुलिन्दा अमुक स्टेशन पर आपको मिल जावेगा। विश्वास रखिये।"

मैंने कहा—"धन्यवाद-पर, इस परिश्रम का क्या मूल्य होगा?'

युवक—' आप ईमानदारी से कहिये कि कितना दे सकते हो?'

यह सुनते ही मैंने अपनी थैली उसके सामने उलट कर कहा—"इतना हमारी यात्रा के लिए पर्याप्त होगा, शेष मैं दे

सकता हूँ। मैं प्रसन्नता पूर्वक तीसरे दर्जे ही में यात्रा कर लूंगा। यह सुनकर वह खिलखिला कर हँस उठा और कहने लगा—"वाह! वाह!! ऐसे मनुष्य भी क्या तीसरे दर्जे में यात्रा करेंगे? कभी नहीं—ऐसा न होगा। ५ डालर वाहक के लिए बस होंगे और एक मेरे वास्ते, सो भी यदि आप आनन्द पूर्वक दे सकें। हम लुटेरे नहीं हैं। ईमानदार व्यापारी हैं।" ऐसा कह अधिक रुपया लेने से उन्होंने इनकार कर दिया। दूसरे दिन मैं वहां से चलकर बताये हुए स्टेशन पर जा उतरा। वहां पर एक आदमी उसी पुलिन्दे सहित घूम रहा था। मुझे देखते ही उसने बड़ी निर्भीकता पूर्वक चिल्ला कर कहा—"लीजिए, यह पुलिन्दा आप कल यहीं भूल गये थे।' उसने ये शब्द इस प्रकार कहे कि पास में खड़ा हुआ पुलिस अफ़सर भी कुछ सन्देह न कर पाया। मैं तुरन्त उस पुलिन्दे को लेकर प्रसन्न हो सेन्ट पीटर्सबर्ग जा पहुँचा।

रूस पहुँच कर मैंने देखा कि वहां के शिक्षित नौजवानों में उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ एक शक्तिशाली आन्दोलन जड़ पकड़ रहा है। दासत्व प्रथा नष्ट हो चुकी थी पर तज्जनित विषैले प्रभावों का अभी मूलोच्छेदन नहीं हुआ था। कुत्सित स्वभाव, घरेलू संवदाई करने की रीति-रस्म तथा मनुष्यत्व की अवहेलना आदि दोष अभी वैसे ही बने हुए थे। कन्या, पुत्र और स्त्री आदि का पिता और पति के उचित अथवा अनुचित अधिकारों के सामने नम्रीभूत होने की प्रथा जो २५० वर्षों में मनुष्यों के हृदय में स्थान पाये हुई थी, अभी तक विद्यमान थी। इस शताब्दी के आरम्भ काल में यूरुप भर में एक प्रकार से घरेलू अन्याय अर्थात् बड़ों की स्वयं प्रभुता की उत्कट

अभिलाषा का रंग जमा हुआ था, पर इसका जैसा प्रसार रूस में था, वैसा अन्यत्र कहीं भी न था। वहाँ के योग्य से योग्य पुरुष दासता के समय की बुराइयों से शान्त थे।

रूसियों का सम्पूर्ण जीवन सैनिकों का सा जीवन हो रहा था, जिसमें कि दासत्व-प्रथा की गन्ध अब तक आ रही थी। रीति-रस्मों के बड़े बड़े आडम्बर, परस्पर घृणा, नैतिक ह्रास एवं आलस्य-जनित कुत्सित स्वभावों की सृष्टि चारो ओर हो रही थी। इस प्रवाह में बड़े बड़े मनुष्य बहे चले जा रहे थे। विद्वानों का मत था कि व्यवस्था स्वयं इन कुरीतियों को नष्ट कर देने में असमर्थ है। यह सुधार केवल तभी हो सकता है, जब कि एक शक्तिशाली सामाजिक आन्दोलन उठाया जाय, जो कि नित्य जीवन में होने वाली कुरीतियों और बुरे स्वभावों के मूल पर कुठाराघात करे। अस्तु, इसी आन्दोलन ने रूस में विकराल रूप धारण कर लिया, जैसा कि पहले पश्चिमीय यूरोप व अमेरिका में भी न देखा गया था।

"पिता और पुत्र" नामक प्रसिद्ध उपन्यास के सुविख्यात रचयिता मि० टरग्यूनाफ ने इसको 'निहिलिज़्म' के नाम से पुकारा था। यह उपन्यास उस समय का एक जीता-जागता उपन्यास है, जो कि अपना सानी नहीं रखता। पश्चिमीय यूरोप में इस आन्दोलन का ठीक रूप न समझा गया, इसी कारण वहाँ के प्रेसों में निहिलिज़्म का अर्थ त्रासजनक सत्ता (Terrorism) समझा जाने लगा। क्रान्तिकारी उपद्रव, जो कि एलेक्जेण्डर द्वितीय के अन्तिम शासन-काल में प्रारम्भ होकर ज़ार द्वितीय की हत्या के कारण हुए, निहिलिज़्म के नाम से विख्यात किये जा रहे थे। पर, वास्तव में यह उन लोगों

का भ्रम था। निहिलिज्म को भय अथवा त्रास के साथ मिला देना ठीक वैसा ही होगा, जैसे कि एक शुद्ध धार्मिक आन्दोलन को राजनैतिक आन्दोलन से समता देदी जाय।

इतिहास में देखा गया है कि भय अथवा त्रासजनक सत्ता किसी विशेष समय में, कार्य्य-सिद्धि के हेतु क्षणिक रूप में काम में लाई जा सकती है और उसका अस्तित्व भी क्षणिक ही होता है। जन्म के साथ ही वह सत्ता नष्ट हो जाती है और पुनः जीवित होकर पुनः नष्ट होने की सम्भावना बनी रहती है। पर इस निहिलिज्म ने रूस के नवयुवकों में एक ऐसे उच्चादर्श का जन्म दिया, जो कि बहुत काल तक स्थिर रहा और अभी तक स्थिर है। यही नहीं, प्रत्युत वह रूसी नवयुवकों के जीवन का सूत्र बन गया। अस्तु, सब से प्रथम ये निहिलिस्ट ही थे, जिन्हों ने कि मनुष्य जाति की सामाजिक असत्यताओं एवं कुरीतियों के साथ युद्ध-घोषणा की थी। अपने अपने भावों को पूर्ण रूप से स्पष्ट प्रकट कर देना ही उन का लक्षण था और उसी सच्चाई के नाम पर वे स्वयं मिथ्याधर्म, परस्पर घृणा एवं विवेक रहित सभी कुत्सित स्वभावों व रीति-रस्मों को त्याग देने के लिए तत्पर रहते, और दूसरों को भी अनुकरण करने की सम्मति देते थे। वास्तव में एक निहिलिस्ट युक्ति और तर्क के अतिरिक्त किसी बात के सम्मुख शिर नवाने को तैयार न था। वह किसी भी सामाजिक संस्था का विवेचन करते समय किसी भी प्रकार से न्यूनाधिक मिथ्यावाद का कट्टर विरोधी था और इसी हेतु वह अपने पूर्वजों के मिथ्या विचारों से सदैव प्रथक रहा करता था। निहिलिस्ट अपने न्यायानुकूल विचारों में दृढ़, निश्चयी, एवं

ईश्वरीय ज्ञान से वहिर्मुख, एक उन्नति-इच्छुक तथा वैज्ञानिक अनात्मवादी है। यद्यपि वह किसी भी धर्म के साधारण से साधारण धार्मिक विश्वास पर, जोकि ज्ञान के लिए आध्यात्मिक दृष्टि से परमावश्यक है, आघात न पहुँचाता था, किन्तु वह ऐसे दम्भ और पाखण्ड का, जिस को कि लोगों ने प्राय धर्म का एक अंग मान रक्खा है, कट्टर एवं प्रबल शत्रु था। उस समय सभ्य मनुष्य का जीवन छोटी छोटी सामाजिक असत्यताओं से भरा पड़ा था। ओह! मनुष्य जो कि एक दूसरे से घृणा करते हैं, किस प्रकार गली-कूंचे में यकायक मिलते ही कृत्रिम प्रसन्नता प्रदर्शित करने लगते हैं! पर यह बात आपको एक निहिलिस्ट में न दृष्टि पड़ेगी। वह अपनी प्रसन्नता तभी प्रकट करेगा, जब कि उसके हृदय में आनन्द की लहर उमड़ेगी, अन्यथा वह गम्भीर हो अपने कार्य्य में संलित रहेगा। वे सब प्रकार के बनावटी शिष्टाचार, जो कि एक प्रकार से दम्भ कहे जाते हैं, एक निहिलिस्ट में कभी भी न पाये जावेंगे।

ऐसे अवसरों पर एक निहिलिस्ट अपने पिता आदि वृद्ध जनों की भी ऐसी दम्भता के प्रति खुल्लमखुल्ला विरोध-भाव प्रकट करने में न झिझकता था। सूक्ष्म में, वह वास्तविकता का पुजारी एवं पाखंड का घोर शत्रु था।

कला इत्यादि विषयों पर भी निहिलिस्टों का सिद्धान्त अलग था। प्रेम-शून्य विवाह, मित्रता-शून्य हेल-मेल भी वे तिरस्कार युक्त समझते थे। उस समय की एक निहिलिस्ट कन्या, जोकि यदि अपने माता-पिता की आज्ञा से, धन या पदवी की इच्छा से प्रेम-शून्य विवाह के लिए बाध्य की जाती थी,

अपने रंगविरंगे रेशमी वस्त्रों, आभूषणों एवं अपने घर तक को छोड़ देने के लिए तैयार हो जाती थी। वह अत्याचार को न सह कर अपने बाल कटवा, मोटे वस्त्रों को पहन कर पाठशाला में स्वतन्त्रता पूर्वक विद्याध्ययन में जीवन व्यतीत करने को चली जाती थी। उसको भूखों मरना, नाना प्रकार के क्लेशों को सहन करना, सन्तान की दुर्दशा देखना आदि सभी कुछ स्वीकार था, पर उसे अपनी स्वतन्त्रता खोकर अपना जीवन कंटकमय बनाना स्वीकार न था। वास्तव में एक निहिलिस्ट अपने जीवन के एक एक क्षण में सत्य का प्रेमी था।

मुझे स्मरण है कि इर्कुटस्क में मैं व मेरा एक मित्र एक क्लब में जाया करते थे। वहाँ पहुँचते ही बहुत सी लेडियां हम दोनों से बड़ा हेल मेल मानने लगीं। कुछ दिनों बाद मेरा जाना कार्यवश रुक गया। यह देख कर बहुत सी महिलाएं बड़ा हेल-मेल दिखला कर मुझे आने के लिए अनुरोध करने लगीं। पर, मेरे मित्र ने स्पष्ट कह दिया कि कृपया रहने दीजिए। आपके फैशन से मुझे प्रेम नहीं है। मित्र के इस शुष्क उत्तर ने उन पर बड़ा प्रभाव डाला। वे अब हम सबको घेरने लगीं और बार बार पूछने लगी कि बताइये तो हम भी अब क्या करें? कौनसी पुस्तकें पढें जिन से हमारे विचार शुद्ध हो जावें। बस इसी प्रकार एक निहिलिस्ट सदैव स्पष्ट वक्ता और साफ रहता है। यदि कोई भी उसको तनिक भी कृत्रिमता दिखलावे तो वह तुरन्त ही उससे स्पष्ट उत्तर अवश्य पावे। रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार टरग्यूनाफ व गानचेराफ ने अपने अपने उपन्यासों में निहिलिस्टों के इस ढंग का अच्छा वर्णन किया है। निहिलिस्ट नवयुवक दासों से कमाई हुई रोटियों को

ग्रहण न करते थे और न वे उस प्रचुर धन का ही उपभोग करते थे, जिसको कि उनके पिताओं ने दासों से नीच कर्म करा कर एकत्रित किया था। कराकोजाफ के मुकदमे का रहस्य समस्त रूस ने विस्मय के साथ पढ़ा। सब को आश्चर्य था कि इतने धन के स्वामी होते हुए भी कराकोजाफ व उनके मित्रों ने धन का कभी आनन्द न उठाया। वे सब मिल कर एक ही कोठरी में गुजर कर लेते थे। इस भांति ५ वर्ष पश्चात् सहस्रों रूसी नवयुवक इसी प्रकार के हो गए। उन सबों का संकेत-वाक्य (watch word) उस समय केवल यही हो रहा था—'V. Narod !' (To the people, be the people) अर्थात् "प्रजा के लिए; प्रजा ही रहो।" सन् १८६० ई० से लेकर सन् १८६५ ई० तक प्राय प्रत्येक धनी घराने में पिता और पुत्र-पुत्रियों में कलह मचा हुआ था। पिताजन पुरानी लकीर के फकीर बने रहना चाहते थे, पर उनके पुत्र और कन्याएं अपने जीवन को अपने अपने सिद्धान्तों द्वारा ही व्यतीत करना चाहते थे। सैकड़ों युवा सैनिक नौकरियों को छोड़ छोड़ नगरों में आकर रहने लगे। राज्य-पक्ष-घराने की युवतियां अपने सुन्दर विशाल प्रासादों को छोड़ कर धनाभाव के कष्टों को सहती हुई, सेन्ट पीटर्सबर्ग, मास्को, कीफ आदि बड़े बड़े नगरों में आकर व्यवसाय सीखती थीं, ताकि वे पराधीन न रह सकें और कदाचित् समय आने पर स्वयं पति के भी। बहुतों ने अत्यन्त कड़े परिश्रम और दु:खों के साथ इस स्वतन्त्रता को प्राप्त किया। पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पाकर वे चुप नहीं बैठीं, उस ज्ञान के विकासार्थ तथा जनता के लाभ की दृष्टि से वे उसका प्रचार देश में घूम घूम कर करने

लगीं। इस प्रकार रूस के प्रायः सभी मुख्य मुख्य नगरों में निहिलिस्टों के झुण्ड के झुण्ड प्रचार करते दृष्टि पड़ते थे। चारों तरफ इसी पर बहस हो रही थी कि किस प्रकार से ये जटिल समस्यायें हल की जावें। शनै शनैः यह बात सब के हृदय में समा गई कि इस काम के लिए हम सब को जनता में सार्वजनिक रूप से मिल जाना चाहिये। वे निहिलिस्ट नवयुवक डाक्टर, कम्पाउण्डर अध्यापक, किसान, श्रमजीवी लुहार, बढ़ई इत्यादि बन बन कर किसानों और साधारण जनता में अपने विचारों का प्रचार करने लगे। युवतियां दाइयों का काम सीख सीख कर अध्यापिकाएं बन गईं और गरीब से गरीब रूसी भाग में पहुँच कर ज्ञानोपदेश करने लगीं।

ये मनुष्य किसी क्रान्ति या विशेष सामाजिक सुधारों के लिए परिभ्रमण नहीं कर रहे थे, वरन् उनका लक्ष्य गरीब किसानों को दवा-दारू से सहायता देना व उनको शिक्षित बना देना था, जिससे कि वे अपने दुःखों से छुटकारा पा सकें। मैं स्विट्जरलैंड से यहां वापिस आया तो उस समय यह आन्दोलन अपनी पूरी रफ्तार पर था। मैं वहां पहुँचते ही अपने इष्ट-मित्रों को अन्तर्राष्ट्रीय-मजदूर-संघ के वृत्तान्तों को सुनाने लगा। पुस्तकें, जो कि मैं साथ में लाया था मेरे मित्रों ने बहुत पसन्द कीं।

यूनीवर्सिटी में मेरे कोई मित्र न थे, क्योंकि मैं वहां पर सब से बड़ा था। मित्रता बहुधा बराबर उम्र वालों ही में हुआ करती है, छोटे-बड़ों में मित्रता प्रायः ठीक नहीं हुआ करती। उस समय यूनीवर्सिटी में प्रवेश होने के नियम ऐसे कठिन न हो रहे थे कि स्वतंत्र विचार वाले नवयुवकों का वहां

मरती हो जाना बड़ा कठिन काम था। मेरी गोष्ठी वहां पर बढ़ती जाती थी। हम सब को परीक्षा के अतिरिक्त और कोई चिन्ता यूनीवर्सिटी के सम्बन्ध में न थी। मेरा अधिक प्रेमपात्र मित्र केलनिट्ज़ था। वह बहुत ही प्रवीण और पढ़ा-लिखा था। उसको विज्ञान से प्रेम था और वह उसकी प्रतिष्ठा किया करता था। परन्तु, थोड़े ही दिन बाद उसको भी यह बात सूझ गई कि इस में ही क्या रक्खा है, जब कि इससे भी आवश्यकीय कार्य्य हमारे सामने उपस्थित है। दो वर्ष यूनीवर्सिटी में रह कर उसने उसे छोड़ दिया। अब उसका समस्त समय सामाजिक कार्य्य में व्यतीत होने लगा। मुझे यह विस्मय था कि वह अपना भरण-पोषण किस प्रकार से करता है? कभी कभी वह मेरे पास आता और मुझ से कागज स्याही मांग कर अनुवाद आदि कार्य्य करने लगता। इस प्रकार परिश्रम करके जो कुछ उसे मिल जाता, वह उसी में ही सन्तोष कर लेता था। मीलों वह पैदल घूमता। वास्तव में वह मेरा सौभाग्य था कि ऐसा मित्र मुझे मिला।

थोड़े दिनों बाद ही केलनिट्ज़ ने मुझे चैकोवस्की मंडल में प्रवेश होने को कहा। यह मंडल अपने सामाजिक सुधारों के लिए समस्त रूस में विख्यात था। केलनिट्ज़ ने मुझ से कहा कि अभी तक इसके सदस्य सच्चे, रचनात्मक कार्य्य करने वाले और ईमानदार रहे हैं। वास्तव में यह मंडल धर्म्मात्मा, सदुच्चरित्र बालकों से पूर्ण था। चैकोवस्की को मैं स्वयं जानता था और मेरी उनकी मित्रता लगभग २७ वर्ष रही। प्रारम्भ में एक प्रतिष्ठित रूसी महानुभाव ने युवा नर-नारियों की आत्म-उन्नति के लिए एक मंडल स्थापित किया था। बीच में सन

१८६६ ई० में निचेफ महाशय ने इस में गुप्त क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का समावेश कर दिया। षड्यन्त्रकारी बढ़ने लगे पर, रूस में ऐसी संस्था का उस समय चलाना असम्भव था भेद खुल गया और समस्त सदस्य पकड़ लिये गये। निचैफ के समय ही में आत्म-शिक्षा के चाहने वालों ने अपना एक मंडल स्थापित कर रक्खा था, जो कि निचेफ के सिद्धान्तों के प्रतिकूल था। नवीन मित्रों ने गलती ताड़ली। उनका कहना था कि नैतिक विचारों से पूर्ण मनुष्य, चाहे वह किसी भी राजनैतिक संस्था का क्यों न हो, अपना कर्तव्य अवश्य पूरा करेगा। यही कारण था कि चैकोवस्की का यह मंडल धीरे धीरे अपने सिद्धान्तों को फैला कर इतना बढ़ गया जब भविष्य में सरकार की दमन नीति से ऊब कर रसिया में क्रान्तिकारी कलह मच गया, तो उस समय इसी मंडल के नर-नारियों ने निरंकुश राज-सत्ता के साथ घोर युद्ध किया। प्रारम्भ में सन् १८७२ ई० तक इस मंडल में कोई क्रान्तिकारी बातें न थीं। यदि यह मंडल बराबर आत्मोन्नति का काम किये जाता तो आगे चल कर यह एक मठ हो जाता पर सदस्यों को एक शुभ कार्य करने को मिल गया। वे नवयुवकों में पुस्तकों का प्रचार करने लगे। ... लासल, मर्क्स, वरभी आदि धुरन्धर लेखकों की पुस्तकों को ... प्रान्तों में विद्यार्थियों में वितरण करने लगे। फल ... थोड़े ही वर्षों में यह इतना बढ़ा कि रूसी राज्य के ... में इसकी शाखाएं फैल गईं। धीरे धीरे समयानुसार पश्चिमी यूरोप से आने वाले समाचारों को पढ़ कर मं... सदस्य शिक्षित युवकों में साम्यवादी विचारों का प्रचार

लगे। फलत विद्यार्थियों व श्रमजीवियों के बीच का पर्दा उठ गया और वे एक दूसरे को यथार्थ रूप में देखने लगे। सेन्ट पीटर्सबर्ग तथा अन्य अन्य प्रान्तों में श्रमजीवियों का सीधा मार्ग खुल गया।

इसी समय सन् १८७२ई० में मैंने इस मंडल में प्रवेश किया। समस्त गुप्त संस्थाओं का रूस मे भयकरता के साथ चालान हो रहा था। यह देख कर पश्चिमी विद्वान् कदाचित मुझसे पूछ सकते हैं कि कौन सी बातों की शपथ मुझसे वहां ली गई थी। पर मैं उनको निराश करके कहूँगा कि वहां पर ऐसी कोई भी बात न थी। वहां पर इसकी गन्ध तक न थी। मंडल उन्हीं मनुष्यों को अपना सदस्य बनाता था जो कि अच्छी तरह से जाच कर लिये जाते थे तथा जो सर्वप्रकार से विश्वास-पात्र थे। इसके प्रथम कि मंडल का कोई सदस्य बनाया जावे उसकी बड़ी छान-बान कर ली जाती। एक निहिलिस्ट के सदृश उसके आचरणों पर तीव्र आलोचनाएं हो जाया करती थीं। जब एक व्यक्ति सब म शुद्ध पाया जाता, तब कहीं मंडल का सदस्य हो सकता था। थोड़े भी सदेह मात्र पर वह सदस्य के पद से हटा दिया जाता। हम सब का उद्देश मंडल की संख्या-वृद्धि पर न था, वरन् सच्चाई पर था। वास्तव मे यह मडल सच्चे मित्रों का जमघट था। इस मडल के सदृश सच्चे नैतिक बलशाली मनुष्य मैंने रूस मे अन्य कहीं नहीं देखे। मुझे अभी तक उस मंडल के सदस्य होने का गर्व है। जब कि मैं इस मंडल में प्रविष्ट हुआ तो वहाँ पर बडे वादाविवाद छिड़े हुए थे। कुछ लोगों का मत रेडीकेल और सोशलिस्टिक (साम्यवादी) मत का प्रचार करना था और कुछ लोग ग्राम

ग्राम में परिभ्रमण करके किसानों और श्रमजीवियों में शिक्षा का प्रचार करना चाहते थे। किन्तु दूसरा पक्ष बलवान था। अमरीका और यूरोप में पहला मत प्रबल था। पर, यहाँ के नवयुवक काल्पनिक न थे; वे घर ही में बैठे बैठे अपने पिताओं की सम्पत्ति का उपभोग न करना चाहते थे। वे पूंजीवादिता के घोर विपक्षी थे। वे जनता में मिल जाना चाहते थे। सहस्रों नर-नारी ग्रामों में फैल गये थे। यह कोई सघटित बात नहीं थी और न यह आन्दोलन कोई सघटित ही किया हुआ था कि सब ग्रामों में सहस्रों नर नारी फैल जावें, यह तो समय समय पर बहुधा मनुष्य-जाति की जाग्रति के चिह्न स्वरूप हुआ करता है। यह बात सत्य है कि बाकूनिन के उपदेशों ने बड़ा काम किया। मजदूर-सघ का भी अच्छा प्रभाव पड़ा। पर इन सब बातों के होते हुए भी उस आन्दोलन की जड़ अधिक गहरी थी। वह तो सन् १८८६ ई० ही से कराकोजाफ के समय से फैल रहा था, जिसके कि आगमन को टरग्यूनाफ ने धीमे शब्दों में पहले ही कह दिया था। मैं भी उन सिद्धान्तों की उन्नति इस चैकोवस्की मंडल में चाहता था। पर वास्तव में मैं तो केवल एक तरंग के साथ साथ काम कर रहा था, जो कि स्वयं कहीं अधिक प्रभावशाली थी। हम लोग प्रायः सरकार के विरुद्ध आन्दोलन उठाने की चर्चा किया करते थे। बेचारे किसान हमारे देखते देखते नित्य नये नये टैक्सों से दबाये जा रहे थे। उनके चौपाहे शेष लगान की प्राप्ति के लिए नित्य बेचे जा रहे थे। हम दर्शक गणों का जी इस प्रकार से जनता का नाश देख कर कांप उठता था। जहां देखो तहां सरकारी कारिन्दे लूट मचाये हुए थे। हमारे मित्रों के मकानात

पुलिस विना कारण रातों-रात खोज डालती थी। जरा सी वात पर देशनिकाला हो जाया करता। अतएव इस शक्तिशाली शक्ति से राजनैतिक युद्ध करने की हम सब को अतीव आवश्यकता हो रही थी, क्योंकि नित्य राष्ट्र के होनहार युवक इस शक्ति द्वारा सताये जा रहे थे। हमारे वृद्ध जन हमारे इन विचारों के विरोधी थे। नौजवान सब सन्देह की दृष्टि से देखे जाते थे, यहां तक कि वृद्ध जन हम लोगों से नाता रखने में भी भय खाते थे। उदार विचार वाला प्रत्येक नवयुवक, तथा उच्चतम शिक्षा की अनुरागिनी महिलाएं भी काटकाफ आदि पुलिस अफसरों द्वारा "राज्य विद्रोही" के नाम से पुकारी जाती थीं। यदि किसी विद्यार्थी के घर बहुत दोस्त आया-जाया करते, तो उसके घर की खोज पुलिस द्वारा हुए विना न रहती थी। बस, सन्देह होना चाहिये कि विद्यार्थी स्कूल से निकाल कर तुरन्त कारागार में डाल दिया जाता और वहां से रूस के दूरस्थ प्रदेश में अनिश्चित समय के लिए भेज दिया जाता।

मुझे अपने पिता की टामवे रियासत मिली थी। हमने वहां स्कूल, अस्पताल आदि सुधारों की इच्छा की, पर ये कार्य भी सदेह की दृष्टि से देखे जाने लगे। सुधार मिले, पर यदि कोई वास्तविक सुधारों का नाम लेता तो वह दण्डनीय होता। इस कारण सब निराश थे। हमारे मंडल में आन्दोलन के कार्यक्रम पर नित्य बहसें हुआ करतीं। मुझे कोरा वादाविवाद अच्छा न लगता था। एक वार मैंने स्पष्ट कह दिया कि "अब वादाविवाद का समय नहीं। हम को कोई कार्यक्रम निश्चित कर लेना चाहिये। मेरी राय में मंडल को एक आदेश देना

चाहिये, फिर हम सब का यह कर्त्तव्य है कि हम सब अपने व्यक्तिगत विचारों की चिन्ता न कर उसका पालन करें। और यदि आप रचनात्मक कार्य्य ही करना चाहते हैं, तो मैं अलग होकर बड़े बड़े अफसरों में मिल जाऊँगा। मेरा सम्बन्ध केवल चैकोवस्की से रहेगा, जिसको कि मैं अपने कार्य्यों का विवरण बताता रहूँगा। शनैः शनैः मैं उन सब को एलेक्जेण्डर द्वितीय के विपक्ष में भरूंगा, जिससे कि समय पर हम सब उनको सुधारों के लिए विवश कर सकें।"

मंडल ने यह बात स्वीकार नहीं की। वे इस बात को जानते थे, कि ऐसा करने में सम्भव है कि मैं अपनी वास्तविकता खो बैठूं। पर, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जब मैंने यह पूर्णरूप से जाना कि मेरी बात स्वीकार नहीं की गई। यदि वह स्वीकार करली गई होती तो मुझे अवश्य ही अपने स्वभाव के विरुद्ध काम करना पड़ता, जिससे कि आत्मा को क्लेश होना आवश्यक था। इसी प्रकार हमारे समुदाय में विचार हो रहे थे पर कोई फल न निकलता था। पूंजीवालों की उदासीनता अत्यन्त निराशाजनक होरही थी, इधर कारावास भोगी नवयुवकों का खून उबल रहा था, जोकि ८-९ साल बाद ज़ार की हत्या की चेष्टा में जाकर शान्त हुआ। यह कार्य रूसी एक नवयुवक का था, जिसको कि ज़ार ने मदांध हो क्लेशों से पीड़ित करके दूरस्थ देशों में मार डालना चाहा था। वह किसी प्रकार से अपनी जान बचा कर वहां से भाग निकला। उस दिन से वह ज़ार के प्राण लेने पर उतारू होगया था। पर, रूस इससे भी अधिक गहरा होगया था। हज़ारों मनुष्य चुपचाप ज़ार के दमन से हताश होकर कराकों-

ज़ाफ के सिद्धान्तों के मानने वाले बन बैठे। सघटिन मंडल इस बात के विरोधी थे और वे बराबर ऐसा न करने का उपदेश दे रहे थे। मैं इस समय एक ऐसे रहस्य को खोल देना चाहता हूँ, जो कि इसके पेश्तर कभी साधारण जनता को न मालूम होगा। जब कि एक नौजवान दक्षिणी प्रदेश से दृढ निश्चय करके जार द्वितीय को मार डालने के लिए आया तो चैकोवस्की मंडल के एक सदस्य ने उसे ताड़ लिया। उसको बहुत समझाया-बुझाया, पर जब वह किसी प्रकार से न माना, तो उससे कहा गया कि यदि तुम ऐसा करोगे तो हम सब तुम को इस समय ऐसा न करने देंगे और इस लिए तुम्हारे ऊपर आज से निगरानी रक्खी जावेगी। जार द्वितीय का हाल देखते हुए, तथा उसके प्रबन्ध की शिथिलता देखते हुए यह बात उस समय मानी हुई थी कि यदि हमारा मंडल उस नवयुवक को हत्या करने से न रोकता, तो जार की मृत्यु अवश्यम्भावी थी। उस युवक को यह बहुत बुरा लगा, पर भविष्य में जब दमन का घड़ा भर कर बहने लगा, तो फिर वही बात जो होने को थी, होगई।

घोर आन्दोलन

दो वर्ष पर्य्यन्त जो कार्य्य मैंने उपरोक्त मंडल में किया, उसने मेरे शेष जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। इन दो वर्षों में मेरा जीवन एक विचित्र ही दशा में बड़ी उथल-पुथल में बीता। प्रथम इसके कि मै वैज्ञानिक कार्य्य को छोड़ूं, मैंने अपना यह धर्म समझा कि मैं भूगोल समिति के लिए

फिनलैंड की वरफ की नदियों के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट लिखदूं। मेरे मित्रों की भी यही अनुमति थी, अतएव रिपोर्ट बनाने में मैं बहुत परिश्रम करने लगा। साथ ही साथ मैं अपने मंडल की प्रत्येक मीटिंग में भी अवश्य उपस्थित होता। हम सब सेन्ट पीटर्सबर्ग नगर के बाहर एक नामधारी कुटी में मिला करते थे। यह कुटी एक महिला की थी, जिसका पिता सेन्ट पीटर्सबर्ग में कुछ समय तक सैनिक गवर्नर रहा था। पर उसकी लड़की घर से निकल कर पढ़ने चली गई। वहा जाकर वह मेरे मंडल मे आ मिली। शनै शनैः उसी का घर मंडल की बैठक का स्थान हो गया। यहा पर बहुत सी महिलाएं भी रहती थीं। वे सब इस मंडल की सच्ची उपासिका थीं। उनकी प्रगाढ़ भक्ति मन को उत्साहित करने वाली थी। यहा दिये गये इस एक उदाहरण से आपको विदित हो जावेगा कि वे नैतिक साहस में कितनी बढ़ीचढ़ी थीं। एक समय रात्रि को मैं अपने मित्र कुपेरीनाफ के साथ एक दूसरी लेडी बी बरबरा के पास एक आवश्यक संदेश लेकर गया। उस समय रात्रि का एक बजा होगा। उसके कमरे में रोशनी हो रही थी। हम दोनों सीधे चढ़े चले गये। हमको मालूम था कि वह कितनी सच्ची उपासिका है, परन्तु तो भी हमारे हृदय में मनोरंजन करने की सूझी। मैं तुरन्त उसे देख कहने लगा—"मेडम्! मैं आपको लेने आया हूँ। मंडल के निश्चयानुसार हम सब किले से अपने मित्रों को छुड़ाने जा रहे हैं।" यह शब्द सुनते ही वह अत्यन्त धैर्य्य पूर्वक वगैर कुछ कहे सुने तुरन्त उठ खड़ी हुई और कहने लगी—"आओ! चलो!" ये शब्द उसने इतनी गम्भीरता और सचाई से कहे कि मैं मन ही मन लज्जित हो

गया और हमने तुरन्त उसे सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनते ही वह अपनी कुर्सी पर चुपचाप बैठ गई और नेत्रों में आँसू भर कर निराश हो कहने लगी—"यह केवल मनोरंजन या मजाक था। आप ऐसा मज़ाक क्यों करते हो ?" उस समय मैं अपनी निर्दयता पर पश्चात्ताप करने लगा। मैं बहुत ही लज्जित हुआ और उससे क्षमा प्रार्थना की। मेरे मंडल का दूसरा प्रेमपात्र सरग्रेई क्रेविचिन्सकी था, जोकि इंगलैंड, अमेरिका आदि देशों में स्टेपनायक के नाम से विख्यात हो रहा था। उसके मित्र प्राय उसे "बेबी" (Baby) नाम से पुकारा करते थे। कारण कि वह अपनी रक्षा के लिए कभी भी चिन्तित न रहता था।

सरग्रेई अत्यन्त निर्भय था, इसी कारण पुलिस भी उस से झेंपती रहती थी। उसका नाम कार्यकर्त्ताओं में थोड़े ही दिनों में प्रसिद्ध हो गया। इसी कारण पुलिस भी उसकी खोज में रात-दिन लगी रहती थी, यद्यपि वह अपने बचाव के लिए कोई विशेष उपाय न करता था। मुझे याद है कि वह इसी बात पर मीटिंग में फटकारा भी गया था। सब ने उस को इतना लापरवाह न रहने के लिए उपदेश दिया। उस दिन मीटिंग में आप देर से आये, जैसा कि बहुधा आप से हुआ करता था। इसका कारण यह मालूम हुआ कि आप राह चलते किसानों को उपदेश देने लगे थे। अस्तु, वहां पर देर होने के कारण आप समस्त मार्ग में दौड़ते-हांफते यहाँ आये हैं। इस पर उनसे जवाब तलब किया गया कि इस असा-वधानी से क्या वे पुलिस द्वारा पकड़े नहीं जा सकते थे ? क्या उनका दौड़ना पुलिस के अफसरों को सन्देह पैदा नहीं कर

सकता था ? पर, मैं उनकी काम करने की शक्ति को देख कर उनसे बहुत प्रसन्न था। सरयेई अनुवाद करने में बड़े दक्ष थे। धीरे धीरे जब हमारा उनका घनिष्ट सम्बन्ध होगया, तब तो हमको उनमें अनेकों गुण मालूम होने लगे। मैं रात-दिन उनकी ईमानदारी, निर्भीकता, तथा उनकी शक्ति, बुद्धि-विलक्षणता, सादगी और सच्चाई पर विचार करके मुग्ध हो प्रशंसा किया करता। इन्होंने अध्ययन भी खूब किया था। मेरे इनके विचार लगभग एक से ही थे। वह हम से यद्यपि १० वर्ष छोटा था, पर उसकी इच्छायें किसी से भी कम न थीं। एक दिन उसने स्वयं हँसते-हँसते कहा कि वह किस प्रकार किसानों में काम किया करता था। उसने कहा—"एक दिन मैं अपने एक मित्र के साथ सड़क पर घूमता चला जा रहा था। यकायक एक किसान घोड़े पर नजर पड़ा। मैं बढ़कर उसे टैक्स न देने की शिक्षा देने लगा और अफसरों की लूट-खसोट को सुन कर उसे अपनी सत्यता पर विश्वास दिलाने लगा। यह सुनते ही उसने घोड़े के कोड़ा जमाया। घोड़ा दौड़ने लगा, और साथ साथ हम भी शिक्षा देते देते दौड़ने लगे। यह देख उसने घोड़े को सरपट दौड़ाया, पर उसका टट्टू छोटा था, अधिक तेज न दौड़ सका। अतः हम दोनों साथ ही लगे रहे और बराबर शिक्षा देते रहे, यहाँ तक कि हम दोनों बिलकुल हाँफ गये।"

कुछ दिनों तक सरयेई ने फ्राजन में निवास किया था। वहाँ से हमारी इनकी चिट्ठी-पत्री हुआ करती थी। वह बिन्दियों में गुप्तलेख द्वारा चिट्ठी लिखने से घृणा करता था, अतएव हमने उसको एक नई तरकीब लिखी, जो कि पहले भी षडयन्त्र-

कारियों में प्रचलित थी। वैसे तो आप चिट्ठियाँ लिखते ही है, पर हमारे लिखने के ढग मे एक बात जो निराली थी, वह केवल यह थी कि अर्थ वाले शब्दों का नम्बर पांचवां रहना था अर्थात् वे केवल चौथे शब्द के बाद ही लिखे जाते थे। उदाहरण के लिए लीजिए जैसे, "Excuse my hurried letter come to-night to see, me, to-morrow I shall go away to my sister My brother Nicholas is worse, it was late to perform an operation" इस प्रकार पांचवें अक्षरों को मिला कर पढने से विदित होगा—'Come to-morrow to Nicholas late" अर्थात् "कल देर करके निकोलस के पास आइये"। इस प्रथा के अनुसार हम को एक पन्ने के पत्र के लिए ४-६ पन्ने लिखने पडते, तथा पत्र को पूरा करने के लिए भी शब्दों की वडी खोज-बीन करनी पड़ती। भाव ठीक बने रहने के लिए निरर्थक शब्दों को भी ठीक रूप में दर्शाना होता था। इस नये ढङ्ग से हम दोनों वडे वडे पत्र एक दूसरे को लिखा करते। सरघेई का कहना था कि इस ढङ्ग ने मुझे साहित्य-ज्ञान में वडा लाभ पहुँचाया, पर, वास्तव में जो विद्वान होता है, वह हर उपाय से विद्या में लाभ ही उठाता है।

सन् १८७४ ई० के जनवरी या फरवरी मास में मैं मास्को में था। मैं वहा अपने एक घर में बैठा हुआ था कि वडे ही प्रातःकाल मुझ से कहा गया कि एक किसान मुझे देखना चाहता है। मैं उठकर बाहर आया तो देखा कि सरघेई उपस्थित हैं। यह अभी अभी टिवर से भाग कर यहाँ आ रहे थे। उस समय वह खब हृष्ट-पुष्ट हो रहे थे। साथ ही

में दूसरे साथी जो रोगाचाक थे, वे भी खूब तगडे हो रहे थे। ये दोनों अगौनिया अर्थात् आरा चलाने वालों का भेष बदल लकड़ी चीरते-फाड़ते, पुलिस की निगाह बचाये आज एक महीने से चुप-चाप क्रान्तिकारी बीजों को जमाते फिरते थे। आपको बाइबिल के मन्त्र कण्ठस्थ थे। जब कभी वे उनको किसानों में सुनाने लगते और धर्मोपदेश ही में सब बात कह जाते। वे किसान उनको अपने अपने घर बारी-बारी से ले जाते, खाना खिलाते, तथा लाख कहने पर भी उसका मूल्य न लेते थे। एक पक्ष ही में उन दोनों ने आसपास के ग्रामों में खलबली मचादी था। किसानों में निर्भीकता आगई थी। जिन ग्रामों में वे एक बार ही आये, वहाँ के किसान खुल्लमखुल्ला टैक्सों पर विचार करने लगे। उन ग्रामों के नौजवान पुलिस से अश्रद्धा करने लगते और कहने लगते, "और ठहरिये, हमारी भी बारी आवेगी, आपकी ही तूती सदैव न बोलती रहेगी।" धीरे धीरे इन अगौनियों की ख्याति पुलिस वालों के कानों में जा पहुँची। फलतः वे पकड़ लिये गये और तुरन्त आज्ञा हुई कि पास के थाने में वे दोनों पहुँचा दिये जायँ। वे दोनों बहुत से किसानों तथा सिपाहियों के साथ भेजे गये। मार्ग चलते एक ग्राम में जा पहुँचे जहाँ पर कि उत्सव मनाया जा रहा था।

"कैदी" "अच्छा आने दो" ऐसा कहकर वे सब ग्राम ही में टिका दिये गये। गांव भर में उनका जलूस निकाला गया। गांव के सब लोगों ने उनकी खातिर की। चौकीदार जोकि कैदियों के साथ थे, शराब में मग्न होगये। उन्होंने स्वयं मदिरा पान किया और कैदियों से भी पीने का अनुरोध

किया। सरग्रेई ने सफाई के साथ प्याला पिछाड़ी फेंक दिया। चौकीदार भी यह ख्याल करके कि अफ़सर सवेरे चलेंगे, मदिरा-पान करके वहीं रात्रि बिताने को तैयार हो गये। वे तो मदिरा-पान कर उन्मत्त होरहे थे। इधर सरग्रेई किसानों को अच्छी शिक्षाएं देने लगे। यह सुनकर किसान मन ही मन दुखी होने लगे कि कैसे निर्दोष आदमी गिरफ़्तार कर लिये गये हैं। थोडी देर बाद जब वे सब सोने को जाने लगे, तो एक नौजवान किसान सरग्रेई से चुपचाप कह गया कि "किवाड़ बन्द न किये जावेंगे।" सरग्रेई व उसका मित्र उस संकेत को समझ गया। अवसर पाकर वे दोनों निकल भागे और सवेरा होते होते रेलगाडी द्वारा मास्को आ पहुँचे। इस प्रकार ये दोनों प्रातःकाल मास्को पधारे थे। सरग्रेई यहां ही टिक गया। कुछ वर्षों बाद, जब कि सेन्ट पीटर्सबर्ग के सब काम करनेवाले पकड लिये गये, तब सरग्रेई व एक और मित्र की अध्यक्षता में मास्को का ही मंडल आन्दोलन का केन्द्र हो गया। पर, जिस समय सरग्रेई मास्को भाग कर आये थे उस समय देश भर में आन्दोलन छा रहा था। धनी घर के नवयुवक ग्रामों में दुकानें खोले बैठे थे, ताकि वे श्रमजीवियों से सदैव मिल-जुल सकें। बहुत सी कन्यायें व विद्यार्थी जो ज़्यूरिच से पढ पढ़ कर लौटे थे, अब फेक्टरियों में काम करने लगे। वे रात-दिन परिश्रम करते और साथ ही साथ श्रमजीवियों को उपदेश भी देते थे। नये नये छापेखाने चुपचाप खोल दिये गये थे। सहस्रों की संख्या में पर्चे बांटे जा रहे थे। बहुत से सरकारी नौकर चाकर हमसे सहानुभूति करने लगे। इञ्जीनियर्स हमारे सिद्धान्तों को बडे प्रेम से देख रहे थे। इञ्जीनियरों और

विद्यार्थियों में कुछ मतभेद था। मैं, केलनिट्ज व सरघेई उनमें बहुधा लेक्चर दिया करते थे। हम सब की सहानुभूति विशेषकर जुलाहों और रुई के काम करने वालों के साथ थी। उनमें से बहुत से ऐसे थे, जोकि शरद ऋतु मे सेन्ट पीटर्सवर्ग में काम करते, पर गर्मी आते ही खेती-बाडा के वास्ते ग्रामों मे लौट आते। आधे ग्रामीण तथा आधे शहरी होने से वे साम्यवाद को खूब समझते थे।

आन्दोलन भीषण अग्नि की तरह फैल रहा था। हमारे खास खास स्थान थे जहाँ पर कि सभाएं हुआ करती थीं। हम लोगों को कार्य्य करते समय किसानों का सा भेष बनाना पडता। उनके विचारों ही में उन्हें समझाना होता। भेष बदल बदल कर हम सब प्रायः ग्रामों ही में रहा करते थे। पैरों में देहाती जूता, तथा मुह में मक्खन मले हुए ग्रामों में घूम घूम कर जार के कुशासन का वृत्तान्त तथा किसानों के रोग का उपाय उन्हें बतलाना ही हमारा लक्ष्य था। किसानों के झुंड के झुंड इकट्ठे हो होकर बराबर यही प्रश्न करते थे कि हम क्या करें? उन सब के लिए बस एक ही उत्तर था कि 'आन्दोलन और सघटन।" कारण कि ये ही दो बातें अभिमत पदार्थ पाने के लिए अमोघ औषधि हैं। एक समय एक गुफा में जुलाहों के सघटन की बात थी। मैं भी वहाँ पर उपस्थित था। वहां पर सब ने मिलकर मेरा नाम बोरोडन रक्खा, ताकि चालाक शासक ताड न जावें। मैंने उन जुलाहों व श्रमजीवियों को, आन्दोलन में प्रविष्ट होने से जो क्लेश सहने पड़ेंगे, सभी से भलीभाति परिचित कर दिया। कारण कि क्लेशों को घटा कर कहना मेरी इच्छा के विरुद्ध था। मैं उनको साइबेरिया तक

भेजे जाने की बातें सुना देता। साथ ही साथ मैं उनसे यह भी कह देता कि "मनुष्य हो तो काम करो। साईबेरिया में क्या आदमी नहीं रहते? भाइयो! राक्षस इतना भयंकर नहीं है, जितना कि वह रंगा हुआ दिखलाई पडता है।"

उस समय एक स्वर से उन्हों ने यही कहा कि "जिसे भेड़िया का डर है, वह वन में ही क्यों जावेगा।" इस प्रकार जब उन में से बहुत से पकड़े गये, तो प्रायः सभी मनुष्यों ने वीरता से क्लेशों का सामना किया। लगभग सभी मनुष्यों ने विश्वास से काम किया। उन्होंने हम लोगों को पनाह दी और किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया। पर सब स्थान पर सब तरह के जीव होते हैं, जैसा कि आगे विदित होगा।

मेरी गिरफ्तारी

इन दो वर्षों में, जिनका अब हम वर्णन करेंगे, सेन्ट पीटर्सबर्ग व अन्य अन्य प्रान्तों में बहुत पकड़-धकड़ हुई। ऐसा कोई मास न व्यतीत होता था, जिसमे कि हमारे कार्य्यकर्त्ता जेल में न ठूंस दिये जाते हों। सन् १८७३ ई० के अन्तिम महीनों में तो गिरफ्तारियों की धूम मच गई। हमारे मुख्य मुख्य स्थानों पर पुलिस के धावे होने लगे। पुलिस बड़ी चौकन्नी हो रही थी। किसी विद्यार्थी और श्रमजीवी का आपस में बातें करना भी पाप था। तुरन्त ही गुप्तचर पीछे लग जाते। डिमत्री, सरघेई तथा मैं, भेष बदले हुए पुलिस से रक्षित स्थानों तक के समाचार लाते। डिमत्री और सरघेई तो शान्ति के साथ एक स्थान पर बैठ ही न सकते थे। इनकी

खोज में तो पुलिस रात दिन घूमा करती थी। उस समय डिमत्री केलनिट्ज का यह हाल हो रहा था कि वे रात्रि मे घर घर विश्राम को मारे मारे फिरते। जहा वे जाते वहा पुलिस का अड्डा जमा हुआ पाते। अस्तु, जैसे तसे कही छिप छिपा कर ही रात्रि व्यतीत कर पाते। सन् १८७४ ई० मे जुलाहों पर दमन हुआ। हमारा विशेष क्षेत्र वर्बाद किया जाने लगा। हमारे चुने हुए कार्य्यकर्ता थड सेक्सन के शिकार हो हो कर कैदी बनाये जाने लगे। दिन-प्रति-दिन हमारी सख्या कम होने लगी। मडल की मीटिंग करना दुर्लभ हो गया। यह देख कर हम सब नवयुवकों की एक टोली तैयार करने लगे जिसमे कि हमारे सब के गिरफ्तार हो जाने पर भी मंडल का काम पूर्ववत् चलता रहे। उस समय चैकोवस्की दक्षिण मे थे। हम बहुधा डिमत्री और सरघेई को नगर छोड चैकोवस्की के पास चले जाने को कहते थे, पर वे अनसुना कर जाते थे, यहा तक कि एक दिन वे दोनों तीव्र अनुरोध के साथ हटा ही दिये गये। हम भी अब अपने भूगोल के कार्य्य को शीघ्र कर देना चाहते थे, क्योंकि मुझ पर भी सन्देह होने लगा था। दो महीनों की शान्ति के पश्चात् फिर पता लगा कि इञ्जीनियरों का दल पकड लिया गया है। उनके साथ ही एक निजोविकन नामक युवक भी था, जिसका विश्वास इञ्जीनियरों को था। पर मुझे उसकी वृत्ति मालूम थी। हमें भय था कि कहीं वह छुटकारे के लिए हमारे मडल का रहस्य न खोल दे। डिमत्री और सरघेई के अतिरिक्त वह मडल के अधिक सरडच काफ तथा मुझे भी अच्छी प्रकार से जानता था। इसके थोडे ही दिनों बाद फिर पता चला कि दो अत्यन्त अविश्वसनीय जुलाहे

गिरफ्तार कर लिये गये हैं। ये दोनों हमको वोरोडन नाम से भी जानते थे। हम सब को सन्देह हो गया। भविष्य में सन्देह पूरा ही हुआ। एक ही सप्ताह के अन्दर सगडच्रकाफ तथा मुझे छोड कर प्राय सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। अब इसके अतिरिक्त कि हम यहा से भाग जावें और दूसरा उपाय न था। पर हमारा काम डिमत्री के चले जाने से यहा पर विस्तृत रूप मे पडा हुआ था। चारों ओर से शाखाओं प्रशाखाओ की चिट्ठी-पत्री आरही थीं। सहस्रों विज्ञापन भरे पडे थे।

अतएव हम ऐसे दो मनुष्यों की खोज में थे, जो हमारा सब काम मेरा अनुपस्थिति में यथावत् सँभाल सकें। दो उत्साही युवकों को पाकर उनके सुपुर्द सब काम कर हम स्वयं छिप कर रहने लगे। मेरे अन्य मित्र भागे जारहे थे, कुछ भागने की चेष्टा से थे, पर यह दशा मेरी न थी। मेरी रिपोर्ट अभी अभी समाप्त हुई थी और मुझे उसे भूगोल समिति में सुनानी थी। नियत तिथि को अभी एक सप्ताह बाकी था। मेरे गृह पर चोकसी रहती थी। मै इन सब बातों को खूब जानता था, पर जानते हुए भी अवहेलना करता रहता, मानो कि ये कुछ जानते ही नहीं। सरकारी चर भाँति भाँति के नाम ले लेकर पुकारा करते, उन्हीं पुकारों में कभी कभी वोरोडन नाम भी आ जाता। पर, मैं सबको सुनी-अनसुनी करता रहता। अन्त में वह तिथि आगई। मैं भूगोल समिति की मीटिंग में जा पहुँचा। उसी मीटिंग में मुझे प्राकृतिक विभाग का सभापति बनाने का प्रस्ताव भी पास हुआ। पर, सभापति कौन होता है? यहाँ तो जेल की तैयारियां होरही थी। यह

अस्वीकार कर मैं तुरन्त घर लौट आया। सौभाग्यवश उस दिन वहां पुलिस न थी। अनावश्यक एवं सन्देह-जनक कागजों को नष्ट करके मैं अब निकल भागने की तैयारियों में लग गया। सामने से जाना अनुचित समझ, मैं पीछे की खिड़की से भाग जाने का प्रयत्न करने लगा। मेरे विश्वासपात्र सेवकों ने पहले ही से एक गाड़ी लाकर खड़ी कर दी थी। बस, उसी में बैठकर मैं सेन्ट पीटर्सबर्ग से भाग निकला। उस समय वहां कोई पुलिस वाला दृष्टि न पड़ा, अतएव मैंने सोचा कि प्रातःकाल होते होते मैं दूर निकल जाऊंगा। इस प्रकार मैं बहुत दूर जा भी न पाया था कि पीछे से आती हुआ एक गाड़ी का शब्द कानों में पड़ा। थोड़ी देर में वह गाड़ी हम से आगे निकल गई। पर मुझे विस्मय था, क्योंकि मैंने उस गाड़ी में दो जुलाहों को कुछ मनुष्यों के साथ जाते देखा था। एक जुलाहे ने अपना हाथ हिलाया मानो कि वह कुछ कहना चाहता है। मैंने अपने गाड़ीवान से रुकने को कहा, क्योंकि मैंने सोचा कि यह कोई जुलाहा शायद छूटकर भागा जा रहा है, और इसे मुझ से कोई आवश्यकीय बात कहनी है। परन्तु, मेरी गाड़ी ठहरते ही दूसरा आदमी जो कि जुलाहों के साथ खुफिया का था, एकदम चिल्ला उठा "मिस्टर बोरोडिन! प्रिन्स क्रोपाटकिन! मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ।" उसकी सीटी पाते ही धड़ाम से पुलिस वहां आ पहुंची। वह तुरन्त अब मेरी गाड़ी में आ कूदा और मुझे वारंट दिखाकर कहने लगा—"मुझे यह आज्ञा है कि मैं आपको जवाबदेही के लिए गवर्नर जेनरल के सामने उपस्थित करूं।" झगड़ा करना व्यर्थ समझ, मैंने गाड़ी वाले से गवर्नर के मकान पर चलने को कहा।

वह जुलाहा भी पीछे गाड़ी में बैठा चला आता था। इस घटना से मुझे यह विदित हो गया कि पुलिस ८-१० दिन से मुझे पकड़ना चाहती थी। पर संकुचित होरही थी, क्योंकि उसको यह विश्वास न होता था कि बोरोडिन और मैं एकही मनुष्य हूँ। पर इस समय जुलाहों के पुकारने पर मेरे गाड़ी रोक लेने से उनका सन्देह दूर हो गया; और वे समझ गये कि बोरोडिन नामधारी मैं ही प्रिन्स क्रोपाटकिन हूँ। इसी बीच में एक बात और होगई, जब कि मैं मकान से भागने ही वाला था एक नौजवान ने डिमत्री और एक अन्य मित्र की चिट्ठी लाकर मुझे दी। चिट्ठी, जिसमें कि रहस्य की बातें थीं, मैंने पढ़ कर फाड़ डाली पर डिमत्री का पत्र मेरी जेब ही में पड़ा था, क्योंकि उस पत्र में केवल राजीखुशी ही के समाचार थे। जब मैं पकड़ गया तो मैंने उस चिट्ठी को फाड़ डालना ही उचित समझा। इस विचार से मैंने खुफिया के आदमी को बातों में लगा वह चिट्ठी गाड़ी के बाहर फेंकदी। पर ज्योंहीं मैं गवर्नर के मकान पर पहुँचा, उस जुलाहे ने वही पत्र खुफिया को दे दिया और कहने लगा—"यह चिट्ठी बोरोडिन ने चुपचाप फेंकदी थी, मैं पीछे था, अतएव मैंने देख लिया और इसी वास्ते मैं इसे उठाता लाया।"

अब न्याय के प्रतिनिधि की बाट जोहने का समय आगया, अर्थात् यों कहिये कि कष्ट और परीक्षा का समय आगया। मेरे सब कागजों की जांच-पड़ताल की गई। सवेरे के तीन बज गये, पर मेरे विरुद्ध कोई भी कागज़ नहीं मिला। मेरे घर की अच्छी तरह से खोज-बीन की गई। इस बीच में मैं दुबारा अपने घर तलाशी के वास्ते लाया गया। खोज-बीन समाप्त

होने पर मैं अपने घर से थर्ड सेक्सन को वापिस लाया गया, जोकि उस समय रूस में सर्वोपरि हो रही थी। यह "थर्ड सेक्सन" निकोलस प्रथम के समय से अबतक रूस में जो चाहती थी सो करती थी। इसको कोई रोकने वाला न था। इसके मेम्बर रूस के छोटे बड़े अफसरों तक पर अपना दबदबा रखते थे। इसके सदस्य जार के कानों में विष उगल कर उसको काठ की पुतली बनाये हुए थे। एलेक्जेन्डर के समय में तो यह थर्ड सेक्सन सब-शक्तिमान होगई थी। न्याय अन्याय का कुछ भी विचार न कर इसके कर्मचारी चाहे किसी को पकड़ सकते थे। उसको जब तक जी में आया, जेल में सड़ाया, फिर छोड़ दिया, या कालेपानी भी भेज दिया। सेक्सन के कर्मचारियों की आज्ञाओं पर मंत्रियों के हस्ताक्षर होने आवश्यक थे, क्योंकि मंत्रियों का उन पर कोई प्रभाव न था और न उनको उनकी राक्षसी करतूतों का पता ही चलता था।

प्रातःकाल ठीक ४ बजे से मेरी परीक्षा का होना प्रारम्भ हुआ। मुझ से बड़ी शान्ति से कहा गया—'तुम अपराधी हो। इस कारण कि तुम एक ऐसी संस्था से सम्बन्ध रखते हो जिसका उद्देश कानून से स्थापित वर्तमान सरकार को नष्ट कर देना है, और सम्राट् जार के प्रति षड्यन्त्र रचना है। क्या तुम इस अपराध के दोषी हो ?'' मैंने कहा, "जब तक मैं अदालत के सामने पेश न किया जाऊंगा, तब तक मैं किसी भी प्रकार का उत्तर न दूंगा, क्योंकि वहीं पर मैं सर्व साधारण के सामने बोल सकूंगा।" पुलिस के एक अफसर ने लेखक से कहा, "अच्छा, लिखो कि वह अपने को अपराधी

नहीं मानता।" तो भी, थोड़ी देर ठहर वह बोला—"मैं फिर पूछूंगा कि क्या आप निकोलस चैकोवस्की को जानते हैं?"

मैं—यदि आप प्रश्नों के करने का हठ ही करते हैं, तो प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में "नहीं" लिखते जाइए। मुझे तो जो कहना था, कह चुका।

अफसर—पर यदि हम आपसे यह पूछें कि आप मि० पोलकाफ को जानते हैं, जिनसे कि आपकी अभी अभी भेंट हुई थी, तो मेरी समझ में कुछ अनुचित न होगा।

मैं—ज्योंही आप मुझ से प्रश्न करते हैं, त्योंहीं मेरी तरफ से "नहीं" शब्द लिखने में भी संकोच न करिये। यदि आप मुझ से मेरे पिता, भाई, बहिन आदि किसी के बारे में पूछेंगे, तो केवल वही उत्तर मिलेगा। आप मुझ से कोई भी उत्तर किसी भी प्रकार न पावेंगे। क्योंकि यदि मैं "हां" कहूँगा, तो आप उसके भी प्रति कुत्सित भावनाओं से काम लेने लगेंगे, उसके घर की तलाशी ली जाने लगेगी तथा वह सताया जाने लगेगा।

इसके बाद मुझ से बड़ी लम्बी-चौड़ी प्रश्नावली पूछी गई, पर मैंने सब के उत्तर में एक शब्द "नहीं" ही कहा। इस काम में लगभग १ घंटे के लग गया। इन प्रश्नों से पता चल गया कि मेरे कितने भाई वीरता से जेलों में पड़े हैं। केवल ये ही दो जुलाहे भीरु निकले।

थोड़ी देर में एक अफसर मुझे जेल की कोठरी में लेगया। वहां बन्द करते समय वह बोला—"प्रिन्स! प्रत्येक प्रश्न का "नहीं" उत्तर देकर आपने अपने लिए एक भयंकर शस्त्र की रचना करली है।"

मैं—क्या यह मेरे अधिकार में नहीं है ?

अफसर—हाँ मैं समझ गया, परन्तु तुम भी समझते हो। खैर, पर आप इस कमरे में विश्राम कीजिये। आपके पकड़े जाने के समय से यह कमरा गर्म रक्खा गया है।

मैं उत्तर न देकर पड़ रहा और सो गया।

दूसरे दिन सवेरे जमादार ने मुझे जगाया और चाय दी। उसके जाते ही तुरन्त एक मनुष्य भीतर आया और मुझे कागज पेन्सिल देकर कहने लगा—'जल्दी से जो लिखना हो, लिखदो।"

मैं इस आदमी को खूब पहचानता था। यह विश्वासपात्र सुहृद बहुधा थर्ड सेक्सन के कैदियों के पास हमारे पत्रों को पहुँचा देता था और उनके उत्तर ले आया करता था। मैं अपने कमरे में अब चारों ओर से "थप" "थप" की आवाजें सुनने लगा। ये कैदी थे, जो थपकी मार मार कर आपस में बातें करते थे। इस समय मुझे केवल एक चिन्ता हो रही थी, वह यह थी कि जब मेरे घर में मेरे कागजों की जाँच-पड़ताल हो रही थी, तब हमारे कागजों में पोलकाण्ड का नाम देख कर अफसर ने जमादार से कहा था कि इस कागज को रक्खो। इसकी भी जांच करनी होगी। यह बेचारा एक होनहार नवयुवक था। इसका ज्ञान, विज्ञान तथा कृत-विद्या में खूब बढ़ा-चढ़ा था। यह मंगोलिया की सीमा से हमारे साथ सेन्ट पीटर्सबर्ग पढ़ने चला आया था। इसी वर्ष इसकी पूर्ण परीक्षा होने वाली थी। थोड़े दिन बाद मुझे मालूम हुआ कि उसकी भी जाँच-पड़ताल की गई, किन्तु, परीक्षा के कारण तीन दिन का समय उसे दे दिया गया है। उसकी जांच में, मुझे पता चला कि मेरे हाथ का लिखा हुआ एक पत्र भी पकड़ा गया

है। इस लिफाफे को पाकर अफसर उसमें एक कृत्रिम चिट्ठी रख कर लाया, जिसमें लिखा था—"कृपया इस पत्र को वी० ई० के पास ले जाइये, और उनसे कह दीजिये कि यह पत्र सुरक्षित रक्खा जाय, जब तक कि पत्र उससे न मांगा जाय।"

अफसर इस पत्र को मुझे दिखला कर कहने लगा, "लो! पोलकाफ की बात तुम्हारे हाथ है। अगर आप मुझे यह बता देंगे कि यह (V E) वी० ई० कौन है, तो हम पोलकाफ को छोड़ देंगे।"

मैं दोनों चिट्ठियां व लिफाफे देख कर तुरन्त समझ गया कि ये चिट्ठी बनाई हुई है। अतः मैं तुरन्त उससे बोल उठा—"आपको यह न करना चाहिये। यह चिट्ठी और लिफाफ दो चीजें हैं। ये साथ साथ नहीं पाये गये हैं। यह आप हैं, जिन्होंने इस चिट्ठी को लिफाफे में रक्खा है।" मेरी बात सुन कर पुलिस अफसर के चेहरे का रंग बदल गया। मैं फिर उससे कहने लगा—"आप यह क्या कह रहे हैं? क्या आप इतना भी नहीं देख सकते कि ये दो चीजें भिन्न भिन्न पेन्सिलों की लिखी हुई हैं। अतः जनाब! मैं आप से कहता हूँ कि यह पत्र पोलकाफ का नहीं है।" वह कुछ झिझका, पर फिर चमक कर बोला—"पोलकाफ ने स्वयं स्वीकार किया है कि यह तुम्हारा पत्र उसके वास्ते लिखा गया है।"

बस, अब मुझे पूर्ण भरोसा होगया कि वह झूठ बोल रहा है। मैं पोलकाफ के विचारों को खूब जानता था। मुझे यह विश्वास था कि वह अपने लिए अपने सम्बन्ध की बातें चाहे स्वीकार करले, पर कालेपानी के दंड की भी चिन्ता न करके वह कभी भी दूसरे का रहस्य न खोलेगा।

मेरा हृदय अब निश्चिन्त होगया और मैं उसकी ओर देखकर आतंक पूर्वक बोला—"नहीं-महाशय! उसने कभी भी ऐसा न कहा होगा और आप भी हृदय में जानते हैं कि आप कितना असत्य भाषण कर रहे हैं?" वह आवेश में आगया, उसका वह ढोंग ही था, पर बड़े जांक-जमक से बोला—"अच्छा, आप क्षण भर ठहरिये। मैं अभी अभी उससे लिखाये लाता हूँ। वह दूसरे कमरे में कैद है।" मैंने कहा—"मैं आपकी वाट जोहूँगा। देखें आप कब तक आते हैं।" मैं सोफा पर बैठ गया और सिगरेट पीने लगा। पर वह लेखी बयान कभी नहीं आया। वास्तव में कोई ऐसी बात थी ही नहीं, वह लाता भी तो कहा से! मैं वहीं बैठा रहा। थोड़ी देर बाद मुकद्दमा चलाने वाला वही अफसर मेरे पास आकर कहने लगा—"आप को परीक्षा समाप्त होगई। अब आप दूसरी जगह भेजे जावेंगे।"

इसके बाद जब कभी भी वह मुझे दिखलाई पड़ता, तो मैं पोलकाफ का लेखी बयान मॉंग मॉंग कर उसकी खूब हँसी उड़ाता था।

चार पहियों की गाड़ी फाटक पर आ खड़ी हुई। उस पर बैठने की मुझे आज्ञा दीगई। मेरे पास एक अफसर और आ बैठा। मार्ग में मैंने उससे कई प्रश्न किये, पर वह मूक ही रहा। थोड़ी दूर और चलने पर मुझे स्वयं विदित होगया कि मैं पीटर और पाल के दुर्ग की ओर जा रहा हूँ। थोड़ी देर में मेरी गाड़ी फाटक पर जा खड़ी हुई। मैं यहां पर उतारा गया। जेल-अध्यक्ष भी वहां आ पहुँचे। वे हम को लेकर एक दूसरे फाटक पर पहुँचे, जहा पर कि बहुत से सिपा-

हियों का पहरा था। वह फाटक बडी देर में खुला। वहा से चलकर हम एक छोटी सी गली में होते हुए तीसरे फाटक पर जा पहुँचे, जहाँ से आगे चलकर एक अँधेरी गली थी। उसको पार करके हमको एक छोटी सी कोठरी में प्रविष्ट होना पडा, जहां पर कि तिमिर और नमी का निरंकुश साम्राज्य था।

यहाँ पर मुझे अपने वस्त्रों को उतार कर कैदियों के वस्त्रों को पहिनने की आज्ञा मिली। एक हरी फलालेन की गाउन, बड़े बडे ऊनी बेढगे मोजे तथा बडे बडे लम्बे जूते, जिनको कि पैरों में पहिनना भी मुश्किल था, मुझे दिये गये। मैं गाउन पहनने के सख़्त विरुद्ध था, तथा जूते वग़ैरह बड़े ही घृणास्पद थे। अन्त में मुझ से कहा गया कि मैं नीचे की अपनी रेशमी बनियाइन भी उतार डालूं, जो कि उस नमी से बचाने के लिए एकमात्र साधन मेरे पास बची थी। इस पर मैं बिगड गया और जोर ज़ोर से चिल्लाने लगा। एक घण्टे बाद अन्त में जेनरल कोरसकाफ ने मुझे बनियाइन पहिने रहने की आज्ञा देदी। यहाँ से फिर हटाकर मैं एक और गुफा में लाया गया, जिस पर कि सतरियों का पहरा था। इसी गुफा में मैं बन्द कर दिया गया और ताला लगा दिया गया। बस, इस प्रकार मैं उस अँधेरी खोह में दफ़ना दिया गया।

पीटर का दुर्ग

रूस के बाँके देशप्रेमियों का दुःखागार तथा रूस की सच्ची शक्ति का विनाश करने वाला और नवयुवकों की स्वतंत्रता अपहरण करने वाला यही दुर्ग है,

जिसका नाम तक रूस मे दबी जबान से लिया जाता है। स्वेच्छाचारियों का रहस्यागार, यह वही दुर्ग है जहा कि पीटर प्रथम ने अपने पुत्र एलेक्सिस को स्वय अपने हाथों से मार डाला था। यह वही दुर्ग है, जहा कि रानी तारकेनोवा एक गुफा में बन्द करदी गई थी, जिसमे कि नदी मे बाढ़ आजाने के कारण पानी भर गया था। शोक! उस समय चूहे तक रानी के शरीर पर चढ़ चढ़ कर प्राण-रक्षा करते थे, और वह अबला असह्य वेदनाओं से बिलखती थी। इसी दुर्ग में कैथेराइन द्वितीय ने सहस्रों मनुष्यो की हत्या करवा डाली थी।

पीटर प्रथम के समय से आज १७० वर्ष पर्य्यन्त यह नेवा नदी के तट पर स्थित दुर्ग अपने विषम और पाशविक अत्याचारों के लिए विख्यात रहा है। यहाँ पर सैकडों नहीं, हजारों निर्दोष व्यक्ति काल के गाल मे पहुँचा दिये गये। बहुत से बेचारे तो इस दुर्ग के अन्धकारमय स्थानों मे बन्द रहने के कारण पागल हो गये थे। उनकी कोई सुनने वाला ही न था। वास्तव में इस दुर्ग का इतिहास भयकर है। मैं फिर कहूँगा कि यह वही दुर्ग है, जहाँ पर कि रूस में सब से प्रथम प्रजातंत्र की ध्वजा फहराने वाले, दासत्व को समूल नष्ट करने के विचार रखने वाले देशप्रेमी दिसेम्बरिसटस ने अपने प्राण देश सेवा की वेदी पर समर्पित किये थे। इसी दुर्ग में बडे बडे धुरन्धर लेखक, कवि और प्रचारक यथा राइलाफ, डास्टोवस्की, बाकूनन तथा चरनी शेवस्की आदि कैद किये गये थे। यहीं पर वीर कराकोजाफ को प्राणदण्ड मिला था। क्रमशः मुझे यह भी मालूम हुआ कि यही पर बहुत से वयोवृद्ध श्वेत दाढ़ी वाले एलेक्जेण्डर द्वितीय के सदेह के आखेट बने हुए अपने जीवन के

शेष दिन पूरे कर रहे हैं; और जो पुनर्वार अब इस संसार में स्वच्छंदता पूर्वक न चल-फिर सकेंगे।

ऐसे ही विचार मेरी आंखों के सामने घूम रहे थे। परन्तु, मेरा ध्यान उस समय बारबार बाकूनन की ओर जाता था, जो कि कई साल तक आस्ट्रियन दुर्ग में दीवार से बँधा रहा, फिर ६ साल तक रूस में कैदी की भांति किले में बन्द रहा। पर जब वह पाषाण हृदय ज़ार की मृत्यु के बाद छूटा तो अधिक बलवान तथा पूर्ववत् उत्साह से परिपूर्ण हो रहा था। वह इतने कष्टों पर भी जीवित रहा। इसलिए मुझे भी इससे शिक्षा लेनी चाहिये, यह सोच मैंने भी निश्चय किया कि मैं भी सहसा कष्टों के सामने न झुक जाऊंगा और न व्याकुल हो उठूंगा। वहां पर पहले पहल मैंने खिड़की तक पहुँचने का प्रयत्न किया था, पर वह इतनी ऊंची थी कि मैं मुश्किल से अपनी अँगुलियों से उसे छू पाता था। वह दीवार के आसार में लगी हुई थी। लोहे के चौखटे में लोहे के सींखचे पडे हुए थे। कुछ पीछे हट कर देखने से उस खिड़की में होकर आसमान भी दिखाई पडता था। थोड़ी देर तक मैंने कमरे की जांच पडताल की, तो मालूम हुआ कि मैं दुर्ग के दक्षिण-पश्चिमी किनारे पर हूँ। कमरे में लोहे की एक चारपाई थी, पास ही एक मेज और एक स्टूल रक्खा था। दीवारों पर केनवास और उस पर पीला कागज मढ़ा हुआ था, ताकि शब्द उसमें गूंज न सके। किवाडों में एक सूराख़ कर लिया गया था, जिसमें होकर भोजन मिलते थे। उसी सूराख़ में होकर कैदी निरीक्षण भी करते थे। चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। कहीं से कोई शब्द न सुनाई पडता था। इस सन्नाटे से अधीर होकर मैं गाने लगा। गाते

गाते में जोर से गाने लगा। उसी समय सूराख में से किसी ने कहा "गाइये नहीं" मैंने कहा-"नहीं ! मैं अवश्य गाऊंगा।" "नहीं ! आपको अब गाना न चाहिये।" 'पर मैं तो गाऊंगा" ऐसा कह कर मैं गाता ही रहा। अन्त में मेरा गाना सुन कर कैदियों के गवर्नर वहां आये और मुझे न गाने के लिए समझाने लगे। उन्होंने मुझे यह भी धमकी दी कि यदि मैं न मानूंगा तो जेल-कमान्डर के पास भेज दिया जाऊंगा। मैंने कहा—"परन्तु मेरा गला बैठ जावेगा, यदि मैं न गाऊंगा और न बोलूंगा, और यही नहीं, किन्तु मेरे फेफड़े भी बिगड़ जावेंगे।" गवर्नर ने यह सुन उत्तर दिया, "यदि आप गाते हैं तो अपने ही लिए गाइये न कि दूसरों के लिए।" परन्तु ये सब बातें निरर्थक हुईं। थोड़े ही दिनों में मुझे स्वयं गाने की इच्छा न रही। मैंने उसको सिद्धान्तानुसार निभाना भी चाहा, पर असफल हुआ।

बस, मुझे अब अपनी स्वास्थ्य-रक्षा का विशेष ध्यान था। मैंने सोचा कि मुझे अपना स्वास्थ्य बनाये रखना चाहिये, क्योंकि बीमार पड़ कर यहां जीवन बिताना बड़ा कठिन है। मुझे व्यायाम करने का तो पहले ही से शौक था, अतः मैं यहां पर भी व्यायाम करने लगा। घण्टों मैं कोठरी में चक्कर लगाता। हिसाब लगा कर मैं नित्य ५ मील कोठरी में चल-फिर लेता। दो मील सवेरे, दो मील भोजन के बाद और एक मील सोने के समय। यह घूमने का क्रम था। हाथों के व्यायाम के लिए मैं स्टूल से जिमनास्टिक करता। धीरे धीरे मैं उसकी एक टांग पकड़ कर उसे उठाकर अपना हाथ सीधा तान देता था। फिर उसे मुगदर की तरह यहां तक घुमाता

कि मैं खूब थक जाता। मुझे पुस्तकें तो मिलीं, पर दवात-क़लम मिलने की आज्ञा न थी। ये चीज़ें सम्राट की आज्ञा विना किसी को न मिल सकती थीं। मैं वैठे वैठे कविता किया करता, उपन्यास बनाया करता, पर दवात-कलम न होने के कारण जीवन भार स्वरूप था, तथा कविता इत्यादि की रचना निष्प्रयोजन थी। परन्तु, मेरा वडा भाई वाहर चुप न था, उसके परिश्रम से मुझे यह सुविधा होगई।

जव मैं पकडा गया तव मेरा भाई एलेक्ज़ेन्डर ज़्यूरिच में था। शैशव काल ही से उसे भ्रमण करने का चाव था। वह इस समय वाहर घूम रहा था, क्योंकि वह जानता था कि वाहर जाकर कम से कम उसे स्वच्छन्दता से सोचने, विचारने और उसके अनुसार काम करने का तो निर्विघ्न अवसर प्राप्त है। रूस का जीवन उसे घृणित लगता था। वह एकदम निडर और साफ रहना चाहता था। उसने अपना विवाह भी साईवेरिया में कर लिया था। सेन्ट पीटर्सवर्ग आते ही उसके दो वालक मर गये, इससे मिस एलेक्ज़ेन्डर को वहां रहना और भी बुरा लगता था। इन सव कारणों से मेरे भाई स्विट्ज़रलैंड ही चले गये थे। उनको हमारे आन्दोलन में विश्वास न था। इसका कारण केवल यह था कि वे आन्दोलन का स्वरूप उसकी मीटिंग तथा व्याख्यानों ही से अनुमान करते थे। वे उसके भीतरी कार्यकर्त्ताओं के क्षण क्षण मर मिटने वाले कार्य्य को न देखते थे, तथा उनको जनता में विश्वास न था कि वह साथ देगी। अत वे यदि फ्रांस में सन् १८४८ के विप्लव के समय में वहां पर उपस्थित होते तो अवश्य ही अन्त तक विपत्तियों से लडते, पर यदि युद्ध की तैयारी के

ने इस सुअवसर को पाकर समस्त वैज्ञानिक-संसार को आवेदन पत्र के समर्थनार्थ उलट-पुलट डाला। भूगोल-समिति भी उत्सुक थी, अतएव काम बन गया। दो महीने बाद गवर्नर आया और कहने लगा कि सम्राट ज़ार की आज्ञा है कि आप अपनी शेष रिपोर्ट तैयार करें। यह दवात-कलम आपको दी जाती है पर आप सन्ध्या तक ही अपना काम कर सकेंगे। शीत ऋतु में रूस मे सन्ध्या ३ बजे ही होजाती है, पर इसका कोई उपाय न था। "सूर्यास्त तक" यही ज़ार की आज्ञा थी।

अतः अब मैं काम करने लगा। इससे मुझे जितना आराम मिला उसे मैं शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता। जेल में यह विशेष आज्ञा केवल मुझे ही प्राप्त थी। स्लेटें तो बहुतों को मिल गई थीं और वे उसी में सन्तोष कर रहे थे। पर यह रिआयत मेरे ही साथ थी।

प्रातःकाल व्यायाम समाप्त करके ही मैं लिखने को बैठ जाता। मुझे यहां पूर्ण अवकाश था। मैंने रिपोर्ट ही नहीं तैयार की, किन्तु किन किन आधारों पर ये सब बातें अवलम्बित हैं, वे भी साथ ही साथ लिख डालीं। मै अपनी पुस्तक को बढ़ा बढ़ा कर लिख रहा था। भूगोल-समिति की ओर से मेरे पास विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें बहुत इकट्ठी हो रही थीं। मेरी रिपोर्ट का पहला भाग तो छप गया, पर दूसरा भाग थर्ड सेक्सन के पास ही अधूरा रह गया, क्योंकि मैं अवसर पाकर वहां से भाग गया था। मेरी वह हस्तलिपि लौट कर भूगोल-समिति द्वारा सन् १८९५ ई० में मिली, जबकि मैं लंदन में था।

सन्ध्या होते चिराग़ ज्योंही मेरे पास आता, त्योंही मेरी दवात, क़लम, पेन्सिल आदि लिखने का सब सामान छीन

लिया जाता। उस समय मैं इतिहास पढ़ा करता, क्योंकि मेरे पास पुस्तकों के ढेर जमा थे। मेरे कुटुम्बी सुहृद मुझे बहुधा पुस्तकें भेजा करते थे। चार्लस डिकन्स के उपन्यास पढते पढते में प्रफुल्लित हो हो कर खिलखिला कर हँसने लगता, तथा उनके सुन्दर भावों की विचित्रता पर मुग्ध हो उनकी प्रशंसा कभी कभी उच्च स्वर में भी करने लगता था।

भाई की गिरफ्तारी।

कारागार में सब से अधिक क्लेश निस्तब्धता अर्थात् सन्नाटे का था, जिसका अटल राज्य चारों ओर विराजमान था। मैंने महीनों दीवारें खटखटाई कि कहीं से कोई उत्तर मिले, पर कोई उत्तर न मिला। एक महीना, दो महीना, दस इसी प्रकार से पन्द्रह महीने व्यतीत हो गये, पर मेरे खट-खटाने का कोई उत्तर न मिला। उस समय हम ६ कैदी अलग अलग ६ कोठरियों में बन्द थे। प्रातःकाल जब एक जेल-कर्मचारी मुझे वायु-सेवन के लिए बाहर निकालता, तब उस समय भी मेरे साथ में सतर्क रहते। मैं बातें करना चाहता था, पर वे कोई न बोलते थे।

मैं केवल इस आध घंटे को ही अपना सौभाग्य समझता था। मैं आखें फाड फाड कर ऊँचे गुम्बजों तथा आसमान को देखा करता। इसी समय में हम नित्य एक १७–१८ वर्षीया कन्या को देखा करते, जो नित्य ऊपर से उतर कर अपने दूसरे कमरे में जाती थी। उसका मुख हमेशा नीचे ही रहता था।

कदाचित् वह एक जेलर की लड़की होने से लज्जित रहती हो।

उसका भाई भी उसी समय दिखाई पड़ता था। पर, वह बड़ा निडर मालूम होता था और बराबर मुझे देखा करता था। अन्त में पता चला कि वह क्रान्तिकारी दल में मिल जाने के कारण साईबेरिया भेज दिया गया।

शीत ऋतु में यह कालकोठरी सचमुच कालकोठरी ही हो जाती थी। अन्धकार से अधिक नमी का जोर था। बाज वक्त इतनी नमी हो जाती थी कि दीवारें टपकने लगती थीं। मेरा जी घुटघुटाने लगता था। अन्त में इसका फल यह हुआ कि मैं गठिया रोग से ग्रसित हो गया। पर तो भी मैं हृदय को प्रसन्न किये, काम किये जाता था और व्यायाम भी थोड़ा बहुत कर ही लेता था। समय व्यतीत होता रहा। परन्तु अब दुःख के समाचार मुझे मिले, जिससे मैं अस्तव्यस्त हो गया। ये समाचार मेरे भाई एलेक्ज़ेंडर की गिरफ्तारी के थे।

सन् १८७४ ई० के दिसम्बर मास में मेरे भाई तथा हेलीना बहिन से मेरी भेंट हुई थी। यह बात साधारण थी कि वह मेरा भाई होने के कारण मेरी दुरवस्था देख कर आवेश में आवे। मैं इसी बात से डरता था। दिसम्बर में जब उसने मेरी कोठरी का वृत्तान्त जाना, तथा मुझे गठिया से पीड़ित पाया, तो वह बहुत दु:खी हो अश्रुपात करता हुआ मुझसे विदा हुआ था। मुझे खटका तो तभी से होगया। उस भेंट के बाद मैंने उनका एक पत्र भी पाया, पर उससे उनकी स्थिति बिगड़ी हुई प्रतीत होती थी। मेरे दिन चिन्ता में व्यतीत होने लगे। मैं सोचने लगा कि मेरा भाई अवश्य पकड़ा जावेगा। मुझे शोक

था कि मैं ही इसका कारण हुआ। यह विचार मेरे हृदय को जलाये डालते थे। मेरा जीवन मुझे निःसार दिखाई पड़ने लगा। मेरा व्यायाम करना, घूमना, तथा काम करना, सब छूट गया। सुबह से शाम तक मुझे एलेक्जेंडर की गिरफ्तारी पर सोचते जाता। मुझ अविवाहित के लिए कारागार केवल शारीरिक ही कष्ट देने वाला है, पर वह विवाहित था, साथ मे सन्तानें भी थीं। मुझे मालुम था कि मेरा भाई अपनी स्त्री से कितना प्रेम मानता है। साथ ही सन्तान होने से प्रेम और भी बढ़ा होगा। मैं इन बातों को सोचते सोचते व्याकुल हो उठता और घटों अधीर रहता। इस समय सब से अधिक चिन्ता यह थी कि मेरे पास उनके कोई समाचार निश्चित न थे।

भाई क्यों पकड़ा गया? क्या अपराध किया है? अब क्या हो रहा है? पकड़ा भी गया, या नहीं? इन्हीं विचारों में सप्ताह व्यतीत हो गये। चिन्ता खाये डालती थी, पर कोई समाचार न थे। कई दिनों बाद पता चला कि मेरा भाई पी० एल लेवराफ नामक एक देशहितैषी को चिट्ठी लिखने के अपराध में पकड़ा गया है। लेवराफ भाई के पुराने मित्र थे। रूस के सदुद्देशों को लिये हुए वे लंदन में फारवर्ड (Forward) नामक एक समाचार पत्र निकाल रहे थे। मेरा अन्तिम भेट के बाद मेरे भाई ने इन्हें एक पत्र में मेरी दुर्दशा का वृत्तान्त अच्छी तरह से लिखा था। यह पत्र रास्ते में थर्ड सेक्सन वालों ने उड़ा दिया। इंडे दिन की संध्या को मेरे भाई की जाच-पड़ताल अत्यन्त तीव्रता पूर्वक की गई। रात को एकाएक पुलिस के ६ सिपाही मय एक अफसर के घर में

घुस आये। सब चीजें तितर-बितर करदी गई। बीमार बच्चे को भी खाट से पृथ्वी पर लिटा दिया। उसके बिछौने तक की जाच हुई पर कुछ न मिला। वहाँ कुछ होता तो मिलता।

मेरा भाई इस व्यवहार से अत्यन्त क्रोधित हो, निर्भयता से पुलिस अफसर से कहने लगा—"महाशय! इन सिपाहियों से मै कुछ नहीं कहता, क्योंकि वे अशिक्षित हैं। पर मैं तुम से पूछता हूँ कि यह आप क्या कर रहे हैं? क्या आप को नहीं मालूम कि आप कैसा पाप कमा रहे है? आपने विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा पाई है! आप कानून जानते है, आप यह भी जानते हैं कि आप इस समय कानून का उल्लघन कर रहे हैं और इन अशिक्षितों को उभाड रहे हैं। आप से क्या कहें? आप एक खरे पापात्मा क्रूर शासक है।

वे पूर्ण घृणा प्रकट करते हुए चले गये, पर उनके हृदय अपकार करने पर तुले हुए थे। उन्होंने मेरे भाई को थर्ड सेक्सन में मई तक गिरफ्तार रक्खा। मेरे भाई का प्यारा बालक उस समय राजयक्ष्मा रोग से मर रहा था। एलेक्जेंडर, जिसने वैरियों से कभी प्रार्थना न की थी, पुत्र के प्रेम के कारण उनसे पुत्र-दर्शन के निमित्त प्रार्थना करने लगा। पर शत्रुओं का हृदय बदला लेने के लिए व्यग्र हो रहा था। वे दया से शून्य थे। उन्होंने भाई को नहीं छोड़ा। बालक मर गया।

उस बालक की माँ दुःख से पागल होगई, जब कि उसने यह और सुना कि उसका पति भी साईबेरिया के एक छोटे से ग्राम में भेजा जाने को है। वह शोक-संतप्ता दुःख से छटपटाने लगी। वह बेचारी अपने पति के साथ साईबेरिया जाने को तैयार थी, पर यह छोटी सी प्रार्थना भी उसकी

स्वीकार नहीं की गई। अतः वह अकेली ही वहाँ तक भाई के लिए गई। मेरे भाई के पूछने पर भी कोई अपराध नहीं बतलाया गया। भाई ने, मंत्रि-मंडल से अपील की, पर वही कोरा जवाब मिला—"हम प्रबन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहते।" दो वर्ष बाद मेरी बहिन ने ज़ार के पास एक अपील भेजी। मेरे चचेरे भाई ने, जो अङ्ग-रक्षक दल में थे, इसका समर्थन किया। पर, ज़ार पर विपक्षियों का रंग खूब जमा हुआ था और उसने वही प्रत्यक्ष उत्तर दे डाला कि उसको वहाँ कुछ काल और ठहरने दो। मेरा भाई साइबेरिया में १२ वर्ष रहा और फिर छूट कर भी रूस में कभी वापिस न आया।

जेल से छुटकारा

सन् १८७४ ई० के ग्रीष्म काल में तो पुलिस ने गिरफ्तारियों की धूम मचा दी। हमारे मंडल के प्रति तो पुलिस ने बड़ा ही विराट रूप धारण कर लिया था। इन बातों को देख रूसी नौजवानों के विचार एकदम पलट गये। अभी तक तो पुलिस नेताओं को ही पकड़ती थी, पर अब वह ऐसी व्यापक होगई कि श्रमजीवियों तक की फैक्टरियों में भेद लगा कर उन्हें गिरफ्तार करती और कालेपानी का दण्ड दे सदैव के लिए साइबेरिया को भिजवा देती। इन अन्यायों को देख कर सैकड़ों नौजवान अपने सुखों की चिन्ता न करके खुल्लमखुल्ला कार्यक्षेत्र में आ डटे। वे रात में विज्ञापन आदि बांटते रहते। अब वे गिरफ्तारियों के लिए तैयार थे और निर्भयता से देश के काम में जुटे हुए थे। अपने मंडल में पर

बावली ग्रीष्म ऋतु (Mad Summer) के नाम से विख्यात है। कर्मचारी गण परेशान थे। उनमें अब गिरफ्तारियों की तथा खोज-बीन करने की शक्ति ही न रही थी, तो भी १५०० आदमियों के लगभग और पकड़ ही लिये गये थे।

सन् १८७५ ई० की ग्रीष्म ऋतु में एक दिन जबकि मैं बैठा हुआ था, मुझे पास वाली कोठरी में से एक मधुर आवाज आती हुई सुनाई पड़ी। धीरे धीरे चारों तरफ से कुछ न कुछ आवाजें आने लगीं। मैं समझ गया कि मैं अब अकेला नहीं हूँ। दीवारों में थप्पी मार मार कर हम एक दूसरे से बातें करने लगे। थोड़े दिन बाद मुझे ज्ञात हुआ कि मेरा मित्र सरडच्ूकाफ मेरे पास ही की कोठरी में बन्द है। मैं रोज उससे घटों बातें करता। पास ही नीचे एक किसान क़ैद था। उस की दशा बड़ी शोचनीय थी। वह शारीरिक परिश्रम करने वाला बग़ैर कोई काम किये मृतक समान था। सहन-शक्ति न होने के कारण वह धीरे-धीरे व्याकुल होकर पागल सा हो गया। उससे हम जो बातें करते तो वह उसका उत्तर सटर-पटर देता। अस्तु, थोडे ही दिनों में वह पागल हो गया। यह जान कर मुझे बड़ा दु:ख हुआ। मनुष्य की इस प्रकार की दीनता बडी ही भयंकर थी। हम अपने सामने मनुष्यों के विवेक का संहार करते देख रहे थे। इस घटना का प्रभाव सरडच्ूकाफ पर भी अधिक पडा, जिसके कारण यह अत्यन्त व्याकुल हो गया। जब ४ वर्ष बाद वह छोड़ा गया, तो उसने अपने गोली मार ली।

एक दिन मैं बैठा हुआ विचारों में निमग्न था कि मेरी कोठरी में यकायक ग्रांड ड्यूक आ पधारे। ग्रांड ड्यूक महा-

शय निकोलस दुर्ग का निरीक्षण करते करते मेरी कोठरी मे आ पहुँचे थे। किवाड़ पीछे से फिर गये और हाल ही वे बोले—सलाम मि० क्रोपाटकिन ! (Good day kropatkin) वे मुझे भलीभाति पहचानते थे और उस पहचान को दर्शाते हुए वे नम्रता और सज्जनता से बोले—"क्रोपाटकिन ! यह कैसे सम्भव हुआ कि तुम राजकीय पार्श्व-अनुचर अर्थात् शाही पेजों मे होकर भी इस कार्य में जा फँसे, जिसके कारण तुम्हारी यह दुर्दशा है।" मेरा उस समय केवल यही उत्तर था—"प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी प्रथक सम्मति रखता है।" उन्होंने कहा—"सम्मति ! तो क्या तुम्हारी यही सम्मति है कि तुम क्रान्तिकारियों को बढाओ ?"

मैं उस समय क्या उत्तर दूं ? यदि "हां" तो सब बात बिगड़ी जाती थी, क्योंकि जिरह में मैंने कोई उत्तर न दिया था। अब जार के भाई के सामने स्वीकार कैसे करलू ! किन्तु यदि "नहीं" कहूं तो कैसे कहूं ! ऐसा करने से मैं जानता था कि मैं झूठ बोल रहा हूँ। इसी विचार मे खड़ा था कि मैं क्या जवाब दू !

मेरे मस्तिष्क से इस समय विचारों का प्रवाह फूट निकला था। मैं सोचने लगा कि क्या मैं इसे किसानों की दुर्दशा सुनाऊं ? पर, नहीं—यह मूर्खता होगी। इसके विचारों में परिवर्तन न होगा। ये देश के शत्रु हैं, इन बातों का प्रभाव इन पर कुछ न पड़ेगा। अस्तु, मैंने सोच-विचार कर उत्तर दिया कि महाराज! आप एक अफसर ही हैं। आप निजी आदमी कदापि न हो सकेंगे।

इसके बाद वह अन्य विषयों के सम्बन्ध मे प्रश्न करने लगा—"क्या आपने ये बातें साईबेरिया मे डिसेम्बरिस्ट्स से सीखी थीं ?" "मै एक ही दिसेम्बरिस्ट्स को जानता हूँ, जिस को कि हमने कभी नहीं देखा।" "तो क्या सेन्ट पीटर्सबर्ग में ये बातें सीखीं ?"

"जनाब! मै सदैव से ऐसा ही हूँ।" "क्या ? (डर से) तो तुम शाही पेज होने के समय मे भी ऐसे ही थे ?"

"कोर के समय मे मैं बालक था। जो बातें बालकपन मे अस्थिर रहती हैं, बडे होने पर स्थिर हो जाती हैं।" वह फिर इधर उधर की बातें करके वे ही सवाल करने लगा। मैं तत्काल उसका अभिप्राय समझ गया कि वह मुझे भुलावा देना चाहता है। अब वह मुझे निरर्थक प्रश्नों द्वारा तग करने लगा। मुझ से बार बार कहने लगा कि आपको किसानों तथा क्रान्तिकारियों से मिलने में क्या लाभ हुआ ? आप उनके भडकाने मे आगये। उसकी यह बातें सुन मै तीव्रता से बोल उठा—"यह बात तो हो चुकी, दुहराने से क्या लाभ ?" मेरा उत्तर पाते ही वह तुरन्त गुफा छोड़ कर बाहर चला गया। सिपाही गण विस्मय में थे कि ग्रान्ड ड्यूक ने मुझ से ही आधे

घटे क्यों बातचीत की ? मेरे सम्बन्ध में वे अब नाना प्रकार की बातें करने लगे।

इसी प्रकार धीरे धीरे दो वर्ष व्यतीत हो गये। मेरे बहुत से साथी मर गये, बहुत से पागल हो गये, पर अदालत में मेरे अभियोग की अभी तक पारी ही नहीं आई।

दूसरे साल के अन्त में मेरा स्वास्थ्य जवाब दे गया। स्टूल मुझे अब भारी लगने लगा। पांच मील का घूमना अब असह्य था। साईबेरिया में मुझे खुजली की बीमारी हो गई थी। वह भी नमी पाकर यहां जोर पकड़ गई। कारागार मुझे अब दुःखदायी मालूम होने लगा। तज्जनित क्लेश मुझ पर आ टूटे। सन् १८७६ ई० के मार्च या अप्रैल के महीने में मुझ से कहा गया कि जांच अब समाप्त हो गई और मेरा मामला न्यायालय में भेज दिया गया है। अतः अब मैं कोर्ट के कारागार में भेज दिया गया। यह क़ैदखाना बहुत ही छोटा था। चारों तरफ स्टीम एञ्जिन चल रहे थे। एञ्जिनों के चलते ही हवा एकदम गरम हो जाती थी, जिससे मैं अत्यन्त दुःखी हो जाता था। हवा से नुकसान बहुत हुआ। बीमारियां बढ़ गईं। मैं अत्यन्त निर्बल हो गया। थोड़े ही चलने में चक्कर आने लगते। पाचन-शक्ति बिलकुल घट गई। जैसे-तैसे छोटी छोटी दो चपातियां खा पाता। फलस्वरूप मैं अत्यन्त निर्बल हो गया। यहां तक कि जीने पर चढ़ने उतरने में मुझे दो बार बैठना पड़ता, दम फूल जाती थी। मुझे स्मरण है कि उस समय सिपाही लोग आपस में बातें किया करते थे कि मैं गर्मी के मौसम के अन्त होते होते मर जाऊंगा। मुझे देख देख कर सभी चिन्तित हो रहे थे। मेरी छोटी बहिन

हेलीन ने मुझे जमानत पर छुड़ाना चाहा, पर कुछ न हुआ। उसको क्रूरता से भरी हुई यह आज्ञा दी गई—"यदि आप क्रोपाटकिन को छुडाना चाहता हो, तो डाक्टर का ऐसा सार्टीफिकेट लाओ कि यदि यह न छोड़ा जावेगा तो दस दिन में मर जावेगा।" उस समय मेरी वहिन के करुण-क्रन्दन ने मुझे बहुत ही व्याकुल कर दिया। मुझे उसकी लाचारी पर बड़ा तरस आ रहा था। पर वह प्रयत्न करती ही रही और अन्त मे उसने यह आज्ञा पा ली कि मेरा इलाज फौजी डाक्टर से कराया जाय। डाक्टर ने मुझे जांच कर कहा कि इनके रक्त में प्राणप्रद वायु (Oxygen) कम हो गई है। स्वच्छ वायु इनके लिए हितकर होगी, अतएव इनका मिलिटरी अस्पताल में ही रहना अच्छा होगा।

मैं अब मिलिटरी अस्पताल में पहुँचा दिया गया। वहीं पर मेरा इलाज भी होने लगा। वहां पहुँचते ही मैं चगा होने लगा। यह अस्पताल नगर के बाहर था। मुझे वहां खिड़कीदार एक बडा कमरा रहने को मिल गया।

दो वृक्षों की सघन साया भी पास ही थी। लगभग २०० वढ़ई उस कम्पाउन्ड में काम कर रहे थे, जो नाना प्रकार की पट्टियां तथा यन्त्र बना रहे थे। भूख भी खुल कर लगने लगी। दुर्ग में मैं बहुधा सुना करता था कि अस्पताल से भाग जाने का अवसर रहता है, इस लिए चोरी से मैंने अपने आगमन के समाचार मित्रों तक पहुँचा दिये। परन्तु मेरी समझ में यह न आता था कि मैं कैसे निकल सकूंगा। पहले से भी अधिक चौकसी मेरे ऊपर यहाँ थी। एक सतरी दरवाज़े पर खड़ा ही रहता था। मेरे मित्र नित्य मुझे छुडाने के नये ढङ्ग

सोच रहे थे। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं जिनका अब विचार करना ही विस्मयोत्पादक है। कहीं मुझे सीखचों में से होकर निकल भागने को कहा जाता, तो कहीं सिपाहियों को ज़हर देने की बात बतलाई जाती। बस, ऐसी ही तदबीरें नित्य सोची जाती थीं। परन्तु, भाग्यवश एक उपाय अपने-आप निकल आया। नवीन आज्ञानुसार मुझे अब बाहर घूमने की आज्ञा दे दी गई। मैं हर्ष-पूर्वक वैसा ही करने लगा। नित्य ४ बजे शाम को मैं अपनी कोठरी से घुमाने के लिए निकाला जाता। मुझे एक लबादा और पहनना पड़ता था, जो कैदी मरीजों के लिए विशेष रूप से बनवाया गया था। मैं अपने पहले भ्रमण को कभी न भूलूंगा। जब मैं बाहर आया तो मैंने पहले पहल दो वर्ष बाद एक लम्बा चौड़ा मैदान हरी-हरी घास से सुशोभित पाया। सामने फाटक खुले थे, सड़क दिखाई पड़ रही थी। मैं यह देखते ही भौंचक्का सा खड़ा रह गया। हमारी कोठरी मैदान के एक कोने में थी। मैदान के बीच में सिपाहियों के छोटे छोटे घर बने हुए थे, जिनमें वे शीत-ताप से व्याकुल होने पर विश्राम लेते थे। फाटक पर सिपाहियों का पहरा था। चारों ओर पक्का घेरा था। इसी फाटक से लकड़ियों की गाड़ियां भीतर आया-जाया करती थीं। इस दरवाजे को देख कर मेरा जी उछलने लगा। पर इधर और मुझे अभी देखना भी न चाहिये-ऐसा विचार कर मैं अन्य वस्तुओं को देखने लगा। पर, नयन चारों ओर से घूम कर वहीं पहुंचते थे। मैं फाटक की तरफ देखता भी न था, पर फाटक दिखलाई ही पड़ता था। लौट कर कोठरी में आते ही मैंने सिफरों द्वारा मित्रों को चिट्ठी लिखनी प्रारम्भ करदी।

स्वतंत्रता के इस विचार मात्र ने मुझे अस्तव्यस्त कर रक्खा था, हाथ काँपता था, जमुहायी आती थीं, ज्वर सा चढ आया, बस इसी दशा में चिट्ठी लिख रहा था कि "मैं आज घूमने निकाला गया। फाटक खुला था और सन्तरी इधर उधर घूम रहे थे। मैं इस फाटक से होकर भाग सकता हूँ, यही उपाय है। परन्तु इसके लिए एक लेडी को भीतर आना चाहिये, उसकी गाडी बाहर खड़ी रहेगी। जब मैं बाहर घूमने आऊंगा तो कुछ कदम टोप लिए हुए घूमता रहूँगा। अवसर देख कर जब मैं टोप को नीचे-ऊपर घुमाऊं, तब समझ लेना कि भीतर काम ठीक है। फिर आप लोगों को कोई सिंगल देना चाहिये कि बाहर भी ठीक है। बगैर सिगनल मैं भीतर से बाहर को न भागूंगा। सन्तरी मुझे पकड न सकेंगे। एक बार फाटक के बाहर होकर फिर सहज मे न पकडा जाऊंगा। गली में आकर मैं गाड़ी में बैठ जाऊंगा। यदि वे गोली मारेंगे, तो भी कुछ चिन्ता नहीं-मरना तो है ही—भीतर या बाहर। मित्रो! इसकी चिन्ता न करो।

यह पत्र मैंने भेष बदले हुए अपने दूत द्वारा बाहर मित्रों तक पहुँचा दिया। उन्होंने भी उपाय बतलाये, और अन्त में यही उपाय निश्चित रहा। मेरे मंडल के सदस्यों ने यह काम करने का बीड़ा उठा लिया। वे नवयुवक जो मुझे जानते भी न थे, इस समय छुडाने के लिए जी तोड़ परिश्रम करने लगे। परन्तु काम कोई सरल न था। लाखों कठिनाइयाँ सामने उपस्थित थीं। समय इसी भांति धीरे धीरे व्यतीत होने लगा। मैं अधीर हो रहा था। रातों-रात चुपचाप लिखता, पर मेरा स्वास्थ्य अब अच्छा था। मुझे स्मरण है कि

जब पहले पहल मैं यहाँ अपनी कोठरी में घुसा था, तब मेरी गति एक कछुए के सदृश थी, पर अब मुझ में और बल आ गया था। मैं दौड़ सकता था, पर वही कछुए की चाल चला करता, ताकि सन्देह न हो जावे कि मैं अब कितना बलवान हो गया हूँ। मेरे मित्र भी बाहर प्रबन्ध करने में जुटे थे। वे छोटी छोटी बातों तक का बन्धेज बांध रहे थे। इस प्रकार विश्वस्त गाड़ीवान इत्यादि काम ठीक करने में उनको एक महीना लग गया।

अन्त में भाग चलने की तारीख़ निश्चित हो गई। यह तिथि २६ जून थी। उनका सिगनल एक बैलून का उड़ाना था। नियत तिथि को गाड़ी भी फाटक पर आ पहुँची। उसके आगमन में एक गीत भी गाया जाने लगा। मैं २६ जून को बाहर आया और टोप हिला हिला कर बैलून की बाट जोहने लगा।

देर हो गई पर कुछ भी दिखाई न पड़ा। मेरा आधा घण्टा भी व्यतीत हो गया पर बैलून के दर्शन ही न हुए। मैं बड़े चक्कर में था। अन्त में समय समाप्त होने पर मैं उदास हो अपने कमरे में जा बैठा। उस समय की दशा मैं नहीं लिख सकता। मैं अनेकों बातें सोचता था, पर समझ में कुछ न आता था। मेरे हृदय में रह रह कर यही खटका होता था कि कहीं कोई नया उपद्रव तो न उठ खड़ा हुआ हो।

ने नये वैलून उसी दम तैयार किये, पर वे उडे ही नहीं। उन्होंने वैलून फेंके, पर दीवारें ऊँची थीं। थोडी देर बाद गाडी भी चली गई। पर ज्योंहीं गाडी चली थी कि वह रुक गई, क्योंकि सामने लकडियों की गाडी आगई। रास्ता तंग था, बड़ी मुश्किल से गाड़ी निकाली गई। जो झगडा गाडी वालों तथा मेरे मित्रों में हुआ, उससे मैं समझ गया कि मार्ग साफ न था। यदि कहीं इस गाड़ी द्वारा मैं भागा होता, तो अवश्य ही पकड़ गया होता। इस प्रकार मैं उस दिन बाल बाल बच गया।

मित्रों ने अब यह बात भी समझ ली। तंग रास्ते में चौडी सड़क तक दूर दूर तक मेरे मित्र बैठ गये। कोई बैठा बैठा बेर खाने लगा। कोई जूतों पर पालिश करने लगा, तो कोई टोपी ही साफ करने लगा। इन संकेतों का केवल यही अभिप्राय था कि मार्ग बराबर साफ है। काम फिर शुरू होगया। दूसरा दिन नियत किया गया, क्योंकि देर करने में भय था। दूसरे दिन प्रातःकाल एक लेडी आई और अफसर से मिलकर मुझे एक घड़ी देगई। उसके पीछे कुछ बिन्दु लगे हुए थे, जिनसे मुझे बाहर की सब बातें मालूम हो गई और भविष्य का कार्यक्रम भी मालूम हो गया। अब वैलून के स्थान पर गीत का गाना निश्चित हुआ था। लेडी, जो कि घडी दे गई थी, स्वयं पुलिस की निगरानी में थी। पुलिस उसे पकडने को फिरती थी, पर वह पुलिस के भी चूना लगा कर मेरे पास होगई। मैं नियमानुसार ४ बजे दूसरे दिन बाहर आया। थोड़ी ही देर बाद गाड़ी की खड़-खड़ाहट सुनाई पड़ी और मनोहर राग की ध्वनि कानों

में गूंजने लगी। मैं उस समय घेरे के दूसरे कोने पर था। मैंने एक चक्कर और लगाना उचित समझा। परन्तु अब तान बन्द हो गई। करीब १५ मिनट के सन्नाटा रहा। थोड़ी ही देर बाद लकड़ियों से भरी हुई गाड़ियां भीतर आई। तान के बन्द होने का कारण मैं समझ गया। आप जानते ही हैं कि मेरे कंधे पर एक लबादा अस्पताल का और रहता था, जिसको पहने हुए भागना बड़ा ही मुश्किल था। पर, इसका प्रबन्ध भी मैं बहुत दिनों से कर रहा था। इस लबादे को उतारने में कुछ विलम्ब होता था, पर मैंने इसका ऐसा अभ्यास कर रक्खा था, कि मिनटों में मैं उसे उतार कर फेंक देता था। मैं घण्टों रात को यही अभ्यास किया करता यहां तक कि सेकंडों ही में मैं यह काम बड़ी सफाई से कर डालता था।

तान फिर छिड़ गई, मानो कि वह जाने के लिए बराबर उत्साहित कर रही थी। मैं धीरे धीरे फाटक की ओर फिर कर चलने लगा, परन्तु भय यह लगा हुआ था कि कहीं तान बन्द न हो जावे। मोड़ पर पहुँच कर मैंने जो पीछे देखा तो मालूम हुआ कि मेरे चौकसीदार सन्तरी ८-१० कदमों की दूरी पर दूसरी तरफ देख रहे हैं। फाटक के भी सिपाही गाड़ियों के हाल ही भीतर आने के कारण स्थान से हटे हुए खड़े हैं। उस समय मेरा अन्तःकरण बारम्बार यही कह रहा था—"अब या फिर कभी नहीं।" बस, अब क्या था! अवसर होने के कारण लबादे को तुरन्त उतार कर मैं भागने लगा। पैर बँधे से थे, गति भी तीव्र न थी। पर, सन्तरी वहीं चिल्ला उठे—"यह दौड़ा, वह भागा, पकड़ो-पकड़ो"! फाटक के सन्तरी मुझे फाटक पर रोकने को दौड़ने लगे। अब क्या था! जीवन-

ने नये वैलून उसी दम तैयार किये, पर वे उडे ही नहीं। उन्होंने वैलून फेंके, पर दीवारें ऊँची थीं। थोडी देर बाद गाडी भी चली गई। पर ज्योंही गाडी चली थी कि वह रुक गई, क्योंकि सामने लकडियों की गाडी आगई। रास्ता तंग था, बड़ी मुश्किल से गाड़ी निकाली गई। जो झगडा गाडी वालों तथा मेरे मित्रों में हुआ, उससे मैं समझ गया कि मार्ग साफ न था। यदि कहीं इस गाडी द्वारा मैं भागा होता, तो अवश्य ही पकड़ गया होता। इस प्रकार मैं उस दिन बाल बाल बच गया।

मित्रों ने अब यह बात भी समझ ली। तंग रास्ते में चौड़ी सड़क तक दूर दूर तक मेरे मित्र बैठ गये। कोई बैठा बैठा बेर खाने लगा। कोई जूतों पर पालिश करने लगा, तो कोई टोपी ही साफ करने लगा। इन संकेतों का केवल यही अभिप्राय था कि मार्ग बराबर साफ है। काम फिर शुरू होगया। दूसरा दिन नियत किया गया, क्योंकि देर करने में भय था। दूसरे दिन प्रातःकाल एक लेडी आई और अफसर से मिलकर मुझे एक घड़ी देगई। उसके पीछे कुछ बिन्दु लगे हुए थे, जिनसे मुझे बाहर की सब बातें मालूम हो गई और भविष्य का कार्यक्रम भी मालूम हो गया। अब वैलून के स्थान पर गीत का गाना निश्चित हुआ था। लेडी, जो कि घडी दे गई थी, स्वय पुलिस की निगरानी में थी। पुलिस उसे पकडने को फिरती थी, पर वह पुलिस के भी चूना लगा कर मेरे पास होगई। मैं नियमानुसार ४ बजे दूसरे दिन बाहर आया। थोड़ी ही देर बाद गाड़ी की खड-खड़ाहट सुनाई पड़ी और मनोहर राग की ध्वनि कानों

में गूंजने लगी। मैं उस समय घेरे के दूसरे कोने पर था। मैंने एक चक्कर और लगाना उचित समझा। परन्तु अब तान बन्द हो गई। करीब ५ मिनट के सन्नाटा रहा। थोड़ी ही देर बाद लकड़ियों से भरी हुई गाड़ियां भीतर आईं। तान के बन्द होने का कारण मैं समझ गया। आप जानते ही हैं कि मेरे कंधे पर एक लबादा अस्पताल का और रहता था, जिसको पहने हुए भागना बड़ा ही मुश्किल था। पर, इसका प्रबन्ध भी मैं बहुत दिनों से कर रहा था। इस लबादे को उतारने में कुछ विलम्ब होता था पर मैंने इसका ऐसा अभ्यास कर रक्खा था, कि मिनटों में मैं उसे उतार कर फेंक देता था। मैं घण्टों रात को यही अभ्यास किया करता, यहां तक कि सेकंडों ही में मैं यह काम बड़ी सफाई से कर डालता था।

तान फिर छिड़ गई, मानो कि वह जाने के लिए बराबर उत्साहित कर रही थी। मैं धीरे धीरे फाटक की ओर फिर कर चलने लगा, परन्तु भय यह लगा हुआ था कि कहीं तान बन्द न हो जावे। मोड़ पर पहुँच कर मैंने जो देखा, देखा तो मालूम हुआ कि मेरे चौकसीदार सन्तरी ८-१० कदमों की दूरी पर दूसरी तरफ देख रहे हैं। फाटक के भी सिपाही गाड़ियों के हाल ही भीतर आने के कारण स्थान से हटे हुए खड़े हैं। उस समय मेरा अन्तःकरण बारम्बार यही कह रहा था—"अब या फिर कभी नहीं।" बस, अब क्या था! [illegible] होने के कारण लबादे को तुरन्त उतार कर मैं भागने लगा। पैर बँधे से थे, गति भी तीव्र न थी। पर, त्योंही सन्तरी चिल्ला उठे—"वह दौड़ा, वह भागा, पकड़ो-पकड़ो"। फाटक के सन्तरी मुझे फाटक पर रोकने को दौड़ने लगे। अब क्या था! जीवन-

मरण का प्रश्न था। बस, इस समय मुझे भागने के अतिरिक्त और कोई विचार न था। मैं प्राण-रक्षा के लिए हठा हो गया। मार्ग के गड्ढों का भी विचार न था। बस, भागना भागना और वेगपूर्वक भागना। पीछे से मुझे मित्रों द्वारा मालूम हुआ कि एक बार सतरी मेरे इतने निकट आगये थे, कि वे सब चिन्ता से व्याकुल हो उठे थे। पर मैं दौड़ता ही गया। सतरी अपनी राइफलों स प्रहार करना चाहते थे, और मैं बढ़ा जाता था। वे बहुत दौड़े, पर मैं फाटक के बाहर होगया। मुझे फाटक के बाहर देख कर वे क्षण भर के लिए भौचक्के से रह गये। यह क्षण मेरे लिए सब कुछ था। फाटक के बाहर आते ही मुझ में उत्साह सा आगया। क्योंकि मित्रों के अन्तिम पत्र में लिखा था कि फाटक के बाहर आने पर विपक्षियों के हाथ में, यदि ऐसा अवसर आ ही जावे, तो सहज में न पड़ जाना। उन्होंने लिखा था कि बाहर हम सब तुम्हारी रक्षा के लिए हर तरह से तैयार रहेंगे।

परन्तु फाटक के बाहर होते ही मैं एक बार भय से कम्पित होगया। गाड़ी पर एक कोचवान जंगी टोपी दिये हुए बैठा था। "गये" यह शब्द मेरे मुंह से निकल ही पाया था, कि आगे बढते ही मैंने गाडी के अन्दर अपने एक मित्र को इशारा करते पाया। वह मेरे मंडल में न था, पर वह मेरा परम मित्र था। हम उसकी वीरता और साहस से भली प्रकार परिचित थे। ऐसे अवसरों पर तो वह साक्षात् हरकुलीस का अवतार हो जाता था। मैं उसका नाम लेकर पुकारना ही चाहता था कि वह चिल्ला उठा—शीघ्रता से गाडी में आओ आओ" शीघ्र !" इतना कह कर वह हाथ में रिवालवर

(तमंचा) लिये हुए कोचवान ने बोला—एकदम सरपट, नहीं तुम्हारा इसी तमंचा से अन्त गैलाप।" घोड़े, जोकि पहले ही जाँच लिये गये थे, एकदम हवा होगये। पर एक खतरा और था, जिससे मेरे मित्रों ही ने बचाया। फाटक के उस पार एक पहरा बाहर और रहता था। यदि वे सिपाही चाहते, तो सरलता से मुझे पकड़ सकते थे या घोड़ों ही को रोक सकते थे। पर मित्रों का प्रबन्ध कच्चा न था। एक मित्र ने ठीक उसी समय ऐसा करारा झाँसा दिया कि वह खुर्दबीन लेकर पहाड़ों की ओर देखने लगा। ठीक उसी समय मैं गाड़ी में कूद गया और गाड़ी सर्राटे के साथ निकल गई। वे सिपाही बहुत दौड़े पर होता क्या है? आगे के मोड़ पर, जहाँ कि गाड़ी उलटने से बच गई, दो जमादार खड़े थे। ये हमारे मित्र की जरी टोपी को देख कर सलाम करने लगे। मेरा मित्र अब भी अधीर था, पर मैंने तुरन्त उसे रोक दिया कि "चुप चुप देखो ये सलाम करते हैं। आगे चलकर मुझे मालूम हुआ कि कोचवान भी पर पुराने मित्र ही हैं। मार्ग में बहुत से किसान तथा मित्र लोग खड़े थे वे आँख दे दे कर सीधे चले जाने को कह रहे थे। मैं तब सीधा नेवस्की प्रास्पेक्ट पहुँचा, जोकि सब भाँति सुरक्षित स्थान था। वहाँ पर मेरी साली मेरे लिए चिन्ता में व्यग्र हो रही थी। मैं सीधा चला गया और उसकी गोदी में जा गिरा। उसने मुझे हृदय से लगा लिया। "अहह" उस समय प्रेम और हर्ष के कारण उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे।

उधर अस्पताल के कर्मचारी, संतरी आदि सभी भडभडा कर इधर उधर गलियों में घूमने लगे कि वे अब क्या करें? उनको उस समय आसपास के मुहल्लों में कोई सवारी तक नहीं मिली, क्योंकि सब सवारियाँ मित्रों ने पहिले ही से तितर-बितर करदी थी। दाढ़ी मुड जाने से मेरी सूरत बदल गई। पर, अब क्या करना चाहिये? रात कहाँ बिताई जावे? अन्त में सोचते सोचते राय ठहरी कि हम दोनों को सीधा डानन चलना चाहिये। वहां पर सिपाही भी ढूंढने न आवेंगे। पस, हम सब डानन चले गये। मेरी हुलिया निकल गई थी। चारों ओर खुफिया पुलिस मेरे पीछे घूम रही थी। चित्र की हजारों कापियाँ थर्ड सेक्सन में बँटवा दी गई थीं। जार स्वयं इस प्रकार मेरे भाग जाने से बडा गर्म हो रहा था। वह कहता कि यह चालाकी दिन-दहाडे मेरे राज्य में हुई। वह क्रोपाटकिन कभी न कभी गिरफ्तार करके मेरे पास आना ही चाहिये।

मैं खुफिया पुलिस से बचा हुआ गाँव गाँव फिर रहा था। मेरे साथ केवल ६ विश्वासपात्र मित्र थे। उन सब की यही राय हुई कि हम सबको शीघ्र रूस से बाहर कहीं चले जाना चाहिये। परन्तु हाल ही पता चला कि सीमा के स्टेशनों तथा बन्दरगाहों पर खुफिया पुलिस का प्रवन्ध है। हमने उस मार्ग को ग्रहण किया जो मेरे लिए सबसे सुरक्षित था। एक मित्र के पासपोर्ट को लेकर तथा एक अन्य मित्र की सहायता से मैं फिनलैंड को पार कर बोथानिया झील के उत्तर में होकर स्वीडन जा पहुँचा।

'मेरी बहिन को इन बातों का पता न था। मेरे भाग जाने पर मेरे मित्र ने जब उसे समाचार दिये, तब कहीं उसे

मालूम हुआ। वह बेचारी इस अपराध में कि मेरे भाग जाने के हाल को तथा निवास-स्थान को वह जानती है, १५ दिन कैद में रक्खी गई। मेरी भावज की बहिन भी इसी अपराध में दो महीने कैद में रखी गई। उस का पति एक बड़ा बैरिस्टर था, पर उसका प्रयत्न असफल रहा। मुझे पीछे से पता चला कि पुलिस वालों ने बैरिस्टर से कहा कि यह सम्भव है कि वह कुछ न जानती हो, पर हमने तो ज़ार से कहा था कि यह भगाने वालों में से है। अब तो काम धीरे धीरे होगा। ज़ार को अब शनैः शनैः विश्वास दिलाया जावेगा कि यह अपराधिन नहीं है। इस प्रकार उसे भी दो मास का कारागार भोगना पड़ा।

मैं स्वीडन को भी पार करता हुआ सीधा क्रिस्चानिया जा पहुँचा। वहाँ से स्टीमर द्वारा हम "हल" पहुँचे। मुझे वहाँ स्टीमर की प्रतीक्षा में कुछ काल ठहरना पड़ा। इस अवसर पर मैंने नारवेजियन दल के किसानों का अध्ययन किया।

ज्योंही मैं स्टीमर में जाकर देखा तो विदित हुआ कि यह जहाज नारवेजियन, जर्मन और इङ्गलिश तीनों की ध्वजाओं से सुशोभित है। थोड़ी देर बाद स्टीमर चल दिया। मैं निमग्न हो सोचने लगा कि यह वही ध्वजा है जिसके अन्तर्गत कितने ही देशप्रेमियों ने आश्रय पाया है। अतः मैंने भी उस ध्वजा का सम्मानपूर्वक अभिवादन किया।

पश्चिमीय यूरोप

जैसे ही मैं इङ्गलैंड के समीप पहुँचा, वैसे ही उत्तरी समुद्र में एक बड़ा तूफान आया। परन्तु मैंने उस तूफान को बड़े आनन्द के साथ देखा। मैं इसके स्टीमर

को समुद्र की कल्लोलों से लड़ना-झगड़ता देख रहा था। मैं बराबर बाहर ही के तख्ते पर बैठा रहा। उस कालकोठरी में दो वर्ष बन्द रहने के कारण मुझे जीवन-संग्राम के क्लेशों को अनुभव करने की उत्कट इच्छा हो रही थी।

बाहर प्रदेशों में बहुत काल तक ठहरने का मेरा विचार न था। मैं केवल यह चाहता था कि मेरे भागने से जो हाहाकार वहाँ मचा है, वह शान्त हो जावे, तथा मेरा स्वास्थ्य भी सुधर जावे। मैं इङ्गलैंड में लेवसहाफ के नाम से उतरा। रूसी चरों के भय के कारण मैं लंदन न जाकर सीधा एडनबराह चला गया। यहां ऐसा संयोग आ पड़ा कि मैं रूस वापिस ही न गया। मैं पश्चिमीय यूरोप में स्थित अराजकता की लहर में फँस गया और मुझे यहाँ पर ऐसा ज्ञात हुआ कि मैं यहाँ रह कर अधिक काम कर सकूंगा। अपनी मातृभूमि में प्रचार करना मेरे लिए बड़ा ही कठिन हो रहा था। विशेष कर किसानों और श्रमजीवियों में तो दुर्लभ सा ही हो गया था। इधर स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध सशस्त्र बलवा उठ खड़ा होने से जनता में प्रचार करने की बात बिलकुल त्याग ही दी गई थी।

इन सब बातों को विचारते हुए मैं पश्चिमीय यूरोप के उन इने गिने साथियों के साथ काम करने लगा, जो किसानों और श्रमजीवियों में ऐसा भाव पैदा कर देना चाहते थे कि वे स्वयं अपने फायदे की बातें समझ सकें और उनके अनुसार अपने सिद्धान्तों और उद्देशों का पालन स्वयं ही कर सकें। मैंने एडनबराह पहुँचते ही रूसी तथा जूरा फेडेरेशन के कुछ मित्रों को अपने यहां पहुँचने के सम्बाद पत्र द्वारा भिजवा दिये। एक साम्यवादी सदैव स्वावलम्बी रहता है, अतः स्काटलैंड

की राजधानी में पहुँचते ही मैं कुछ काम-काज की खोज करने लगा जिससे कि भरण-पोषण हो। अस्तु, मैंने "नेचर" नामक पत्र में नारवेजियन उत्तरी अटलांटिक समुद्र के विषय में एक लेख भेजा। इस पत्र को मैं रूस में भी मँगाता था। सम्पादक महोदय ने बड़ी नम्रता पूर्वक लेख की प्राप्ति से धन्यवाद लिख भेजा और साथ ही साथ अंग्रेज़ी अधिक मुहावरे की लिखने के लिए ज़ोर दिया। मैंने इंगलिश रूस में सीखी थी और मेरा उस पर अभी पूर्ण अधिकार न था।

मेरे पास रूसी भूगोल समिति के पत्र भी थे और मैं उन में से रूसी भूगोल सम्बन्धी आविष्कारों का हाल "टाइम्स" को भी भेजने लगा। रुपये जो कि हम साथ में लाये थे ख़र्च होते चले जा रहे थे। मेरे पत्र रूस में खोल लिये जाते थे इस,कारण मैं घर को पत्र भी न लिख सकता था। अन्त में धन की खोज में विलम्ब न कर लन्दन चला गया। रूस का देशभक्त पी० एम० लवरोफ़ वहाँ से फ़ारवर्ड (Forward) नामक एक पत्र निकाल रहा था। मैंने प्रथम वहाँ जाना चाहा, पर यह सोच कर कि वहाँ रूसी खुफ़िया पुलिस न हो, मैं वहाँ नहीं गया। मैं "नेचर" के आफ़िस में जाने आने लगा। उसके सहायक सम्पादक मेरी आवभगत बड़े प्रेम से करते थे।

को समुद्र की कल्लोलों में लड़ता-झगड़ता देख रहा था। मैं बराबर बाहर ही के तख्ते पर बैठा रहा। उस कालकोठरी में दो वर्ष बन्द रहने के कारण मुझे जीवन-संग्राम के क्लेशों को अनुभव करने की उत्कट इच्छा हो रही थी।

बाहर प्रदेशों में बहुत काल तक ठहरने का मेरा विचार न था। मैं केवल यह चाहता था कि मेरे भागने से जो हाहाकार वहाँ मचा है, वह शान्त हो जावे, तथा मेरा स्वास्थ्य भी सुधर जावे। मैं इङ्गलैंड में लेवरनहाफ के नाम से उतरा। रूसी चरों के भय के कारण मैं लंदन न जाकर सीधा एडनबराह चला गया। यहां ऐसा संयोग आ पड़ा कि मैं रूस वापिस ही न गया। मैं पश्चिमीय यूरोप में स्थित अराजकता की लहर में फँस गया और मुझे यहाँ पर ऐसा ज्ञान हुआ कि मैं यहाँ रह कर अधिक काम कर सकूंगा। अपनी मातृभूमि में प्रचार करना मेरे लिए बड़ा ही कठिन हो रहा था। विशेष कर किसानों और श्रमजीवियों में तो दुर्लभ सा ही हो गया था। इधर स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध सशस्त्र बलवा उठ खड़ा होने से जनता में प्रचार करने की बात बिलकुल त्याग ही दी गई थी।

इन सब बातों को विचारते हुए मैं पश्चिमीय यूरोप के उन इने गिने साथियों के साथ काम करने लगा, जो किसानों और श्रमजीवियों में ऐसा भाव पैदा कर देना चाहते थे कि वे स्वयं अपने फायदे की बातें समझ सकें और उनके अनुसार अपने सिद्धान्तों और उद्देशों का पालन स्वयं ही कर सकें। मैंने एडनबराह पहुँचते ही रूसी तथा जूरा फेडेरेशन के कुछ मित्रों को अपने यहां पहुँचने के सम्वाद पत्र द्वारा भिजवा दिये। एक साम्यवादी सदैव स्वावलम्बी रहता है, अतः स्काटलैंड

की राजधानी मे पहुँचते ही मैं कुछ काम-काज की खोज करने लगा जिससे कि भरण-पोषण हो। अस्तु, मैंने "नेचर" नामक पत्र मे नारवेजियन उत्तरी अटलांटिक समुद्र के विषय में एक लेख भेजा। इस पत्र को मैं रूस में भी मँगाता था। सम्पादक महोदय ने बड़ी नम्रता पूर्वक लेख की प्राप्ति मे धन्यवाद लिख भेजा और साथ ही साथ अंग्रेजी अधिक महावरे की लिखने के लिए ज़ोर दिया। मैंने इंगलिश रूस में सीखी थी और मेरा उस पर अभी पूर्ण अधिकार न था।

मेरे पास रूसी भूगोल समिति के पत्र भी थे और मैं उस मे से रूसी भूगोल सम्बन्धी आविष्कारों का हाल "टाइम्स" को भी भेजने लगा। रुपये, जोकि हम साथ मे लाये थे, ख़र्च होते चले जा रहे थे। मेरे पत्र रूस में खोल लिये जाते थे, इस कारण मैं घर को पत्र भी न लिख सकता था। अत. मैं धन की खोज में विलम्ब न कर लन्दन चला गया। रूस का देशभक्त पी० एम० लवराफ यहाँ से फार्वर्ड (Forward) नामक एक पत्र निकाल रहा था। मैंने प्रथम वहां जाना चाहा, पर यह सोच कर कि वहां रूसी खुफिया पुलिस न हो, मैं वहा नहीं गया। मैं "नेचर" के आफिस में आने जाने लगा। उसके सहायक सम्पादक मेरी आवभगत बड़े प्रेम से करते थे।

पत्र का आकार बढ़ाना चाहते थे और मैं उनकी इच्छा के अनुसार पत्र की पूर्ति करने लगा। अब मेरे वास्ते आफिस में एक मेज अलग रखवा दी गई और वहाँ विज्ञान सम्बन्धी आलोचनाओं के लिए ढेरों कागजात इकट्ठे कर दिये गये। मुझ से कहा गया कि मैं यहाँ प्रत्येक चन्द्रवार को आकर नोटों का निरीक्षण करू और जो उत्तम उत्तम लेख या नोट मालूम

पढ़ें, उन पर आलोचना भी लिखूं। इन नोटों तथा "नेचर" की कापियों के सहारे मैं 'टाइम्स' को भी लेख देता। वहां से मुझे काफी धन गुरुवार के गुरुवार मिल जाता था।

एक दिन सम्पादक महोदय ने अलमारी में बहुत सी रूसी पुस्तकों को निकाल कर मेरे सामने रख दिया और कहा कि इन सब की समालोचना "नेचर" के लिए कर डालिये। पुस्तकों को देखते देखते मैं विस्मित सा रह गया, क्योंकि उन पुस्तकों में मेरी रचित भी दो पुस्तकें उपस्थित थीं। मैं चक्कर में था कि क्या करू'? उन पुस्तकों को लेकर मैं घर वापिस आया। मैं इनकी प्रशसा भी नहीं कर सकता, क्योंकि ये मेरी ही रचित हैं। अतः सोचते सोचते यही बात दृढ पाई कि कल चल कर सम्पादक महोदय से स्पष्ट कह दू' कि यद्यपि मैं यहाँ लेवसहाफ के नाम से आया हूँ, पर ये दो पुस्तकें मेरी ही रचित हैं, अतएव मैं इन दो पुस्तकों की समालोचना नहीं कर सकता। सम्पादक क्रोपाटकिन के भागे जाने का समाचार पत्रों में पढ़ ही चुका था, वह मुझे अपने ही यहाँ पाकर अतीव प्रसन्न हुआ। उस दिन से मित्रता, जोकि अब तक जारी है, दिनों-दिन बढती गई।

इस बार मैं बहुत काल तक इङ्गलेंड में नहीं ठहर सका। इस बीच में मेरी चिट्ठी-पत्री जूरा-सघ के जेम्स गुलैमी से बहुत हुई थी। ज्योंहो मेरा वहाँ काम करने का स्थायी प्रबन्ध होगया, मैं तुरन्त स्विट्जरलैंड चला गया। मुझे रूस से कुछ पत्र भी मिले, पर उन सब की यही सम्मति थी कि मैं बाहर प्रदेशों में भले ही रहूँ, अभी यहाँ काम करने का कोई अवसर नहीं है। समस्त देश में उस समय बडा जोश बँध रहा था। स्लेवोनियन्स, चिरकाल से तुर्कों द्वारा सताये जाने के कारण

अब उनके विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। सरघेई (स्टेपनायक), केलनिज तथा अन्य कार्यकर्त्ता इस समय वालकान्स प्रायद्वीप में विद्रोहियों का साथ दे रहे थे। हम सब वहाँ के कार्यों को पढ़ कर बड़े व्यग्र हो रहे थे।

स्विट्ज़रलैंड पहुँच कर मैं फिर अन्तर्राष्ट्रीय-मजदूर-संघ के जूरा-संघ में शामिल होगया और मित्रों की सम्मति मान कर "लाचाक्स-डी-फान्डस्" में रहने लगा। इसी जूरा-संघ ने आधुनिक साम्यवाद के प्रचार में वास्तव में बड़ा भारी भाग लिया था।

यह सदैव से होता चला आया है कि कोई भी राजनैतिक संस्था अपना कुछ न कुछ उद्देश अवश्य रखती है। परन्तु जब उसका मत प्रकट हो जाता है कि लक्ष्य-सिद्धि को पाये विना किसी अन्य से सन्तोष न होगा, तब दल प्रायः विभागों में विभाजित हो जाता है। उनमें से एक तो पूर्ववत् ही बना रहता है और दूसरा समझौते पर उतारू हो जाता है, यद्यपि वह यही कहता रहता है कि उसने अपनी आकांक्षाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया है। बस, इस प्रकार वह समझौता करते करते अपने पहले कार्यक्रम से कोसों दूर चला जाता है और धीरे धीरे परिवर्तन करता हुआ नम्र सुधारों पर उतारू हो जाता है। यही दशा अन्तर्राष्ट्रीय-मजदूर-संघ की भी हुई। आपस में दलबन्दियां होगईं। वर्तमान ज़मींदारों व धन-कुबेरों को उनकी सम्पत्ति से बहिष्कृत करना और परिश्रमशील मनुष्यों को, जो कुछ उन्होंने परिश्रम से पैदा किया है, उसका अधिकारी बनाना ही इस संघ का प्रथमतः लक्ष्य था। अतएव, प्रत्येक राष्ट्र के श्रमजीवियों से प्रार्थना की गई कि वे अपना

एक ऐसा प्रथक सघ बनावें, जो पूंजीवालों से सामना करने के लिए समर्थ हो और द्रव्य के उपार्जन व व्यय को समभाव से आपस मे उपयोग करने के लिए शक्तिमान हो। जिस समय वे इस प्रकार समर्थ हो जावें, उस समय वे अपने उपार्जन की सामग्री एकत्रित करलें और वर्तमान राजनैतिक बंधनों का तिरस्कार करते हुए अपनी जीविकोपार्जन के लिए दत्तचित्त होकर सलग्न हों। इस प्रकार से यह सघ मनुष्यों के विचारों में स्वतः ही राजनैतिक स्थिति को परिवर्तन करने के लिए अवश्य ही सहायक होगा।

तदनन्तर इस परिवर्तन मे एक मन होकर जीवन के प्रत्येक विभाग में अभ्युदय होने की आशा झलकने लगेगी। इस लक्ष्य ने सोते हुए यूरोपीय श्रमजीवियों को जगा दिया और अन्त में उस सघ ने अच्छे से अच्छे विचारशील मनुष्यों को भाग लेने के लिए आकर्षित किया।

परन्तु शीघ्र ही दो दल पैदा होगये। सन् १८७० ई० में पेरिस कम्यून दल की विलकुल पराजय हो चुकी थी और उस दमन नीति से, जोकि परिषद्द के विरुद्ध काम मे लाई गई थी, फ्रांस के श्रमजीवी वहाँ के आन्दोलन मे भाग लेने से वञ्चित कर दिये गये थे। इधर दूसरी ओर सयुक्त जर्मनी में पार्लामेन्टरी वर्तावों का सचार हो उठा था। उस समय जर्मन नेताओं ने समस्त साम्यवादी आन्दोलन के लक्ष्य और कार्यक्रम में परिवर्तन करने का प्रयत्न किया।

उस समय राज्यों में शक्ति का नाश कर देने ही को साम्यवादी प्रजासत्ता (Social democracy) कहा जाता था। पर जर्मनी में हवा पलट गई। धीरे धीरे जर्मन समाज का

जीवन पुनः चुनाव के सिद्धान्तों का अनुयायी होगया। व्यापार-संघ घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे, और हड़ताल की प्रथा मे अरुचि होने लगी, क्योंकि इन दोनों से श्रमजीवियों का ध्यान चुनाव के झगडों से हट जाया करता था। जनता की प्रत्येक विद्रोह-चेष्टा अथवा यूरोप के किसी भाग का क्रान्तिकारी आन्दोलन उन दिनों पूंजी वालों की अपेक्षा साम्य-वादी नेताओं से विशेष उदासीनता के साथ देखा जाने लगा। तदनन्तर इन दो शाखाओं का प्रथकत्व जर्मन-फ्रैंको युद्ध के पश्चात् स्पष्ट झलकने लगा। जर्मन भाग के नेता एञ्जिल और मार्कस बन बैठे, दूसरी ओर बाकूनिन व उनके मित्र लेटिन ससार के नेता बन गये।

मार्किस्ट व बाकूनिस्ट के झगड़े कुछ व्यक्तिगत न थे। वे वस्तुतः केवल सघत्व (Fedralism) और केन्द्रीकरण (Centralization) के सिद्धान्तों के आपस में विरोधमात्र थे। अर्थात् एक ओर समाज की स्वतन्त्रावस्था और दूसरी ओर राजा का पैतृक भाव में प्रजा-प्रबन्ध अथवा यों कहिए कि लेटिन भाव और जर्मन भाव का परस्पर विरोध था। फ्रांस की पराजय के अनन्तर ये भाव विज्ञान, राजनीति, तत्वज्ञान तथा साम्यवाद में भी स्थान पाये हुए थे। पर एक पक्ष के अनुसार तो साम्यवाद का आदर्श विज्ञान के आश्रित माना जाता था, जबकि दूसरा पक्ष इस भाव को केवल "यूटोपिन" अर्थात् सुख की सामग्री ही माना करता था।

सन् १८७२ ई० में अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् (International Association) की हेग (Hague) में एक सभा हुई। उस में अनुचित बहुमत से बाकूनिन व उनके मित्र गुलैम का

बहिष्कार कर दिया गया। जूरा संघ अन्तर्राष्ट्रीय संघ से ही निकाल दिया गया, किन्तु, यह निश्चित ही था कि अब भी जूरा संघ का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य था, कारण कि स्पेन, इटली और बेलजियम के संघ अब भी उसी के साथ थे, और उसी की आज्ञाओं का पालन किया करते थे।

कांग्रेस ने इस संस्था को छिन्न-भिन्न कर देना चाहा। एक नई काउन्सिल, जिसमें थोड़ा सा साम्यवादी अंश का समावेश था, न्यूयार्क में संघटित हुई, जहां पर कि श्रमजीवियों की सभाएं उस पर प्रभाव डालने के लिए न थीं। पर इस समय स्पेन, इटली, बेलजियम और जूरा परिषद् के संघ जीवित बने रहे और वे अपना अधिवेशन यथापूर्व पाँच-छः वर्ष तक प्रति वर्ष करते रहे। जब मैं स्विट्ज़रलैंड पहुंचा तो अन्तर्राष्ट्रीय संघों का जूरा संघ उस समय केन्द्रीभूत हो रहा था। मोशियो बाकूनिन १ जुलाई सन् १८७६ ई० को मर चुका था, किन्तु यह संस्था जो स्थिति उसके परिश्रम से पा चुकी थी, वैसी ही स्थिर बनी थी। इधर विद्रोह के भावों की स्थिरता ने जो अन्तर्राष्ट्रीय श्रमजीवियों में फ्रेन्को-जर्मन युद्ध के पूर्व ही उत्पन्न हो चुकी थी, स्पेन, इटली और फ्रांस की सरकारों को उस आन्दोलन के भावों को पूर्णतया दबा देने में असमर्थ कर दिया, नहीं तो उन सरकारों ने भय के राज्य को स्थापित कर देने में कोई प्रयत्न बाकी नहीं रक्खा था। बूरबन वंश के साम्राज्य का फ्रांस में पुनः स्थापन होना अवश्यम्भावी सा प्रतीत होने लगा था। सेनाध्यक्ष मार्सल मैक मोहन प्रजातन्त्र का सभापति इसी हेतु रक्खा गया था कि वह राज्य के पुनः स्थापन में सहायक हो। पञ्चम हेनरी के आने की तिथि भी निश्चित हो चुकी थी,

तथा साज-सामान भी शुभाशुभ के लिए निरधारित हो चुका था। पर, फ्रांस मे और साथ ही साथ स्पेन और इटली में ऐसे ही कारणों से इस विषय पर प्रजा मे पूर्ण असन्तोष फैल रहा था और वहाँ के श्रमजीवो इस नवीन राज-संस्था को स्वीकार करने के लिए कदापि प्रस्तुत न थे। यही नहीं, वे उसके नष्ट करने का षडयन्त्र समय समय पर रचने की चेष्टा भी किया करते थे। इस समय की कार्य्यवाही पर ध्यान देते हुए मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि यदि यूरोप में १८७१ ई० के विप्लव के पश्चात् उथल-पुथल नहीं हुआ तो इसका मुख्य कारण वे भाव ही थे, जो फ्रेन्को-जर्मन युद्ध के पूर्व ही पश्चिमीय यूरोप मे जागृत हो चुके थे और जिनको अन्तर्राष्ट्रीय अराजकों (अनार्किस्टों) ने परिपोषित रक्खा था।

मार्किस्टों को, जो अपने चुनाव के झगड़े में व्यग्र थे, इस दशा का ध्यान भी न था। विस्मार्क के क्रोध को सर्वथा बचाने के लिए तथा विप्लव के जर्मनी मे धधक उठने की आशंका और दमन के भय से उनके हृदयों मे क्रान्तिकारियों के लिए स्थान न रहा और शनै शनैः उनके हृदयों में उनसे एक प्रकार की घृणा उत्पन्न होने लगी। अतएव जहां कहीं भी उन लोगों का क्रान्ति के अंकुर मात्र का भी प्रादुर्भाव दृष्टि पड़ता, वहीं वे उसको बलपूर्वक दबा देने के लिए विरोध करने लगते।

उस समय फ्रांस में क्रान्तिकारियों के किसी भी पत्र का प्रकाशन मार्सल मैक मोहन की अध्यक्षता में न हो सकता था। राष्ट्रीय गान तक नहीं गाये जा सकते थे। एक समय यात्रा करते हुए मुझ को बडा विस्मय हुआ, जबकि मेरे सह-यात्रियों ने ऐसा गान सुन कर भय प्रकट किया। वे आपस

मे प्रश्न करने लगे कि क्या राष्ट्रीय गीत गाने की आज्ञा हो गई? इसी कारण फ्रांस से कोई साम्यवादी पत्र भी न प्रकाशित हो रहा था। स्पेन की दशा विलक्षण थी और वहा से इस प्रकार के पत्रों का प्रकाशन भी हो रहा था, किन्तु स्पेन के भाव स्पेन के ही अन्तर्गत रहा करते थे। इटली मे पत्रों का प्रकाशन अस्थिर था। अर्थात् कहीं निकले, कहीं बन्द हुए, तथा पुनः दूसरे नाम से अन्यत्र प्रकाशित होगये। अतएव जूरा संघ और उसके फ्रेञ्च भाषा मे छपे हुए पत्र लेटिन प्रदेशों में अपने अपने भावों के प्रचार के लिए प्रमुख समझे जाने लगे, जिसने कि यूरोप को सघर्पण के अन्धकार युग मे बचा दिया।

जूरा-संघ

प्रत्येक देश के मुख्य नेता तथा बाकुनिन और उसके सभी मित्र इस जूरा सघ के सदस्य थे। संघ के प्रधान पत्र के सम्पादक जेम्स गुलैम थे, जिनका जन्म पूंजी-वालों के वश में हुआ था। पतले-दुबले, किन्तु दृढ़-निश्चयी, हृदय के शुद्ध, ये वास्तव में आजन्म नेता थे। आठ वर्ष तक उन्होंने पत्र को चलाने के लिए बहुत सी विघ्न-बाधाओं का सामना किया। अन्त में लाचारी से उनको पेरिस चले जाना पड़ा, जहा पर कि इतिहास में उनका नाम अमर रहेगा।

इनके साथ स्वतत्रता-प्रेमी, मध्यवयस्क और नवयुवक, सभी प्रकार के मनुष्य सदैव रहा करते थे। ये लोग प्रायः घड़ी बनाने वाले स्विस थे। वास्तव में उनके सभी साथी स्वतंत्रता देवी के उपासक थे। वे अवसर प्राप्त होने पर सब कुछ

बलिदान कर देने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। पेरिस कम्यून के बहुत से भागे हुए देश-प्रेमी इसी संघ में सम्मिलित थे। उन लोगों की, यदि मैं व्यक्तिगत प्रशंसा करने लगूं, तो कदाचित यह कार्य्य बहुत ही विस्तृत और गहन हो जावेगा। उनकी कुशलता, उच्च भावुकता युक्त तर्क से वार्त्तालाप करने की योग्यता तथा व्यवहार-पटुता आदि अनेकों गुण एक से एक बढ़कर थे। मुझे स्मरण है कि पेरिस का पिन्डी नाम का एक पुराना कम्यूनिस्ट कितना विख्यात था। उसकी बुद्धि, उसकी शक्ति पर विपक्षी विस्मित थे। जबकि वारसलीज में उन पर विपक्षियों ने गोली चलानी प्रारम्भ कर दी, उस समय दर्जिन की एक वीर बालिका ने उसे अपने गृह में छुपा लिया। उसके भ्रम में कई मनुष्यों की हत्याएं भी हो गईं, पर वह वीर बालिका उसे लेकर स्विट्ज़रलैंड चली आई और स्वयं उसकी पत्नी हो गई। उस समय के कार्य्य कर्त्ताओं में पाल ब्राउस, रेलकस् आदि महानुभावों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार स्विट्ज़रलैण्ड में सच्चे कार्य्यकर्त्ताओं का एक अच्छा जमघट था। यही नहीं, स्पेन तथा जर्मनी के भी गल यहीं उपस्थित थे। रूसी सज्जन कम थे, पर जितने थे, वे सब साहसी थे। स्विट्ज़रलैण्ड के सब ग्रामों में से न्यून आकर्षक मेरा ग्राम ला-चाक्स डी-फ़ान्डस् था। पर स्थानीय संघटन में तथा सिद्धान्तों के प्रचार में किसी से भी कम न था। पिन्डी और एलवेरेसन आदि नेता भी यहीं विद्यमान थे। वहाँ से मैं बहुधा न्यूचेटल जेम्स गुलैमी से मिलने आया करता था।

इस स्थान पर मेरे दिवस अब इच्छानुसार व्यतीत हो रहे थे। मैंने वहाँ पर बहुत सी सभाएँ की। हम सब स्वयं ही

उनमें पत्रों का वितरण करते थे। प्रत्येक सप्ताह में अराजकता पर व्याख्यान होते, जिसके कारण उसी शरद् ऋतु में हम से सहानुभूति करने वाले बहुसंख्यक लोग होगये। हम लोगों में से आधे से अधिक कार्य्यकर्त्ता बाहर प्रचार कर रहे थे। स्वयं राजधानी बर्न में हमारे लाल झंडे का उद्घाटन बड़े समारोह से होने वाला था। पर विपक्षियों को यह बात बुरी लगी और पुलिस ने श्रमजीवियों को झगडे निकालने का निषेध कर दिया। अतएव अब यह नितान्त आवश्यक होगया कि अपने झगडे की मान-रक्षा के कारण हम उसको पुलिस का सामना करके भी अवश्य ही निकालें। फलस्वरूप हम सब पेरिस कम्यून की वर्ष-गांठ के उपलक्ष में बर्न में लाल झंडा निकालने को एकत्रित हुए। पुलिस की अवज्ञा करके पताका का जुलूस निकाला गया, अतएव पुलिस से मुठभेड़ होगई। उस युद्ध में हमारे दो साथियों के तलवारों की चोट आई, तथा कुछ सिपाहियों के भी गहरी चोटें आईं। पर श्रमजीवियों ने नियत स्थान पर झंडा पहुँचा दिया, जहां पर ओजस्वी भाषण हुए।

तीस स्विस लोगों पर अभियोग चलाया गया। पर इस घटना से हम से सहानुभूति करने वाले बहुत से होगये, अतः दण्ड अधिक न दिया गया। केवल कुछ मित्रों को तीन-तीन महीने का कारागार हुआ।

पर मामला यहीं दब कर न रह गया। बर्न गवर्नमेन्ट ने अब यह विज्ञप्ति निकाल दी कि देश के अमुक अमुक भाग में लाल झंडा न उठाया जावे। किन्तु, उस आज्ञा के विरुद्ध भी जूरा संघ ने यह निश्चय किया कि झण्डा सेन्ट ईमियर में

अवश्य उठाया जावेगा, क्योंकि इस वर्ष कांग्रेस वड़ी होने वाली है। कांग्रेस के समय हम सब लोग अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित झण्डे की रक्षा के लिए तैयार थे। जिस मार्ग से हमें जाना था, वहाँ से आगे एक स्थान पर पुलिस का पड़ाव था। कई गारद बीच में पड़े थे, तथा सड़क के अन्त पर पुलिस का एक भारी पड़ाव था। उसके पास ही एक सैनिक दल चाँदमारी के बहाने से समय की प्रतीक्षा कर रहा था। उस दलवालों की बन्दूकों की आवाजें कानों में पड़ रही थीं। किन्तु, जब हमारा दल चौराहे पर पहुँचा, तब हम सब को यह पूर्ण विश्वास था कि अवश्य कोई न कोई भीषण दुर्घटना होने वाली है, जिस के लिए हम सब भी तैयार थे, परन्तु मेयर कुछ नहीं बोला और हमारा दल शान्ति-पूर्वक अपने निश्चित सभामंडप में जा पहुँचा। वास्तव में हम लोग लड़ाई नहीं चाहते थे। पर स्वयं हम नहीं कह सकते कि हम सब के हृदयों में उस समय जबकि दल-बल समेत झंडा लिये चले जा रहे थे, क्या व्यग्रता सवार थी। न जाने कि वह एक भीषण खून ख़राबी के टल जाने की शान्ति थी, या खून-ख़राबी न होने का दुःख था। उस समय हम सब का विशेष लक्ष्य यही था कि अराजकता के सिद्धान्तों का सर्वथा प्रयोग किया जाय और इसी हेतु हमारे संघ ने कुछ ऐसा कार्य्य अवश्य किया है जो चिरस्थायी कहा जा सकता है।

हम लोगों ने यह भली भांति जान लिया कि सभ्य देशों में एक नये प्रकार के समाज की रचना हो रही है, जो कि पुरानी सभ्यता के स्थान पर अवश्य ही अपना अधिकार जमा लेगी, और जिसमें समाज के सभी अंग बराबर होंगे, जिसमें

कोई भी अपनी शक्ति को दूसरों के उपयोग में उनकी इच्छानुसार ही लगाने के लिए कदापि बाध्य न किया जा सकेगा। किन्तु, समाज के लोगों को सुगमता होगी कि वे अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार समाज की ऐसी दशा बनावें कि जिसमें सब की शक्तियों का समावेश होकर समस्त प्रजा के लिए पूर्ण सुख-भोग करने की सुविधाओं की सम्भावना हो सके, और साथ ही साथ विशेष व्यक्तियों के लिए विशेष कार्यारम्भ करने के हेतु स्वतंत्रता बनी रहे। ऐसे समाज में सहस्रों संस्थाओं का समावेश होगा, जिनका आपस में उन सब ऐसे कार्यों के लिए मेल अवश्य हो जावेगा, जिनमें कि मेल की आवश्यकता है, चाहे वह कृषि सम्बन्धी, उद्यम सम्बन्धी अथवा मानसिक ही क्यों न हो।

समाज की ऐसी दशा होने पर राज्यत्व भाव की आवश्यकता ही न रहेगी, क्योंकि प्रत्येक संघ का किसी दूसरे संघ के साथ मेल रखना ही एक प्रकार से राज्य-प्रबन्ध की सत्ता बन जायगी और इसी प्रकार आपस में झगड़ों की संख्यायें भी कम हो जावेंगी और यदि अकस्मात् कोई झगड़ा उठ भी खड़ा होगा, तो ये संघ ही आपस में उसका निपटारा कर दिया करेंगे।

इस बात को भी हम भली प्रकार समझ रहे थे कि हम लोगों को वर्तमान राज्य-सत्ता के स्थिर रखने के भाव, जिनको कि हम जीवन के प्रारम्भ से ही देखते चले आ रहे हैं, आवश्यक से प्रतीत होंगे और जिनको कि सभ्य मनुष्य-समाज भी सहसा परित्याग करने में असमर्थ है। किन्तु इन नवीन भावों का प्रसार करने के लिए और समय समय पर राज्याधिकारियों

से मुठभेड करने के लिए वर्षों लगेंगे। पर इन बातों के भी पूर्व हम को यह स्वीकार करना होगा कि राज्याधिकारियों और उनके निर्मित नियमों से जो स्वत्व उनको प्राप्त हुए हैं, वह एक प्रकार से आपही के विचारों और अभ्यासों का परिणाम है।

जब मेरी जान-पहिचान श्रमजीवियों और उनके शिक्षित एवं उदार विचार वाले प्रेमियों से होगई तो मुझे तुरन्त इस बात का ज्ञान होगया कि वे अपने व्यक्तिगत सुख समृद्धि की अपेक्षा, अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अधिक मूल्यवान समझते हैं। आज से ५० वर्ष पूर्व श्रमजीवी अपनी स्वतन्त्रता को किसी भी शासक के हाथ थोड़े ही से सांसारिक सुख के परिवर्तन में वेच देने को तैयार रहते थे, पर अब वह दशा न थी। उस समय एक विशेष वात, जोकि लेटिन श्रमजीवियों में उत्पन्न हो रही थी, यह थी कि वे अच्छे से अच्छे शासक की सत्ता में—चाहे वह उन्हीं में से क्यों न चुन दिया गया हो—अन्धविश्वास से काम करने को तैयार न थे। दूसरा विचार जोकि उनके मस्तिष्क में विद्युत्सदृश प्रभाव उत्पन्न कर रहा था, यह था कि "प्रथम लोगों को यह जानना चाहिए कि हम क्या चाहते हैं? पुनः हम सब अपने लिए उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करें।"

अन्तर्राष्ट्रीय एसोसियेशन की प्रतिमाओं पर अंकित किये गये ये शब्द "श्रमजीवियों का उद्धार अवश्य ही होना चाहिए, किन्तु श्रमजीवियों ही के द्वारा—" मजदूर संसार भर में सर्वप्रिय हो रहे थे। तत्पश्चात् पेरिस कम्यून के खेदजनक अनुभव ने तो उनको और भी पुष्ट कर दिया। अस्तु, जब प्रजा-विद्रोह की आग भभक उठी, तब तो बहुत से मध्यम श्रेणी के मनुष्य

भी इस नये आन्दोलन की सत्ता स्वीकार करने, एवं साथ साथ कार्य्य करने पर सहमत हो गये। एक दिन की बात है, मैं अपने घर से निकल कर बाहर घूमने आया कि मुझे मार्ग में एलसी रेकलस् मिले और कहने लगे—"भाई, चारों ओर से धनिक भी अब पूछने लगे है कि बताइए, क्या करना चाहिए? उन लोगों का कहना है कि हम भी अब आपकी इस नई लहर की परीक्षा करना चाहते हैं। पर हम लोग स्वयं ही कोई बात अभी बताने को तैयार नहीं है।" अब से पूर्व किसी भी गवर्नमेन्ट में सब तरह के उदारदल वाले मनुष्यों का इतना अच्छा समावेश अथवा प्रतिनिधित्व नहीं हुआ, जितना कि २४ मार्च सन् १८७१ ई० को निर्वाचित कम्यून काउन्सिल (Commune council) में हुआ था। ब्लेनकुस्ट, जेकोबिनिष्ट, अन्तर्राष्ट्रीय आदि सभी दलों के प्रतिनिधि अपनी अपनी संख्यानुसार उस में विद्यमान थे। पर इन सबके होते हुए भी कम्यून सरकार को सफलता प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि श्रमजीवियों के पास स्वयं कोई ऐसा निश्चित विचार न था, जिसको कि वे अपने प्रतिनिधियों पर प्रकट कर सकते।

अतः साम्यवाद की सिद्धि के हेतु अराजकता, आत्मनिर्भरता तथा कार्य्य-पटुता का उपदेश देना उतना ही अनिवार्य है, जितना कि सर्वगत स्वामित्व व भोक्तृत्व अर्थात् पृथ्वी पर सब का समान भाव से अधिकारों का उपभोग करना। साथ ही हम लोगों को इस बात का पूर्ण भास होगया कि यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों को प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता देदी जावेगी, तो सम्भव है कि हमारे सिद्धान्तों के मूल तत्वों के विकास मे भी अनावश्यक विस्तार होजाय। इस

बात का अनुभव मुझे रूसी निहिलिस्ट आन्दोलन मे हुआ। परन्तु हमारा विश्वास था और अनुभव से भी सिद्ध हुआ कि सामाजिक विषयों पर नि.सकोच अनुमति देना ही जनता के भावों को स्थिर करने के लिए पर्याप्त होगा। और उनमे निरर्थक विस्तार-दोषो को दूर करने के लिए भी यही एक मात्र उपाय माना जाता है। हम लोगों ने वस्तुत. उस पुरानी लोकोक्ति के अनुसार ही काम किया कि स्वतंत्रता के अन्तर्गत अस्थायी दोषों को दूर करने के लिए स्वतंत्रता ही की स्थिरता सर्वथा उपयोगी हुआ करती है। इस भाति ज्यों ज्यों मेरी आयु मे वृद्धि होती गई, एव ससार की वस्तुओं तथा मनुष्यों से सम्पर्क होता गया, त्यों त्यों मेरा विचार दृढ़ होता गया। साथ ही यह बात भी अब स्पष्ट होगई कि यह परिवर्तन किसी एक विशेष विज्ञ पुरुष की सूझ का परिणाम न होकर जन-समुदाय के रचनात्मक परिश्रमों का ही फल हुआ करता है।

प्राचीन सुधारकों की परिपाटी आदर्श प्रजातन्त्र सत्ताओं के स्थापन करने में यातो पूर्ण स्वतंत्रता का अथवा पूर्ण स्वत्वाधिकारों का आश्रय लेती रही है। किन्तु, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-संघ ने व्यवहारिक समाज-विज्ञान (Sociology) के प्रश्नों को सुलझाने के लिए मुख्यत. श्रमजीवियों को ही लक्ष्य करके उनको शिक्षा दे देकर उन पर ही प्रभाव डालना उचित समझा।

समिति के शिक्षित समुदाय ने जनता को अन्य देशों की स्थिति समझाने एव प्राप्त अधिकारों की विवेचना करने का भार अपने ऊपर उठा लिया, और अन्त में उसके निश्चित किये हुए भावों को समबद्ध कराने में पूर्ण योग दिया।

अब समाज का क्या रूप होना चाहिए इसके लिए हम सब ने कभी भी अपने मनोमय विचारों में किसी भी आदर्श प्रजातंत्र सत्ता की आयोजना करने का मिथ्याभिमान या प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत हम लोगों ने श्रमजीवियों का ध्यान स्वयं इस ओर आमन्त्रित कर उनमें ही वर्तमान कुरीतियों के कारण खोजने को कहा और उन्हें सम्मति दी, कि वे वादाविवाद एवं अपनी सभाओं द्वारा एक ऐसे व्यवहारिक सामाजिक संघटन की स्थापना करें, जोकि आधुनिक संघटन से कहीं उत्तम हो। उस समय जो कोई भी प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय संघ के सम्मुख आता, वह उसे तत्क्षण प्रत्येक मजदूर संस्था के समीप विचारार्थ भेज देता। इस प्रकार यूरोप की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी मजदूर संस्थाओं का उस पर विचार करने का अवसर दिये जाने के बाद वह पुनः अन्तर्राष्ट्रीय सभा की दूसरी बैठक में उपस्थित किया जाता था।

अतएव, समाज का निर्माण, जिसके लिए कि हम सब लालायित थे, इस प्रकार किया गया। पर इन अराजकता के विचारों की साधना में जूरा संघ ने जो जो कार्य्य किये, वे विशेषकर प्रशंसनीय हैं। और इन्हीं दिनों मैंने भी अपनी वर्तमान स्थिति में यह अनुभव कर लिया कि अराजकता एक विशेष कार्य्य-परिपाटी अथवा स्वतंत्र समाज की सत्ता ही नहीं है, किन्तु, वह प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञान का एक अङ्ग है, जिसका पोषण उन प्रकारान्तरों से नहीं होता, जिनसे कि मनुष्य-मात्र अन्य विज्ञानों का कार्य्य-साधन किया करता है।

इँगलैंड की यात्रा।

सन् १८७७ई० के शरद् काल में बेलजियम में दो कांग्रेस हुईं। एक तो वरवाइरस में अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की, और दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय सोशलिस्टिक कांग्रेस, जोकि घेन्ट में हुई। घेन्ट की कांग्रेस विशेषतया विख्यात थी, क्योंकि यह सब को विदित था कि जर्मन सोशल डिमाक्रेट (जर्मन साम्यवादी) इस कांग्रेस द्वारा समस्त यूरोपीय मजदूरों को अपने झंडे के अन्तर्गत लाने की, तथा इसको पुरानी अन्तर्राष्ट्रीय काउन्सिल के स्थान पर स्थान देने की चेष्टा करेंगे। इस प्रकार लेटिन देशों के मजदूरों का संस्थाओं की सत्ता को सुरक्षित रखना आवश्यक होगया था। अतएव, मैं लेवशाफ नाम धारण किये हुए तथा अन्य ६ मित्रों समेत घेन्ट में उनकी उद्देशपूर्ति में बाधा डालने को जा पहुँचा और यद्यपि हम केवल ६ ही अनारकिस्ट (राज्यविद्रोही) घेन्ट में उपस्थित थे, किन्तु हम लोगों ने उनको उद्देशपूर्ति न होने दी। इसी प्रकार बहुत वर्षें व्यतीत होगईं। वे प्रति वर्ष अपने उद्देशपूर्ति की चेष्टा करते थे और हम लोग वहां उनका विरोध करते थे। वास्तव में शक्ति का कैसा दुरुपयोग था। गरमागरम बहसें हुईं, पर सार कुछ न निकलता था। और यह सब सम्भव था कि जर्मन साम्यवाद के केन्द्रीकरण (Centralization) की स्कीम को हम लोग स्वीकार करलें। पर घेन्ट की उपरोक्त कांग्रेस की समाप्ति मेरे लिए एक विचित्र ही घटना में उपस्थित हुई। तीन-चार दिन पश्चात् बेलजियम की पुलिस को पता लग गया कि मैं वास्तव में कौन हूँ? इसलिए होटल में

कृत्रिम नाम लिख देने के अपराध में मेरे नाम गिरफ्तारी का वारण्ट निकल गया। मेरे मित्रों ने तुरन्त मुझे इसकी सूचना दी। उनकी सम्मति थी कि हम यहाँ से तुरन्त भाग जावें क्योंकि बेलजियम का मंत्रि-मंडल यदि मुझे पकड लेगा तो वह रूसी मंत्रिमडल के हाथों तुरन्त सुपुर्द कर देगा। वे लोग अब इस बात पर उतारू थे कि अब वे मुझे होटल में गिरफ्तार होने के लिए नहीं जाने देंगे। मेरा मित्र गुलैम मार्ग रोक कर खडा हो गया और कहने लगा कि यदि आप अपनी हठ पर स्थिर रहेंगे, तो फिर हमको विवश होकर आप के साथ बल प्रयोग करना पडेगा। अतः हमको कुछ घेन्ट के साथियों के साथ ही वहां से जाना पडा। उस समय अन्धेरे में काना-फूंसी का होना, सीटियों का बजना आदि सब कुछ अति ही विचित्र था! अन्त में वे सब हमको एक साम्यवादी के यहां ले गये और रात्रि भर मैं वहीं रहा। यद्यपि मैं अराजक दल का था, पर उसने मेरे साथ भ्रातृ-स्नेह का ही बरताव किया।

दूसरे दिन प्रात काल होते ही मैं एक बार फिर इङ्गलैंड को चल दिया, जहाज़ पर लोग बड़ी उत्सुकता से हम से हमारे असबाव के बारे में पूंछते थे और स्नेहमयी मुस्कराहट से चित्त प्रसन्न करते थे, क्योंकि मेरे पास इतनी बड़ी यात्रा होने पर भी केवल एक ही थैला था। पर इस बार मैं इङ्गलैंड में अधिक नहीं ठहरा। इसी बीच मैंने लंदन के अजायब घर में जा पेरिस की क्रान्ति के इतिहास का अध्ययन किया। मैं अधिक कार्य्य करना चाहता था, अस्तु, मैं पुनः पेरिस लौट गया। कम्यून दल के तीव्र दमन के पश्चात् पुनर्वार वहां पर मज़दूरों के आन्दोलन का श्रीगणेश हो रहा था। इटली और फ्रांस के

कुछ साथियों के साथ यह आन्दोलन फिर जड़ पकड़ने लगा और हम लोगों ने पहले पहल वहां पर पहला सोशलिस्ट (साम्यवादी) दल स्थापित किया।

कार्य्यारम्भ करते समय हम लोगों की संख्या हास्यास्पद थी। कठिनता से हम ६ आदमी गुफाओं में मिला करते, पर जब हम १०० हो गये, तब तो हम लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता होने लगी। उस समय इस बात का ख्याल भी कौन कर सकता था, कि हमारा आन्दोलन दो वर्षों ही में इतना व्यापक और प्रगतिशील हो जायगा। परन्तु फ्रांस में उन्नति का मार्ग सदैव से ही निराला रहा है, जबकि विपक्षी प्रबल हो जाते हैं, उस समय आन्दोलन के चिन्ह तक खोजे नहीं मिलते। दमन की उलटी धार तैरने वाले वहाँ अल्प सख्यक ही थे। किन्तु जब विपक्षी ढीले पड़ जाते, तो तुरन्त एक नई लहर काम करती दृष्टि पड़ने लगती, और जो भाव नष्ट से हो गये थे, वे पुन जीवित दृष्टि पडने लगते और उनका प्रचार वेग से होने लगता था। बस, इस प्रकार ज्यों ही आन्दोलन की वृद्धि की सम्भावना होने लगती, त्योंही सहस्रों अनुयायी, जिनका कि पता तक न था, सामने प्रतिवाद करते और अपनी इच्छाओं को प्रकट करते दीखने लगते थे। इस आन्दोलन के लिए हम लोग कठिनता से १०० पुरुष ऐसे थे, जोकि खुल्लमखुल्ला इसका समर्थन करते थे। मार्च सन् १८७८ ई० में होने वाले साम्यवादी दल के प्रथम अधिवेशन में २०० मनुष्य एकत्रित थे। परन्तु दो वर्ष बाद जैसे ही कम्यूनिस्ट पार्टी के मनुष्यों को छोड देने का प्रस्ताव पास हुआ, वैसे ही पेरिस के श्रमजीवी गलियों में लौटे हुए श्रमजीवियों का स्वागत करने के लिए

सहस्रों की संख्या में इकट्ठे होने लगे। इस प्रकार हमारे आन्दोलन की वृद्धि में एक नई बाढ़ यकायक आगई। परन्तु यह वृद्धि प्रारम्भ ही हुई थी, कि अकस्मात् अप्रैल सन् १८७८ई० में रात्रि के समय हमारे सहयोगी कारदा तथा एक फरासीसी मित्र अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी दल के सदस्य होने के अपराध में पकड़ लिये गये और उनको १८ महीने के कारावास का दण्ड भी तत्काल दे दिया गया।

उसी समय हम भी पकड़े ही गये थे, परन्तु पकड़ने वालों की असावधानी के कारण हम बाल बाल बच गये। पुलिस मेरी गिरफ्तारी चाहती थी, पर धोखे से वह एक दूसरे रूसी के यहां जा पहुँची जिसका नाम मेरे नाम से मिलता-जुलता था। अब मैं अपने कृत्रिम नाम लेवलाफ को छुपा कर अपना सारा काम सत्य नाम से करने लगा और आगामी मास तक पेरिस में ही बना रहा। वहां से फिर मैं स्विट्ज़रलैंड बुला लिया गया।

उन दिनों जबकि मैं पेरिस में था, मेरी भेंट प्रथम बार ही मि० टरग्यूनाफ से हुई। उन्होंने एक मित्र द्वारा मुझे देखने की इच्छा प्रकट की, और मेरे गिरफ्तार न होने के उपलक्ष में एक रूसी भाई के नाते छोटा सा भोज भी दिया। मैं अत्यन्त आदरणीय भावों से युक्त उनके यहां गया, क्योंकि मैं जानता था कि टरग्यूनाफ की लेखनी ने रूस में क्या क्या काम किये हैं।

उनकी आकृति किसी से छिपी न थी। लम्बे सिर पर काले बालों की टोपी दिये हुए वे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते थे। उनके नेत्रों से योग्यता का आभास हो रहा था, और उनका उच्च ललाट ही उनकी बढ़ी-चढी शक्ति का द्योतक था।

उस शताब्दि के उपन्यास लेखकों में इनका नाम सब से गएयमान्य है। और इनके आदर्श उपन्यास रूसियों के ऊपर तो जादू का असर डालते थे। पेरिस से चले जाने के पश्चात् सन् १८८१ ई० में मेरी इनकी एक बार और भेंट हुई। उस समय वे अस्वस्थ थे पर एलेक्ज़ेन्डर तृतीय को जिसका कि हाल ही में राज्याभिषेक हुआ था, वे कुछ सम्मति स्वरूप में लिख भेजने की चिन्ता मे निमग्न थे। उनको उस समय यह आशंका हो रही थी कि जार तृतीय न जाने किस नीति का अनुकरण करे? वे उसको अपने प्रबल तर्क पूर्ण लेख द्वारा बता देना चाहते थे कि अब समय से पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है, अतएव वे रूस में नये सुधारों और नई राजनीति का आयोजन करें। अत्यन्त दु:खित होकर उन्होंने उस समय मुझ से कहा था कि "मैं ऐसा पत्र लिखना चाहता हूँ, पर प्रतीत होता है कि हम ऐसा न कर पावेंगे।" वास्तव में उस समय वे रीढ़ के फोडे से अत्यन्त विह्वल हो रहे थे। पीड़ा के कारण उनमें बैठने तक की सामर्थ्य न थी। अस्तु, उस समय टरगयूनाफ न लिख सके और थोड़े दिनों में समय भी जाता रहा, क्योंकि इस बीच में एलेक्ज़ेण्डर ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी कि वही रूस का निरकुश शासक है।

मुझे पीछे पता चला कि उनकी मृत्यु के उपरान्त जब उनका शिर डाक्टरों ने तौला, तो उस समय तक के प्रमाणित तौले हुए "क्यूवियर" के सब से भारी शिर से भी टरगयूनाफ का शिर भारी बैठा। उसकी गणना २००० ग्रामस् से भी अधिक थी। पहले तो डाक्टरों को विश्वास न हुआ, अतएव दूसरा कांटा मंगा कर दुबारा तौला, पर शिर की गणना यथावत् ही रही।

तदनन्तर रूस की परिस्थिति में एक नवीन ही परिवर्तन हो गया। स्लेवेनियनों के रक्षार्थ जो युद्ध रूस ने सन् १८८७ ई० में तुर्कों के विपक्ष में छेड़ा, उसका परिणाम असन्तोषजनक हुआ। युद्ध के पूर्व बड़ा उत्साह था, किन्तु उच्च सैनिक कर्म्मचारियों की असावधानी के कारण रूस की अनेकों मूल्यवान क़ुरबानियां निष्फल हो गईं। इस युद्ध में रूस को गहरी क्षति उठानी पड़ी और वे रियायतें जोकि टर्की में कर पाई थीं, थोड़े ही दिनों में हाथ से जाती रहीं। बहुत मनुष्यों के मारे जाने के अतिरिक्त यह भी सब को अवगत था कि इस युद्ध में धन का दुरुपयोग पानी की भांति किया गया है और उच्च सैनिक अफ़सरों ने रक़में की रक़में बटोर कर रख ली हैं। असन्तोष के इन कारणों से प्रजा व्यग्र तो था ही, किन्तु जब सन् १८७७ ई० में हमारे पक्ष के सन् १८७३ ई० के गिरफ्तार किये हुए १९३ कार्य्यकर्त्ताओं का अभियोग हाईकोर्ट में पेश किया गया, तो असन्तोष की सीमा और भी बढ़ गई। अभियुक्तों की ओर से सेन्टपीटर्सबर्ग के प्रायः सभी मुख्य वकील सम्मिलित थे। इस प्रकार नगर में इसकी पहिले ही से पर्याप्त चर्चा थी। लोगों के हृदयों में अभियुक्तों की ओर से सहानुभूति तो थी ही, किन्तु जब अभियोग की जाँच होते समय सबको यह ज्ञात हुआ कि ये बेचारे आज ४ वर्ष से अभियोग की ही राह में जेलों में सड़ाये जा रहे हैं, तब तो जनता के क्रोध और असन्तोष की सीमा का पारावार ही न रहा, यहाँ तक कि उस समय न्यायाधीश भी इस अन्याय की बात से प्रभावित हो गये थे। अन्त में अदालत ने कुछ को तो बड़ी लम्बी सजाएं दे दीं, और शेष अभियुक्तों को थोड़ी सजायें

देकर यह कहते हुए मुक्त कर दिया कि ये लोग पर्याप्त समय तक वैसे ही कारावास में रह चुके हैं, इनको अब अधिक दण्ड देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

उस समय सब की यह धारणा थी कि अपील में ज़ार अवश्य ही इन लोगों की सजायें कम कर देगा, किन्तु वहां भी फल विपरीत ही हुआ। यहां तक कि अदालत ने जिनको मुक्त कर दिया था, उनको ज़ार ने कालेपानी की सजा दे, दूरस्थ प्रदेश साईबेरिया में भेज दिया और जिनको कि साधारण सज़ायें दी गई थीं, उनको ५ से लेकर १२ वर्ष तक का सपरिश्रम दण्ड दे दिया गया। पर ये सब करतूतें थर्ड सेक्सन के प्रधान जनरल मेजन्टसाफ की थीं, जोकि ऐसे कारनामों के लिए उन दिनों अच्छी तरह प्रख्यात हो रहे थे।

उन्हीं दिनों सेन्टपीटर्सबर्ग की पुलिस के अध्यक्ष जनरल ट्रेपाफ ने कारागार का निरीक्षण करते समय एक राजनैतिक अभियुक्त को केवल इस अपराध पर बेतों से उधेड डाला कि उसने इनको आते देख उठ कर सलाम नहीं किया था। इस बात पर अन्य राजनैतिक क़ैदियों ने घोर असन्तोष प्रकट किया, जिसके फलस्वरुप वे भी जेल रक्षकों व पुलिसवालों द्वारा भली प्रकार पीटे गये। रूसी राजनैतिक क़ैदियों को सब कुछ सहन हो सकता था, पर वे इस प्रकार के शारीरिक दण्ड को बहुत अपमानकर समझते थे और उन्होंने उसको न सहन करने का दृढ निश्चय भी कर लिया था।

बेतों के इन समाचारों ने सारे नगर में खलबली मचादी। सैंकडों युवक ट्रेपाफ से क्रुद्ध हो रहे थे। यहां तक कि एक वीर बालिका अपने क्रोध को न थाम सकी और वह अपना

तमंचा ले ट्रेयाफ के निवास-स्थान पर सीधी चली ही गई, और पहुँचते ही गोली मारदी। किन्तु ट्रेयाफ का प्राणान्त नहीं हुआ, वह घायल ही होकर रह गया। बालिका इतनी सुन्दर थी कि स्वयं ज़ार भी उसकी सुन्दरता पर मुग्ध थे। इधर ट्रेयाफ के शत्रु भी नगर में इतने थे कि उन्होंने मामले को अदालत तक पहुँचा ही दिया। जेस्लुच नामक उस वीर बालिका ने स्पष्ट रूप से अदालत के समक्ष यह कह दिया कि मैंने ट्रेयाफ के गोली मारी है। उसको यह भली भांति निश्चय हो गया था कि जनता के क्लेशों व राजनैतिक कैदियों की दुर्दशा निवारण कराने के लिए अब अन्य कोई उपाय शेष नहीं रह गया है। उसने स्वयं 'लन्दन टाइम्स' के सम्वाददाता से इस बात की प्रार्थना की थी कि वे कृपया बेंतों के लगाये जाने के समाचार को पत्र में प्रकाशित करादें, किन्तु जब उसने भी ऐसा करने में असमर्थता प्रकट करदी, तब उसने यह कृत्य बिना किसी की सम्मति के स्वयं कर डाला।

जूरी ने सर्व सम्मति से बालिका को उसकी वीरता एव स्पष्टवादिता पर मुक्त कर दिया। पर उसके बाहर आते ही पुलिस ने पुन. पकड़ना चाहा किन्तु नगर के उत्साही नवयुवक जोकि अदालत के बाहर खड़े हुए मामले को सुन रहे थे, बीच मे आगये और उन्होंने पुलिस को सफल न होने दिया। तदनन्तर वह वहा से बाहर चली गई और त्वरित स्विट्ज़रलैंड पहुँच कर हम लोगों में जा मिली।

इस घटना ने सारे यूरोप मे खलबली मचा दी। मैं उस समय पेरिस में था। उस समय पत्र-सम्पादक बडे उत्साह से उस लड़की की प्रशसा एव उसका चित्र बड़े बड़े कार्टूनों

द्वारा अपने पत्रों में प्रकाशित कर रहे थे। यूरोप के श्रमजीवियों में इस वीर बालिका का बड़ा सम्मान होने लगा और वे इस वीर महिला की प्रशंसा बहुधा मुग्ध होकर किया करते थे। इस घटना के कुछ मास व्यतीत होने पर बिना किसी षडयन्त्र के ही स्वतः चार सम्राटों के मार देने का प्रयत्न किया गया। होडेल व डा० नोवलिंग ने जर्मन शाहन्शाह के गोली मारदो, तथा इसके कुछ ही पूर्व ओलीवा मानकीसा ने स्पेन के राजा पर वार किया। इन घटनाओं के अनन्तर भोजनाध्यक्ष पसान्टे ने इटली के बादशाह पर छुरा लेकर धावा किया।

इन बातों के कारण यूरोपीय सरकारें चौकन्नी होरही थीं। और उनको यह विश्वास होने लगा कि इन सब षडयन्त्रों के मूल सञ्चालक जूरासंघ और अन्तर्राष्ट्रीय-मजदूर संघ के ही सदस्य हैं। उस समय से अब तक २० वर्ष व्यतीत होचुके हैं और मैं पुनः अपने पाठकों को विश्वास दिलाता हूँ कि वास्तव में कोई भी षडयन्त्र इस प्रकार का न रचा गया था। किन्तु, सभी यूरोपीय सरकारों की यह धारणा थी कि इन घटनाओं का सञ्चालक हमारा संघ ही है। अतः वे एक स्वर से यह कहते हुए स्विट्जरलैंड की घोर निन्दा करने लगे कि केवल यही एक ऐसा देश है जिसकी सरकार ने ऐसे क्रान्तिकारियों का जमघट अपने यहाँ कर रक्खा है, जिसने कि ऐसे उपद्रव बहुधा हुआ करते हैं। बस फिर क्या था? जूरासंघ के मुखपत्र "अवन्त गार्ड" के सम्पादक पाल ब्राउस पकड लिये गये। पर, जब स्विस न्यायाधीशों ने उक्त घटनाओं से इन सम्पादक महोदय का कोई सम्बन्ध न देखा तो उन्होंने उनको केवल आपत्तिजनक लेखों के लिखने के ही अपराध में दो मास के कारा-

वास का दण्ड देदिया। पत्र के ऊपर बहुत क्रूर दृष्टि हो रही थी और वह अन्त में दबा ही दिया गया। स्विस् सरकार ने यह घोषणा करदी कि कोई भी प्रेस ऐसे और इससे मिलने-जुलते विचार वाले पत्र को न छापे। इस प्रकार जूरासघ कुछ काल तक बिना पत्र के अपना काम करता रहा।

इसके अतिरिक्त वहाँ के राजनीतिज्ञ अब इस प्रकार के ढंग रचने लगे कि या तो हम सब अपने इस कार्य्य से ही तिलाजलि देदें, या भूखों मरना स्वीकार करें। पाल ब्राउस तो स्विट्जरलैंड से निकाल ही दिये गये। जेम्स गुलैमी, जिसने कि आठ वर्ष अविश्रान्त परिश्रम करके जूरासघ में काम किया था और जोकि अपनी जीविका अन्य कार्य्यों से ही उपार्जन कर लिया करता था, अबकी बार इस प्रकार सताया गया कि वह अपने उदर-पोषणार्थ कुछ भी सहारा न पाकर विवश हो फ्रांस चला गया। स्थानीय कार्य्यकर्त्ताओं को भी आजीविका के भय से विरक्त हो जाना पडा।

इस प्रकार होते होते वह सब काम मुझ पर ही आपड़ा, क्योंकि उस समय मैं ही वहा एक परदेशी की भाति था। प्रथम तो मुझे संकोच हुआ, पर अन्य कोई उपाय अवशेष ही न था। मैंने भी कुछ सोच-विचार कर अपने दो मित्रों के साथ फरवरी सन् १८७८ मे जेनोवा से 'ला रिवोल्टी' नामक एक पाक्षिक पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया। उस समय मेरे पास केवल ४ डालर ही थे, पर हम सब चन्दा करने पर उतारू होगये और इस प्रकार किसी न किसी तरह से हमने अपने पत्र का प्रथम सस्करण निकाल ही दिया। उस समय पत्र की भाषा नरम, किन्तु सारगर्भित थी। हमने प्रथम अपने पत्र की

२००० कापी छपाई, पर उसमें से एक भी न बची। अस्तु, पत्र का प्रकाशन कार्य्य इस भांति सफल हुआ, जोकि अब भी पेरिस में "ट्रेम्पस् नोवेक्स" के नाम से जीवित है।

साम्यवादी पत्रों की बहुधा प्रकृति वर्तमान स्थिति के अनेकों क्लेशों एवं उलाहनों की चर्चा करने में हुआ करती है। खानों, डाकखानों तथा खलिहानों में मजदूरों के साथ किये गये अत्याचारों की कहानी, श्रमजीवियों की हडताल के समय में दीनता व स्वामियों के प्रति उनकी विवशता का वर्णन चटपटे कार्टूनों अथवा लेखों द्वारा उन पत्रों में बराबर होता रहता है। इस प्रकार के निष्फल प्रयासों का प्रभाव पाठकों के हृदय में केवल ग्लानि-मूलक ही हुआ करता है। इस प्रभाव को हटाने एवं पाठकों के हृदयों में श्रद्धा व उत्साह का सञ्चार करने के लिए सम्पादक को जोशीली भाषा का प्रयोग करना पडता है। किन्तु, मेरा विचार इसमें विभिन्न था। एक क्रान्तिकारी पत्र को अवश्य ही उन लक्षणों से पूरित होना चाहिए, जोकि सर्वत्र नवीन युग के आगमन के सूचक होते हैं, तथा सामाजिक जीवन के नये नये स्वरूपों के विधायक हों और साथ ही साथ जीर्ण-शीर्ण संस्थाओं के उन्मूलक होवें। ऐसी नवीन युग-सूचक परिस्थितियों पर पूर्ण ध्यान रखते हुए, तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट करते हुए इस प्रकार से विवेचना करनी चाहिए कि सन्दिग्ध हृदयों पर इन आवश्यक भावों की जाग्रति अनिवार्य और अज्ञात रूप से स्वयं होती जावे, तथा समाज में नवीन भावों की उत्तेजना होती रहे। प्रत्येक क्रान्तिकारी पत्र का यह लक्ष्य होना चाहिए कि संसार के समस्त प्राणियों में आन्तरिक समवेदना का प्रकाश हो, और प्राचीन अन्यायों से घृणा उत्पन्न

होकर जीवन की नवीन आशाओं का संचार होता रहे। वस्तुत: क्रान्ति की सफलता में आशाजनक उत्साह ही मूल कारण हुआ करता है।

इतिहासवेत्ता बहुधा बताया करते हैं कि किस प्रकार से अमुक विज्ञान ने मानवी विचारों तथा संस्थाओं में परिवर्तन कर दिया है, किन्तु यह इतिहास नहीं है। बड़े बड़े सामाजिक तत्वज्ञानी भावी परिवर्तनों के चिन्हों को देखकर और उनके आन्तरिक सम्बन्धों को जांच कर परीक्षा तथा अनुभव द्वारा वर्णन किया करते हैं कि भविष्य में क्या क्या घटनाएं होने वाली हैं। कुछ सिद्धान्तों को प्रारम्भ में लेकर उनको उनके आवश्यक परिणामों तक बढ़ाते हुए एक सामाजिक संघटन का खाका खींचना ऐसा ही सरल है, जैसा कि कुछ स्वयं सिद्ध प्रमाणों को लेकर रेखागणित के मन्तव्यों का सिद्ध कर लेना। किन्तु यह समाज-विज्ञान नहीं कहा जा सकता। सच्चे सामाजिक भविष्य को कहने के लिए उचित है कि जीवन के नवीन आदर्शों पर पूर्ण दृष्टि रक्खी जावे, और सामयिक घटनाओं को आवश्यक घटनाओं से पृथक् करते हुए उसी आधार पर भित्ति निर्माण की जाय।

हमारे मित्र डुमथेरी व हरग्रीज ने भी मुझे इस मार्ग पर अग्रसर होने में बड़ा ही योग दिया। डुमथेरी का जन्म सेवाय के एक गरीब कृषक के यहां हुआ था। धनाभाव होने के कारण उनके पिता उन्हें पर्याप्त शिक्षा भी न दे सके थे. किन्तु डुमथेरी आरम्भ ही से दक्ष था। साम्यवादी विचारों के लिखते समय वह एक काल्पनिक की भाँति कभी रूपक न बांधा करता था, वरन् इसके प्रतिकूल सदैव सारगर्भित लेखों द्वारा ही

अपनी बढ़ी-चढ़ी मानसिक शक्ति का प्रमाण दिया करता था। हमारे दूसरे मित्र हरग्रीज़ प्रथम क्लर्क थे। उनका जन्म जेनेवा में हुआ था। मेरी गिरफ्तारी के पश्चात् इनका वहिष्कार जेनेवा वालों ने कर दिया। पर उस समय ये बड़ी दुरावस्थाओं में रहते हुए भी पत्र का कार्य्य सञ्चालन करते रहे, जब तक कि पत्र के निकलने का समुचित प्रबन्ध पेरिस से न हो गया। अतएव मैं यह बात गर्व पूर्वक कह सकता हूँ कि उपरोक्त सज्जनों ने मुझे पूर्ण योग दिया और मुझे इनमें अधिक विश्वास था। पर साथ ही साथ यह भी कह देना चाहता हूँ कि उस समय पत्र सम्बन्धी कार्य्यों में हम लोगों को बड़े ही दुर्दिनों का सामना करना पड़ा। उस समय हमारे पत्र के ४ या ५ ही संस्करण निकले होंगे कि प्रेस के अध्यक्ष ने स्पष्ट कह दिया कि मैं पत्र छपवाने का प्रबन्ध कहीं अन्यत्र करलूं। वास्तव में प्रेस के अध्यक्ष को पत्र छापने में कोई आपत्ति न थी। वह हृदय से छापना भी चाहता था, पर बेचारा लाचार था; क्योंकि वहां के प्रायः सभी प्रेस सरकारी सहायता प्राप्त किये विना कार्य्य निर्वाह नहीं कर सकते थे। अस्तु हमारे पत्र को छापने वाले से यह बात स्पष्ट रूप से कह दी गई थी कि यदि वे सरकारी सहायता की आकांक्षा रखते हैं, तो इस पत्र का नाम भी न लें। वहा से निराश होकर हमने प्राय सभी प्रेसों की खाक छानी पर कोई छापने को तैयार न हुआ यद्यपि उनमें से बहुत से नाहीं करते समय अतीव लज्जित और दुःखी हो जाया करते थे।

खिन्न चित्त हो मैं जेनोवा को वापिस आया। पर मित्र डुमथेरी यह सुनकर अत्यन्त उत्साहपूर्ण व आशाजनक बातें करता हुआ कहने लगा—"यह बात तो साधारण है। हम

सब स्वयं अपना प्रेस खरादेंगे और तीन माह में किश्तों के साथ सब मूल्य चुका देंगे।" किन्तु, मैंने बीच ही में आपत्ति की कि हम लोगों के पास कुछ थोड़े से फ्राकों (एक प्रकार का सिक्का) के अतिरिक्त धन कहाँ है!

"धन · धन क्या वस्तु है बहुत हो जावेगा।" हमको प्रथम टाइप मंगा कर पत्र निकाल देना चाहिए। धन फिर स्वयं आजावेगा। और बात भी वास्तव में ऐसी ही हुई। उसका अनुभव सोलह आने ठीक सफल हुआ।

ज्यों ही पत्र पूरे आर्थिक संकटों के क्लेशों एवं सहायता की अपीलों से छप कर प्रकाशित हुआ, त्योंही थोड़ी या बहुत धन की सहायता चारों ओर से किसी न किसी रूप मे आने लगी। मैंने अपने जीवन में बहुधा कार्यकर्त्ताओं को धन के लिए चीखते और धनाभाव की शिकायत करते सुना है। परन्तु, उस समय के बीत जाने पर जब मैं अब इस बात पर ध्यान देता हूँ, तो मुझे तो यही प्रतीत होता है कि वास्तव में इतना संकट या कष्ट धनाभाव का नहीं है, जितना कि सच्चे, दृढ़ निश्चयी तथा सत्य निश्चय के साथ ठीक लक्षित मार्ग पर दूसरों को भी प्रोत्साहित करते हुए प्रेम से अग्रसर होने वाले व्यक्तियों के अभाव का है।

इस भांति लगभग २१ वर्ष तक यह पत्र मागला-खाना अपना काम करता रहा। कोई भी ऐसा संस्करण न होता था जबकि उसके प्रथम पृष्ठ पर सहायता के लिए प्रार्थना न की गई हो। इस बात से तो यह स्पष्ट है कि यदि कोई दत्तचित्त से कार्य करने वाला उपस्थित है, तो यह बात नहीं कि उसका काम धनाभाव के कारण समाप्त हो जाय। क्योंकि डुमथेरी

व हरग्रीज़ तो प्रति वर्ष ८०० पौन्ड का खर्च कौडी पैसों को इकट्ठा करके ही प्रति वर्ष चलाया करते थे। इसलिए मैं तो कहूँगा कि पत्र क्या सभी कामों के लिए धन इतना आवश्यक नहीं है, जितना कि मनुष्य।

धीरे धीरे मेरा भी छापाखाना विख्यात हो चला, क्योंकि डुमथेरो प्रायः नित्य कुछ न कुछ पर्चे वितरण किया करता और जिनको कि वह एक पेनी से अधिक वेचने पर घोर विरोध करता। उस समय यदि हमको कोई विशेष दुःख था, तो वह पत्र में स्थानाभाव का था, क्योंकि हमारा पत्र छोटा एवं परिमित था। हमको अन्य पत्रों के आकारों को देख देख कर उनके सम्पादकों से स्पर्धा रहा करती थी। पर जबकि मैं कारावास में था, तब मेरे समस्त सम्पादकीय विचार 'क्रान्तिकारी के वचन' (The Words of a Rebel) नामक पुस्तक में छपवा दिये गये, जिससे कि वास्तव में मुझे बड़ी सान्त्वना हुई।

उस समय हम लोगों का ध्यान फ्रांस की ओर विशेष रूप से सदैव ही आकर्षित रहा करता था, पर दुःख यह था कि फ्रांस ही में हमारे पत्र के न जाने की सब से कड़ी आज्ञा हो रही थी। निषिद्ध वस्तु-वाहकों को वहां से बहुत सी आवश्यक वस्तुओं के ले जाने के कार्य्य ही से अवकाश न था, कि वे हमारे पत्र के इस झंझटी काम की ओर ध्यान भी देते। ऐसी दशा में यदि हम कुछ कर सकते थे तो केवल यही कि लिफाफों में पत्रों को बन्द कर मुहर लगा लगभग १०० पत्रों को फ्रांस में भेज दिया करते थे। इस प्रकार प्रथम वर्ष तो केवल हम को अपने उद्योग पर ही अपने पत्र का अस्तित्व स्थिर रखना

पड़ा। पर शनैः शनैः एलसी रेकलस् इस कार्य्य में अधिक परिश्रम करने लगे और मेरे पकड़ लिये जाने के बाद तो उन्होंने स्वयं पत्र को अपने हाथ में लेकर उसको बहुत ही उन्नतावस्था पर पहुँचा दिया।

रेकलस् उस समय एक पुस्तक 'एशिया टिक रूस' के भूगोल सम्बन्धी विषय पर लिख रहे थे। उन्होंने एक बार मुझे इस कार्य्य में योग देने के लिए अपने निवास-स्थान क्लेरेन्स में भी बुलाया था। उस समय मेरी स्त्री अस्वस्थ थीं, इस कारण मैं वहां और भी चला गया कारण कि वहाँ की अनुपम प्राकृतिक छटा एवं नदियों की रम्यता आदि दृश्य बड़े ही विचित्र एवं हृदय को विकसित कर देने वाले थे। मैं कह सकता हूँ कि वहां रह कर मैंने अपने लेखों में सब से उत्तम लेख लिखे, जिनमें से कि एक 'नवयुवकों के लिए' नामक शीर्षक वाला भी है। इस लेख का अनुवाद बहुत सी भाषाओं में हुआ और यह सहस्रों की संख्या में यत्र-तत्र बहुत से कार्य-कर्त्ताओं द्वारा वितरण भी किया गया।

ऐसे उत्तम लेखों के लिखे जाने का कारण एक यह भी था कि उस समय वहां पर सम विचार वालों का जमघट हो रहा था। वास्तव में एक बात जोकि हम अराजकवादियों को बहुधा खला करती है, यह भी है, कि हम सब एक से विचार रखने वाले लेखक और कार्यकर्त्ता एक स्थान पर न ठहरने की रुकावटों के कारण इधर उधर समस्त संसार में तितर-बितर फैले हुए हैं।

ज़ार की हत्या।

अब मैं अपने पाठकों का ध्यान रूस की ओर लिये जाता हूँ, जहाँ पर कि स्वतंत्रता का संग्राम दिन-व-दिन अधिक विषमतर होता चला जारहा था। सहस्रों राजनैतिक अभियुक्तों के अभियोग हाईकोर्ट में चल रहे थे। बहुत से मंडलों के सज्जन गिरफ्तार किये जा चुके थे, पर सब का अपराध स्पष्ट और एक ही था। उस समय नवयुवक कृषकों और श्रमजीवियों में जाकर साम्यवाद का प्रचार करने लगे। साम्यवादी पर्चे सहस्रों की संख्या में बँट रहे थे, जिनमें कि उनसे अपनी आर्थिक समस्याओं के हल करने के लिए क्रान्ति कर देने की अपीलें की जारही थीं। किन्तु ज़ार के प्रति किसी भी षड्यन्त्र की रचना का पता न था और वास्तव में तबतक कोई ऐसी चेष्टा की भी नहीं गई थी। नवयुवकों में अधिकांश उस समय ऐसे कार्य्य के विरोधी थे। इस प्रकार यदि सन् १८७०—७८ तक के इस आन्दोलन पर दृष्टिपात किया जावे, तो मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि यदि उन लोगों के किसानों और श्रमजीवियों को शिक्षा देने के कार्य्य में कोई आपत्ति न की जाती तो दशा एकदम इतनी विषम कभी भी न हो जाती।

परन्तु जो दण्ड उन लोगों को दिया गया, वह निष्ठुर ही नहीं, वरन् विवेक रहित और क्रूर था। क्योंकि उस आन्दोलन की नींव अब इतनी गहरी तह तक पहुंच चुकी थी, कि उसका मूलोच्छेदन करना असम्भव ही था। कड़ी से कड़ी मेहनत ६-१० अथवा १२ वर्ष तक खानों में करने पर भी अन्त

में साईवेरिया को आजीवन के लिए भेज दिया जाना तो एक साधारण सी बात हो रही थी। १४ वर्ष की एक बालिका केवल एक पर्चा बाँटने के अपराध में १ वर्ष का कठिन कारावास झेलने के बाद जीवन भर के लिए साईवेरिया भेज दी गई थी। यही नहीं, वरन् नवयुवकों की क्रोधाग्नि प्रज्वलित करने के लिए उनके निरपराध साथी सीधे साईवेरिया न भेजे जाते थे। वे वर्षों पर्य्यन्त रूस ही में विशेष विशेष कारागारों में रक्खे जाते थे, जहाँ पर कि उनकी दशा साईवेरिया से भी सोचनीय रहती थी।

ये कारागार वास्तव में बड़े भयानक हैं। ज्वर रोग से २१ फीसदी कैदी प्रति वर्ष इन्ही कारागारों में अपनी इहलोक लीला समाप्त किया करते हैं। यहां पर भूखों मरते मरते नाना प्रकार के अपमानों का सामना करते हुए कैदी कुछ ही महीनों में पागल हो जाया करते हैं। उनके तड़पने, विलाप करने का कोई भी प्रभाव कर्मचारियों पर नहीं होता। इसके पश्चात् साईवेरिया से भी क़ैदियों की दुर्दशा के समाचार बराबर चले आ रहे थे।

बस, फिर क्या था ? हमारे नवयुवकों के हृदयों को यकायक प्रकोप ने आ घेरा। वे एक दूसरे से परस्पर कहने लगे—"कोई भी अग्रेज़ या फरासीसी इस प्रकार अपने अपमान को सहन न कर सकेगा। फिर हम ही क्यों इसे सहन करें ? मनुष्य में विरोध की शक्ति है। इसलिए हमारा अब यह कर्त्तव्य है कि हम सब खुले मैदान सशस्त्र इन सब पुलिस नायकों का सामना करें। इससे उनको भी यह पता चलेगा कि हम लोगों की गिरफ्तारी भी कम से कम उनकी कैसी अपकीर्ति पूर्ण मृत्यु का कारण बनती है।

थोडे दिनों के बाद ही ओडेसा में इस कार्य्य का भी श्रीगणेश होगया। कोवाल्सकी और उनके मित्रों ने पुलिसनायकों का रिवाल्वरों से सामना किया, जो कि उनको गिरफ्तार करने आये थे। ज़ार द्वितीय ने भी इस नई लहर को दबा देने के लिए धर-पकड़ का काम तीव्रता से प्रारम्भ कर दिया। समस्त रूस कुछेक प्रान्तों में विभाजित कर दिया गया। वहाँ के शासकों को प्राणदण्ड देने के पूर्ण अधिकार देदिये गये।

उस समय प्राणदण्ड तो एक मामूली बात होगई थी। ओह! मुझे यह भली भांति स्मरण है कि एक १६ वर्ष के बालक के प्राण किस प्रकार निष्ठुरता पूर्वक कर्मचारियों द्वारा हर लिये गये थे, जिसका केवल यही एक अपराध था कि वह स्टेशन पर कुछ पर्चे चिपका रहा था।

ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर क्रान्तिकारियों का अब केवल एक ही लक्ष्य "आत्म-रक्षा" हो रहा था, और जिस आत्म-रक्षा को उन्हें धूर्त गुप्तचरों, नाना प्रकार के क्लेश देने वाले वार्डरों और राज्य पुलिस के सर्व शक्तिमान नायकों के विरुद्ध खुल्लमखुला करना पड़ता था। जेनरल मेजेन्टसाफ, जिसने कि द्वितीय ज़ार के कान भर कर विख्यात १९३ अभियुक्तों की सजायें निर्णय होने पर दुगुनी करादी थीं, दिन-दहाड़े सेन्ट पीटर्सबर्ग में गोली से मार दिया गया। कीफ, खारकाफ आदि प्रान्तों के शासक, जोकि ऐसे ही कारणों से अप्रिय हो रहे थे, गोलियों के निशाने बना दिये गये। पर, इस समय तक ज़ार के व्यक्तित्व से कोई सम्बन्ध न था, और न सन् १८७९ ८० तक उसके प्राणों की हत्या करने की कोई चेष्टा ही की गई। यदि इस समय भी ज़ार ने रूस की दशा सम्हालने की इच्छा

प्रकट करदी होती, सुधार-समय के थोड़े से गण्य मान्य नेताओं को आवाहन कर, उनसे देश की, अथवा किसानों ही की दशा का निरीक्षण कराया होता, या उसने कभी भी पुलिस के नायकों की शक्तियाँ को परिमित कर देने की चेष्टा की होती, तो वास्तव में जार के ऐसे एक भी कार्य्य को देख कर प्रजा के आनन्द की सीमा न रहती। इन सब के प्रतिकूल जार तो विपक्षियों के हाथों की कठपुतली बन रहा था। अतएव सब आशाओं पर पानी फेर कर उसने एक बार पुनः केटकाफ की मन्त्रणा से देश भर में आन्दोलनकारियों को प्राण-दण्ड देने के लिए विशेष सैनिक शासकों की नियुक्ति करदी।

इस प्रकार जार ने स्वयं क्रान्तिकारियों के हृदयों पर एक नवीन वज्राघात कर अपने मार्ग को कण्टकपूर्ण बना लिया। आन्दोलनकारियों ने भी ज़ार की ऐसी दशा देख कर निर्णय किया कि वे अब इस निरंकुशता के प्रति भी युद्ध ठानेंगे। इस के फलस्वरूप ज़ार द्वितीय का प्राणान्त सन् १८८१ में कर दिया गया।

सबसे प्रथम सालोवियाफ (Soloviofi) ने ज़ार पर गोली चलाई। पर उस समय वह अपनी कुशलता से सीधा-टेढ़ा भागता हुआ बरामदे में घुस गया। वास्तव में वह भीरु न था, किन्तु अपनी ही कल्पनाओं से उठे हुए मानसिक भूतों के सामने वह सदैव काँपा करता था। एक समय, जबकि क्रान्तिकारियों ने ज़ार-प्रासाद को नष्ट कर देना चाहा, तब तो वह बहुत घबडा गया। अस्तु, घबडा कर उसने अपने जेनरलों को बड़ी बड़ी शक्तियां दे दीं। पर, उसको विश्वास उनमें भी न था। कुछ काल तक कोई अन्य घटना न हुई तो उसे

मेलीकाफ मे, जिसको कि उसने सब से अधिक अधिकार दे रखे थे, विश्वास होने लगा और उसको अपना निजी मन्त्री बना लिया।

पर ज़ार सदैव ही दुखित रहा करता। उसे पश्चाताप था कि उसकी सरकार एक अप्रिय सरकार हो गई है। इन विचारों में निमग्न होकर कभी कभी वह घंटों विलाप करता, एवं आँसू बहाया करता। ऐसी ही दशा में वह प्राय मन्त्री से पूछने लगता—"सुधार कब तक तैयार होंगे? कितनी देरी है?" यदि एक-दो दिन पश्चात् मन्त्री उससे निवेदन करता कि वे तैयार हैं, तो जार आश्चर्यान्वित होकर मुँह ताकने लगता, मानों कि वह उस रोने-धोने की बातें भूल ही गया और दीर्घ निश्वास लेकर पूछने लगता कि क्या मैंने ऐसी आज्ञा दी थी? अच्छा अभी रहने दो, इस काम को प्रजा के लिए हमारे उत्तराधिकारी ही अपने राज्याभिषेक के उपलक्ष मे उपहार स्वरूप कर दिखावेंगे। यह दशा जार की थी। जब कभी वह कोई बात गड़बड़ी की सुनता, तभी सुधारों को देने के लिए व्यग्र हो उठता, पर ज्योंही वह बात शान्त हो जाता, त्यों ही उसका कार्य्य विपत्तियों द्वारा यथावत् होने लगता।

सन् १८८१ ई० के फरवरी मास में मेलीकाफ ने एक दिन उसे सूचना दी कि आपके लिए पुनर्वार अब कोई नया षड्यन्त्र रचा जा रहा है, पर वह क्या है, इसका पता ठीक ठीक नहीं चलता। यह सुनते ही जार के सामने लुई १६ वें का दृश्य घूम गया। उसे यह प्रतीत होने लगा कि एक दिन कहीं उसकी भी दशा लुई की भाँति न हो जावे। इस प्रकार होते होते सन् १८८१ के मार्च मास के पहले या तेरहवें दिन के

प्रातःकाल उसने मेलीकाफ से अपने विषय में पक्के समाचार सुन, सब प्रांतों के प्रतिनिधियों को एकत्रित कर, सुधारों पर मन्त्रणा की और कुछ अधिकार प्रजा को दे देने का निश्चय सा किया। किन्तु होनी श्रमिट है। इसके कुछ काल ही पश्चात् ज़ार, मेलीकाफ द्वारा निषेध किये जाने पर भी परेड जाने को उद्यत हो गये। वहां से वे डचेस केथराइन से मिलने चल दिये, जिसको कि वह यह समाचार सुनाना चाहते थे कि उन्होंने कुछ सुधारों को दे देने का निश्चय किया है। क्योंकि केथराइन बहुत पहले से ही सुधारों के पक्ष में थीं। पर, उन संकीर्ण एवं सड़ा कर दिये जाने वाले सुधारों के प्रकाशन करने का सौभाग्य उसे प्राप्त न था, कारण कि वह मार्ग ही में अपने प्राणों से हाथ धो बैठा।

इस घटना का सच्चा वृतान्त यह है कि ज़ार की दौड़ती हुई गाड़ी पर पहले एक बम फेंका गया। उसके बहुत से रक्षक घायल हो धराशायी हुए। राईनेकाफ, जिसने कि बम फेंका था, गिरफ्तार हो गया। उस समय भी साईस ने ज़ार से बहुत कुछ कहा सुना कि वे गाड़ी से बाहर न उतरें, क्योंकि वह गाडी की इस भग्नावस्था होने पर भी उसे प्रासाद तक पहुँचा देगा। पर ज़ार इस विचार से कि यह उसका एक सैनिक कर्त्तव्य होगा, कि वह अपने घायल साथियों का उतर कर निरीक्षण करे, हठात् गाडी से उतर ही पड़ा। राइने-काफ से उसने कुछ पूछ-तांछ की और वहां से चल कर ज्योंही वह ग्रीनेवेटस्की नामक एक युवक के सामने होकर निकला, त्योंही उसने धड़ाम से अपने और ज़ार के बीच में पृथ्वी पर एक बम दे मारा, जिससे कि वे दोनों मर जावें। अतएव

वे दोनों कुछ काल तक जीवित रहने के पश्चात् इस संसार से सदैव के लिए चल बसे।

इस प्रकार वह जार, जो कि रातदिन सहस्रों दासों से कार्य्य करवाता हुआ आनन्द से कालक्षेप किया करता था, आज असहाय, ठिठुरता हुआ बर्फ पर प्रचुर रक्त की कीच में सना हुआ पड़ा है। जहां पर कि उसके कोई अन्य साथी भी नहीं दृष्टि पड़ते। कुछ काल बाद एक फौजी रिसाला, जो कि उस मार्ग से जा रहा था, जार को कम्बल में लपेट कर उसके प्रासाद पर ले गया।

इस प्रकार एलेक्जेन्डर जार द्वितीय के जीवन का नाटक समाप्त हो गया। फलस्वरूप सेन्टपीटर्सबर्ग के अधिकारियों में तहलका मच गया। एलेक्जेन्डर तृतीय विराटकाय और शारीरिक बल रखते हुए भी वीर स्वभावापन्न न थे। राज्याभिषेक होने के बाद ही वे जार द्वितीय के प्रासाद को छोड़ अपने दादा के प्रासाद में चले गये। उसमें वे बहुत ही कम बाहर निकल कर जब कभी राज्य का कार्य्य किया करते थे। जार के रक्षार्थ एक गुप्त सभा की भी आयोजना कर दी गई। अफसरों के वेतन तिगुने कर दिये गये, ताकि वे प्रसन्नता पूर्वक स्वच्छन्दता से जार की रक्षा कर सकें और गुप्त षड्यन्त्रों का पता चला सकें।

यह संस्था अन्त तक स्थापित रही और यह समय समय पर ज़ार को काल्पनिक भयों से भयभीत कर अपने अस्तित्व को स्थिर रखती थी। इस भांति जार तृतीय भी विपत्तियों के हाथों की कठपुतली बन बैठा, और होते होते अन्त में उसने घोषणा कर दी कि केवल वही रूस का एक निरंकुश शासक होगा।

उन दिनों मैं स्विट्ज़रलैंड में था। ज़ार द्वितीय के मृत्युपरान्त ही मुझे आज्ञा मिली कि मैं स्विटज़रलैंड से तुरन्त निकल जाऊं। मुझे इस बात का कुछ बुरा भी न लगा और न मैंने इसे कोई अपना अपमान ही समझा। कारण कि स्विट्ज़रलैंड की सरकार की, चारों ओर से, अन्य राज्यों द्वारा, डाँवाडोल हो रही थी। रूसी सरकारी प्रेस एक स्वर से रूस में स्थित स्विस् लोगों को वहां से हटाने के लिए आन्दोलन उठाये हुए थे। ऐसी अवस्था में यदि स्विस् सरकार ने हमको निकाल कर रूस की पुलिस को कुछ सान्त्वना दे दी तो वह उसके स्वार्थ-साधन के लिए उपयुक्त ही था। पर, मुझे स्विस् सरकार की निर्बलता का दुःख अवश्य था। क्योंकि ऐसा करके उसने अपने को एक अर्द्ध-स्वतन्त्र देश प्रमाणित कर दिया तथा यह बात भी प्रत्यक्ष करदी कि उसका देश अन्तर्राष्ट्र-वादियों का अड्डा है।

देश-निर्वासन की यह आज्ञा मुझे सन् १८८१ ई० में मिली, जबकि मैं हाल ही में अराजकों की एक कांग्रेस में सम्मिलित होने के पश्चात् लंदन से लौटकर अपनी स्त्री के समीप एलसी रेकलस् के निवास-स्थान पर रहने लगा था। अस्तु, यहाँ से हम दोनों तुरन्त रवाना हो गये, और फ्रांस के एक परम सुन्दर छोटे से ग्राम थानन में जा ठहरे, जोकि जेनेवा झील के तट पर अवस्थित है। यहां पर हम लगभग दो मास के ठहरे रहे, कारण कि मेरी स्त्री जेनेवा यूनीवर्सिटी को B S C. की परीक्षा देने वाली थी।

परीक्षा समाप्त होते ही मैं अपनी पत्नी सहित नवम्बर सन् १८८१ ई० में लंदन चला गया, जहाँ कि हम दोनों

लगभग १२ मास तक ठहरे रहे। यह समय वास्तव में हम दोनों के लिए निर्वासन अथवा कालेपानी के सदृश था, क्योंकि उन्नतिशील साम्यवादी विचार रखने वाले व्यक्ति को तो यहां पर साँस लेने तक के लिए सुन्दर उपयुक्त वायु का अभाव था। यहाँ के श्रमजीवी अभी तक साम्यवाद की उपयोगिता ही न समझे थे। मिस्टर हिन्डमैन व उनकी वीर पत्नी ही केवल यहाँ एक ऐसे दृष्टि पड़ते थे, जो कि कुछ श्रमजीवियों को एकत्रित किये हुए स्पष्टतया प्रचार कर रहे थे। त्रैकोवस्की भी उस समय लन्दन में ही थे। हिन्डमैन के घोर परिश्रम से सन् १८८१ ई० में कांग्रेस वहाँ पर हुई। उपस्थिति बहुत ही न्यून थी। पर तो भी हम लोगों ने यत्र-तत्र सहानुभूति रखने वाले लोग बना लिये थे।

उसी समय मि० हिन्डमैन ने 'सबका इंगलैंड" नामक शीर्षक का एक बहुत ही प्रभावशाली लेख लिखा, जिसका श्रमजीवियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने उनसे कई बार एक पत्र निकालने को कहा पर वहाँ भी धनाभाव था। मैंने उन्हें अपने पत्र की सारी उत्पत्ति कह सुनाई। फलस्वरूप धीरे धीरे इंगलैंड से सन् १८८६ ई० तक ३ पत्र निकलने लगे, जिन्हें श्रमजीवियों ने बहुत ही अपनाया।

सन् १८८२ ई० के ग्रीष्म काल में मैंने अंग्रेज़ी में टूटा फूटा एक व्याख्यान डरहम के श्रमजीवियों की सभा के वार्षिक अधिवेशन में दिया। इसके बाद न्यूकैसिल, ग्लास्गो और एडिनबराह में भी मेरे व्याख्यान कराये गये, जिनको श्रमजीवियों ने बड़े उत्साह पूर्वक श्रवण किया। मैंने उनको इस

का सारा वृत्तान्त कह सुनाया, कारण कि वहाँ का सारा वृत्तान्त सुनाना ही साम्यवाद का पाठ पढ़ाना था।

यह सब कुछ था, पर मुझे यहाँ बड़ी निस्तब्धता सी प्रतीत होती थी। मेरा व मेरी स्त्री का मन यहाँ से अब उठा, यहाँ तक कि सन् १८८९ई०के शरद्काल में हम दोनों ने यहाँ से फ्रांस वापिस जाने का निश्चय कर डाला। यद्यपि यह बात हम दोनों को भली-भांति विदित थी कि फ्रांस में हम लोगों का रहना शान्ति पूर्वक न होगा। वहां हमारे पकड़ लिये जाने की पूर्ण आशंका थी, पर तो भी हम दोनों बहुधा ही कहा करते थे—'Better a French prison than this grave" अर्थात् "इस कब्र से तो फ्रांस का कारागार ही अच्छा है।" अस्तु, हम दोनों यहाँ से चले गये।

दुबारा गिरफ़्तारी

इस प्रकार लंदन से लौट कर हम पुनः थानन में मेडम सासक के घर में पूर्ववत् रहने लगे। मेरा साला भी, जो स्विट्ज़रलैंड में क्षयी रोग से ग्रसित होने के कारण टिका हुआ था, मेरे ही पास आकर रहने लगा। इस बार इन दो ही महीनों में जितने गुप्तचर मुझे थानन में दृष्टि आये, उतने पहले कभी देखने में न आये थे। हमने वहां पर रहना प्रारम्भ ही किया होगा कि ठीक हमारे घर के सामने एक संदिग्ध मनुष्य, जो अपने को अंग्रेज बताया करता था, एक मकान किराये पर लेकर रहने लगा। रूसी गुप्तचरों के झुंड के झुंड हमारे घर को घेरे रहते थे और वे निरन्तर

दो-दो तीन-तीन की संख्या में हमारे घर के चारों ओर चक्कर मारा करते थे। मुझे इस बात का पूर्णतया अनुमान था कि वे क्या क्या विचित्र समाचार नित्यप्रति हमारे सम्बन्ध में भेजते होंगे। क्योंकि यह उन लोगों के लिए परमावश्यक है कि वे कुछ न कुछ रिपोर्ट भेजा ही करें। कारण कि यदि वे कोई रिपोर्ट न भेजेंगे तो उसका अभिप्राय यह समझा जावेगा कि उन्होंने किसी रहस्यपूर्ण बात का पता नहीं बताया और जिसके अपराध में या तो वे आधे ही वेतन को पा सकेंगे या अपनी नौकरी से सदैव के लिए वञ्चित कर दिये जावेंगे। इस कारण वे जो चाहते, लिख डालते थे। वह समय उनके आनन्द का समय हो रहा था। धन की कोई कमी न थी, जितना जी चाहे व्यय कर डालो। जहाँ चाहो, चले जाओ। अत: वे सब लोग होड़-लगाकर नित्य नये झूठे षडयन्त्र रचा करते थे। साथ ही फ्रांस की भी पुलिस चौकन्नी हो रही थी। यह चिन्ता कि मैं यहाँ पर क्या काम कर रहा हूँ, उन्हें चैन न लेने देती थी। मैं उस समय 'लारिवोल्ट' नाम के एक पत्र का सम्पादन करने के अतिरिक्त एक दो पत्रों के लिए लेख भी लिखा करता था। स्थानीय पुलिस-नायक ने एक बार मेरे विषय में घर की स्वामिनी से पूछ-ताछ की। उसको यह सन्देह था कि हमारे पास कोई छापेखाने की कल है। यहाँ तक कि एक दिन वह गृह-स्वामिनी से कहने लगा कि, देवी! क्या आप मुझे अपना छापाखाना दिखला देंगी। पर उसने निर्भीकता से स्पष्ट उत्तर दिया कि यहां हमारे घर में छापाखाने की कोई कल नहीं है। पर, इतने पर उसे संतोष क्यों कर होना! अतएव, इधर-उधर की बातें करके वह फिर पूछने लगा कि

श्रीमती ! दिन भर वह (अर्थात् मैं) क्या किया करता है ? घर की स्वामिनी ने कहा—"लिखा करता है।" "पर दिन भर तो वह नहीं लिख सकता।" "इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानती। हां, जब कभी वह बढ़ई का भी काम करने लगता है, और संध्या के समय घूमने जाता है।"

"ठीक ठीक जबकि अन्धेरा हो जाता है !", बस, तुरन्त ही पुलिस-नायक ने अपनी डायरी भरली कि मैं केवल अन्धेरा होने ही पर घूमने जाता हूँ। पर, यह बात मेरी भी समझ मे न आती थी कि वहाँ पर इतने गुप्तचरों के भेजे जाने की क्या आवश्यकता थी ? यह सब कुछ था, पर सन् १८८१ से लेकर सन् १८८२ ई० तक फ्रास में अनारकिस्टों (अराजकों) के आन्दोलन में आशातीत परिवर्तन एवं वृद्धि हुई। उस समय सब लोगों को साधारणत यही धारणा हो रही थी कि फरासीसी 'कम्यूनिज़्म' साम्यवाद के विरुद्ध है। पर सन् १८८० ई० में जब कि जूरासंघ की कांग्रेस ने यह निर्णय कर दिया कि वह एक अराजक साम्यवाद है, तो फरासीसियों में भी अराजकता की लहर फैल गई। लदन में ११ महीने रहने के कारण मुझे यहाँ का सारा वृत्तान्त मालूम न था। पर थानन में आते ही मुझे यह अवगत होगया कि अनारकिस्ट (अराजक) सख्या में अधिक हैं। उनके समक्ष में कोई भी अपारच्यूनिस्ट (Opportunist) आदि दल के लोग सभा न कर पाते थे। सभा प्रारम्भ होते ही वे प्रस्ताव करने लगते कि खान एवं पैदा करने के समस्त साधनों पर राष्ट्र का अधिकार होना चाहिये। प्रजा उनके साथ थी। इस प्रकार मध्यम श्रेणी के लोग भयभीत होकर मूक ही वहाँ से लौट जाते थे। श्रमजीवियों

और निर्धन लोगों के मस्तिष्क माडरेट राजनीतिज्ञों एवं आन-न्दोत्सव में निमग्न रहने वाले नेताओं से बिलकुल फिर रहे थे। यहाँ तक कि वे स्थान भी उन्हें अप्रिय प्रतीत होने लगे, जिनमें कि भोज अथवा नाचना-गाना हुआ करता था। लियान्स नगर में तो किसी ने धनाढ्यों के क्लब तक में आग लगा दी। अत वहाँ के धनकुबेरों में तहलका मच गया। फलस्वरूप लगभग ६० आदमी अनारकिस्टों के गिरफ्तार कर लिये गये। वहाँ के बहुत से विपक्षी पत्र खुल्लमखुल्ला फ्रेंच सरकार को चेतावनी दे देकर मुझे भी गिरफ्तार करने की आवाज उठाने लगे। उनका कहना था कि यही एक ऐसा व्यक्ति है, जोकि लंदन से यहाँ आकर इस आन्दोलन का सञ्चालन कर रहा है। फिर क्या था ? गुप्तचरों ने मुझे और भी अधिक घेरना शुरू किया। प्रायः नित्यप्रति उनके कोई न कोई पत्र आया करते कि "एक जहाज बारूद भेजते हैं। बस इस प्रकार से बनाना" है ऐसे पत्रों पर 'अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस के' लिखकर उन्हें रखता जाता था। अन्त में मेरी गिरफ्तारी के समय पुलिस उन सब पत्रों को उठा लेगई, पर न जाने क्यों उनका साहस हमारे विपक्ष में उन पत्रों का पेश करने का न हुआ ? गिरफ्तार करते समय पुलिस ने मेरे घर की ही तलाशी न ली थी वरन थानन स्टेशन पर उसने मेरी स्त्री की भी तलाशी ली पर कोई भी चीज उसके हाथ न लगी।

रहा। यहां तक कि जब 'टाइम्स' पत्र ने एक तार छापा कि मैं भाग गया हूँ तो मैंने उसका खण्डन भी तुरन्त उसमें छपवा दिया कि वह तार नितान्त असत्य है। जब कि मेरे इतने मित्र गिरफ्तार हो चुके हैं, तो अब मुझे भाग जाने की लालसा नहीं है। २१ दिसम्बर को मेरे साले की मृत्यु मेरी ही गोद में हुई। मैं जानता था कि रोग असाध्य है, परन्तु एक युवा का तड़फ-ड़ाते हुए प्राण छोड़ना भी बड़ा भयानक है। मेरी स्त्री तथा मैं, दोनों ही शोकाकुल बैठे थे कि उसके दो-तीन घंटे बाद प्रात -काल होने के पूर्व पुलिस-नायक ने आकर मुझे गिरफ्तार किया। अपनी स्त्री की दशा देख मैंने पुलिस नायक से अति विनम्र शब्दों में प्रार्थना की कि मुझे इस शव की अन्त्येष्टि-क्रिया तक यही रहने दीजिये, और मैं शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि निश्चित समय पर मैं स्वयं कारागार के द्वार पर उपस्थित हो जाऊंगा। पर उसने एक भी न मानी और मैं उसी रात्रि को लियान्स भेज दिया गया।

एलसी रेकलस् तार पाते ही आगये और उन्होंने शव की अन्त्येष्टि-क्रिया यथाविधि पूर्ण करादी। उस समय उस शव के साथ ग्राम के आधे से अधिक मनुष्य एकत्रित थे, क्योंकि वे सभी मेरी स्त्री के साथ अपनी अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिए लालायित हो रहे थे। और साथ ही साथ उत्सुक थे इस बात को भी स्पष्ट कर देने के लिए, कि उनका हृदय हमारे साथ है नकि निरकुश शासकों के।

मेरे अभियोग के समय में सहस्रों ग्रामीण भाई दूर दूर से लियान्स आकर मेरे मुकद्दमे की पूरी कार्रवाई जानने के लिए पत्रों को स्वयं ख़रीद ले जाते थे। दूसरी घटना जिसने

कि मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव डाला, यह थी कि हमारे लंदनस्थ एक मित्र ने अपने मित्र को प्रचुर मात्रा में धन दे मेरी जमानत के लिए लियान्स भेजा। पर, उसके हृदय को बड़ी ही निराशा हुई, जबकि मैंने प्रेम से पुलकित हो उससे कह दिया—"भाई! अब इसकी आवश्यकता नहीं, जब कि मेरे इतने मित्र जेल में नाना प्रकार के दुखों को झेल रहे हैं।'

फ्रांस सरकार बहुत दिनों से इस बात की खोज में थी, कि वह कोई ऐसा अभियोग चला सके, जिससे कि प्रजा पर भयोत्पादक गहरा प्रभाव पड़े। वह हम सब लोगों को किसी विशेष षडयन्त्र में फँसाना चाहती थी। उस दशा में मामला जूरी के समक्ष होता, जहाँ से कि हमारे साफ छूट जाने की आशा थी। अतः विवश हो, उसने विशेष पुलिस कानून के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय-मजदूर-सघ के सदस्य बनाने के अपराध में मेरा चालान कर दिया। इस प्रकार सन् १८८३ ई० में जनवरी के आरम्भ में हम लोगों का अभियोग लियान्स ही में प्रारम्भ हुआ, और लगभग १५ दिन में समाप्त हो गया। पुलिस की ओर से केवल एक गवाह था जोकि लियान्स पुलिस का प्रधान था। उसकी साक्षी वास्तव में सत्य थी। उसका कहना था कि अनार्किस्टों ने प्रजा अपने हाथ में करली है, कोई भी अन्य विचार रखने वाला उनके कारण सार्वजनिक सभा नहीं कर सकता। कारण यह है कि सभा आरम्भ होते ही ये लोग साम्यवाद की तान छेड़ देते हैं, जिससे कि प्रजा इन लोगों के अतिरिक्त किसी की भी नहीं सुनती।

हम लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी होने के अपराध में सजायें देदी गईं। हम में से मुख्य चार आदमियों को तो

पाँच-पाँच वर्ष का कारावास और चार-चार सौ डालरों के जुर्माने का दण्ड मिला। शेष अभियुक्तों को १ से लेकर ४ वर्ष तक के कारावास का दण्ड दिया गया।

पर फ़ैसले में कोई भी बात ऐसी न थी, जिस पर कि न्यायाधीश ने अपना आधार स्थिर किया होता। फ्रांस के सरकारी पत्रों के अतिरिक्त कोई भी ऐसा पत्र वहाँ का न था, जिसने मजिस्ट्रेट के निर्णय की निन्दा न की हो। इस प्रकार उस मुकद्दमे में जनता की दृष्टि से हम लोगों ही ने सरकार पर नैतिक विजय प्राप्त की। थोड़े दिनों बाद हम लोगों के मुक्त कर देने का प्रश्न चेम्बर में उठ खड़ा हुआ। प्रथम बार १०० वोट हमारे पक्ष में थे। इस भाँति प्रति वर्ष इसकी चर्चा अधिकाधिक तीव्रता के साथ चेम्बर में उत्पन्न हुआ करती थी। यहां तक कि वह चर्चा बहुमत के कारण इतनी प्रबल हो गई कि हम लोग अन्त में छोड़ ही दिये गये।

जेलों की खराबियां

अभियोग समाप्त हो जाने पर भी मैं दो-तीन महीने लियान्स कारागार ही में रक्खा गया। हमारे मित्रों ने हम लोगों की अपील करदी थी, जिसके निर्णय के लिए हम लोग वहाँ पर और भी अधिक रोक लिये गये थे। पर, हम तीन-चार साथियों ने तो अपील में किसी भी प्रकार का भाग लेने से अनिच्छा प्रकट कर दी थी। पर उतने ही समय तक लियान्स में ठहरने से मुझे इस बात का पूर्णाभास होगया कि ये कारागार वास्तव में क़ैदियों पर कैसा बुरा

प्रभाव डालते हैं। लियान्स का कारागार सितारे के सदृश एक नये ढङ्ग का बना हुआ था। रेशम निकालना वहाँ का एक प्रधान कार्य्य था। बहुधा बालकों के समूह भी इसी काम में जुटा दिये जाते थे। घोर परिश्रम करते करते वे बालक अत्यन्त निर्बल हो जाते हैं। उनकी आत्माओं का खून हो जाता है और वे इस संसार में फिर किसी भी काम के नहीं रहते। शोक! उन बालकों का स्वभाव प्रख्यात चोर डाकुओं के पास रहते रहते कैसा मलीन हो जाता है। इस प्रकार जेल में शैशव काल में कैद हुए बालकों का तो सत्यानाश ही हो जाता है।

दूसरी बात, जोकि न्यायाधीशों एवं कानून बनाने वालों ने कभी भी नहीं सोचा, मेरे हृदय में यह उत्पन्न हुई कि कारागार भेजे जाने का यह दण्ड वास्तव में बहुत सी दशाओं में उन अपराधियों के लिए इतना कठोर प्रमाणित नहीं होता, जितना कि वह बहुधा उन निरपराध मनुष्यों के लिए प्रमाणित हो जाता है जोकि निःसहाय घर पर तड़पते हुए रह जाते हैं। उदाहरणतः हमारे साथियों को ही ले लीजिये जिनमें से अधिकांश श्रमजीवी थे। उनके बन्दीगृह में बन्द हो जाने से उनकी वृद्धा माता और असहाय बाल-बच्चे, जोकि घर पर रह गये, अब क्यों कर अपना जीवन निर्वाह करें? इस कारण मैं तो कहूँगा कि बहुत सी दशाओं में प्रायः घरों पर असहाय अबलाओं को ही अधिक निरपराध दण्ड भोगना पड़ता है।

अपराधी को भी नाना प्रकार के मानसिक एवं शारीरिक दुःख झेलने पड़ते हैं, पर जिस तरह कि एक रोगी को बहुत काल तक एक ही रोग से पीड़ित रहने के कारण धीरे धीरे उसके सहन करने का अभ्यास हो जाता है, ठीक इसी प्रकार

क्लेशों को झेलते-झेलते वह उन सब का आदी बन जाता है और फिर वे ही क्लेश उसे भविष्य में इतने दुखदाई प्रतीत नहीं होते। पर वे निरपराध प्राणी निरर्थक ही दुःख पाते हैं, और उस अपराधी की अपेक्षा उनके साथ ही घोरतम अन्याय हो जाता है। किन्तु हम लोग नियमों के प्रवाह में ऐसे बहे चले जारहे हैं कि उस नित्यप्रति होने वाले अन्याय के विषय में तनिक भी विचार नहीं करते।

सन् १८८३ ई० के मार्च मास में हम ७१ साथी क्लेरवाक्स की सदर जेल में भेज दिये गये। जब तक हम लोग लियान्स में रहे तब तक हम सब अपने ही वस्त्रों को पहनते तथा भोजन भी स्वयं मोल लेकर खाते थे। पर क्लेरवाक्स में हम लोगों के साथ कैसा बर्ताव होगा यह किसी को न मालूम था। किन्तु वहां पहुँचते ही यह विदित हो गया कि हम लोगों को वस्त्र भोजनादि में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होगी, एवं हम लोगों के निवास-स्थान भी प्रचुर वायु-सचारित एवं स्वच्छ होंगे। गवर्नर का हम लोगों से यह भी कहना था कि यदि आप में से कोई शारीरिक परिश्रम करके धनोपार्जन करना चाहे, तो वह अमुक अमुक कार्य्य भी कर सकता है। वार्डर भी अतीव विनम्र थे। मेरी कोठरी के सामने एक छोटा सा उद्यान था। किन्तु इन सब सुभीतों के लिए मुझे अपने अंग्रेज दोस्तों का भी अधिकांश में कृतज्ञ होना पड़ेगा, क्योंकि हमारे जेल जाते ही उन्होंने फ्रांस सरकार के नाम एक प्रार्थनापत्र हमारी मुक्ति के लिए भेज दिया। उनका (Encyclopaedia Britanica) ब्रिटेन विश्व-कोष का काम इनसे बहुत हो रहा है, अतः इनको

मुक्त कर दीजिये। फ्रान्स की प्रजा भी हम लोगों के साथ बहुत ही सहानुभूति प्रकट कर रही थी।

क्लेरवास्स की जलवायु अधिक नम है। इस कारण उपरोक्त सुभीतों के होते हुए भी मुझे मलेरिया और शीतादि रोगों ने प्रथम वर्ष के ही अन्त से आ घेरा। इन समाचार को पाते ही मेरी स्त्री, जोकि विज्ञान की सर्वोच्च परीक्षा के लिए फ्रांस में अध्ययन कर रही थी, सब काम-काज छोड़ क्लेरवास्स में आकर, जेलखाने के समीप एक छोटी सी कोठरी लेकर रहने लगी। निस्सन्देह उसका जीवन उस छोटी सी कोठरी में, जिसके सामने ही जेलखाने की एक ऊंची दीवार खड़ी थी, बड़ा कष्टोत्पादक होगा। पर प्रेम की गति विचित्र है, अत: जब तक कि मैं उस कारागार से नहीं छोड़ दिया गया, वह बराबर नाना प्रकार के क्लेशों को सहती हुई वहीं बनी रही।

प्रथम वर्ष तो मुझसे भेंट करने का नियम दो मास में एक ही बार का रहा और वह भेंट भी जेल अध्यक्ष के सामने हुआ करती थी, परन्तु जब अधिकारियों को यह ज्ञात हुआ कि मेरी स्त्री क्लेरवास्स ही में रहने लगी है, तब तो उससे नित्य-प्रति मिलने की आज्ञा प्राप्त होगई। इस भांति हम दोनों नित्य ही जेल के अन्दर एक छोटी सी कोठरी में सिपाहियों की देख रेख में मिला करते थे। धीरे धीरे हम दोनों को यहां तक अनुमति प्राप्त होगई कि सन्ध्या के समय जेल के अन्दर गवर्नर के भी उद्यान में टहलने लगे।

क्लेरवास्स के कारागार में इतने दिन ठहरने से मुझे इस बात का भी पता चल गया कि फ्रांस के कारागारों के नियम अंग्रेजों के कारागारों से तो भी उत्तम हैं। यहां पर कैदी को

काठ का फटा-फटाया तख्ता या चटाई का टुकड़ा सोने को नहीं दिया जाता, जैसा कि अंग्रेजी कारागारों में हुआ करता है। आजा-सगादि दोषों के अपराध में भी उन पर इतनी निर्दयता का व्यवहार नहीं होता था, जितना कि अब भी अंग्रेजों के कारागारों में बेतों के प्रहार आदि से हुआ करता है। पर इतना सब होते हुए भी क्रोस्त्राक्स कारागार का परिणाम समाज के लिए उतना ही अहितकर होता था, जितना कि वह अन्यत्र कहीं भी पुराने ढंग के कारागारों में होता है। आज-कल यह बात भी बहुधा सुनने में आती है कि कैदी कारागारों में सुधर जाते हैं, पर मैं तो कभी भी ऐसी झूठ बात कहने को तैयार न होऊँगा, वरन् इसके विपरीत यही कहूँगा कि ये सब बातें पागलपने की हैं। क्रोस्त्राक्स में साधारण कैदियों के काम करने का स्थान मेरे निवास-स्थान के नीचे ही था, अस्तु, उनसे भी जब कभी बातें हो जाया करती थीं

मुझे उस समय की एक बुड्ढे की वे बातें नहीं भूलतीं, जिनको कि वह जेल से छूटते समय कहने लगा कि— 'भाई मैं स्वयं जानता हूँ कि मैं अभी दो-चार सप्ताहों में पुनर्वार यहाँ लौट कर आजाऊँगा। यहा से मुक्त होने पर जब मैं बाहर जाऊँगा, तो इस संसार में कोई भी ऐसा प्राणी न होगा, जोकि मुझे इस बुढापे में आश्रय दे। मैं कौन सा व्यापार कर सकूंगा? और मेरी कौन सुनेगा? तब यदि कोई भी स्थान मेरे लिए बैठने को होगा, तो उन्हीं पुराने साथियों की झोपड़ियों में। वहाँ पहुँचते ही मैं पुनः किसी घात के विचार में लग जाऊंगा तथा किसी न किसी धनी के यहा छापा मारने को उत्साहित किया जाऊंगा। अतएव कुछ अपनी आत्मा की

निर्बलता मे एवं कुछ उनके कहने से मैं उसी कार्य्य मे तल्लीन हूँगा; और फिर कहीं बन्दीगृह मे बन्द दिखाई पड़ूंगा।"

वास्तव में कारागार मे पडे हुए बुड्ढो की अवस्था बडी ही शोचनीय होती है। उनमें बहुत से तो ऐसे होंगे, जोकि अपना जीवन अपनी तरुणाई या उससे भी पूर्व से जेलों ही में व्यतीत कर रहे होंगे। इस प्रकार मेरा यह कहना अनुचित न होगा कि एक बार जेल में; तो सदैव ही जेल में।

कारागार वास्तव मे विविध प्रकार के विजातीय जीवो का निवास-स्थान है, और यह कहना कि वहाँ पर सामाजिक भावो की शुद्धि हो जाती है, नितान्त ही असत्य होगा, वरन् इसके विपरीत यह निश्चयात्मक कहा भी जा सकता है कि ये संस्थाएं तो एक रूप से ऐसी बुराई की जन्मदात्री यों ही बन रही हैं। प्रत्येक मनुष्य इस बात से अवगत है कि विद्या के अभाव से, नियमित रूप से किसी कार्य्य को न करने की इच्छा से, धनहीन हो जाने से, अथवा जुआ, चोरी व ऐसे ही अन्य दोषों में लिप्त हो जाने के कारण ही मनुष्य साधारणतः बन्दीगृह में डाला जाता है। पर दुःख की बात तो यह है कि इन जेलों में भी आकर उनकी सामाजिक दशा नहीं सुधरती, वरन् वहां पर उनको उन्हीं बातों के सीखने का अवसर प्राप्त होता है, जिनके कारण वे जेलों में पड़े हुए हैं।

प्राणी के साथ वहाँ पर सहानुभूति एवं दया के भाव प्रकट कर सके। इस प्रकार उसकी मानसिक उन्नति का होना तो असम्भव ही है, कारण कि पारस्परिक साहाय्य एवं कृतज्ञता प्रकाशित करने आदि के उन प्राकृतिक नियमों को व्यवहार रूप में लाने का सौभाग्य तो उसे कभी भी प्राप्त नहीं होता, जोकि ऐसी उन्नति के लिए परमावश्यक है।

जब मैं साईबेरिया में १९ वर्ष की अवस्था में सरकारी पद पर नियुक्त था, तब बहुधा जेलों की गन्दगी देख देख कर मैं यह सोचा करता था कि यदि ये जेल अधिक खुले हुए एवं स्वच्छ हो जावें, तो इनसे बड़ा ही उपकार हो सकता है। पर, वह भ्रम अब दूर हो गया और मैंने भली भांति समझ लिया कि स्वच्छ से स्वच्छ एव खुले हुए कमरों से युक्त वन्दीगृह भी अपना विषला प्रभाव डाले विना नहीं रह सकता। अतः किसी भी अवस्था में इन कारागारों से सुधारों की आशा करना भ्रम-मूलक होगा। चोर, डाकू, जेबकट और ऐसी ही प्रकृति वाले, जोकि अपनी आयु के कई वर्ष यहाँ व्यतीत कर चुके हैं, कभी भी अपनी कार्रवाइयों को त्याग नहीं सकते। विशेष कर जेल में तो वे अपने स्वभावानुकूल मनुष्यों में रहते रहते और भी अधिक निपुण हो जाते हैं। इस भांति जब वे मुक्त होकर बाहर आवेंगे, तब उनको किसी से न तो सहानुभूति होगी और न उन्हें समाज का ही भय चिन्तित करेगा। अतः निःशंक होकर वे और भी गर्हित एवं साहसी कार्य्य करने को तत्पर होंगे। सन् १८८६ में 'रूसी और फरासीसी कारागारों में' नाम की पुस्तक लिख कर मैंने स्पष्ट प्रकट कर दिया है कि ये वन्दीगृह गुनाहों की यूनिवर्सिटियाँ हैं, जिनका कि

और वह यह थी कि इन कारागारों के अतिरिक्त ये संक्रामक दोष-सम्पन्न घोंसले, जोकि अदालतों (Law Courts) के नाम से विख्यात हैं, कैसे विचित्र हैं और उनका प्रभाव उनके आसपास एकत्रित होने वाले जन-समुदाय पर कैसा भयानक पड़ता है।

व्यवस्थापकों ने नियम बनाते समय बहुत प्रकार के जरायमपेशा (Criminal Type) निश्चित किये हैं, जिनको कि वे केवल जेलस्थ प्राणियों ही में देखते हैं। किन्तु, यदि उन्होंने उनको और भी पहचानने के लिए अपना दृष्टिपात अदालतों की ओर किया होता तो उसकी चहार दीवारी के भीतर-बाहर घूमते हुए नाना प्रकार के गुप्तचर, जासूस, वकील एवं भोले-भाले मनुष्यों का आखेट करने वाले उनको इतने अधिक दृष्टि पड़ते कि जरायम पेशागीरों की सीमा भौगोलिक हिसाब के अनुसार उनको बन्दीगृहों की दीवारों से और भी अधिक दूर तक बढ़ा देनी होती।

मैं इन सब बातों को जानता था। किन्तु जेल जाने के पूर्व वर्तमान दण्ड देने की प्रथा के बारे में मेरा यह विचार था कि समाज कहीं पर भ्रान्ति में है। पर वहां से लौट आने के पश्चात् मुझे ज्ञात होगया कि समाज उस प्रथा के सम्बन्ध में केवल भ्रान्ति ही में नहीं है, वरन् यह उसकी मूर्खता भी है कि वह अज्ञानावस्था में तथा कुछ अंशों में स्वतः ही अपने को अज्ञानता की दशा में रखे हुए उन कुरीतियों की यूनिवर्सिटियों को अपने ही व्यय से स्थापित किये हुए है। और वह भी केवल इस भ्रम में कि वे संस्थायें मनुष्य की अपराधिनी पशु बुद्धि के लिए बागडोर का काम दे रही हैं।

खुफ़िया पुलिस।

प्रत्येक क्रान्तिवादी के पीछे उसके मार्ग में रुकावट डालने को कुछ न कुछ गुप्तचर हुआ ही करते हैं, अस्तु, मेरे साथ भी वे यथेष्ट संख्या में बने ही रहते थे। समस्त राज्य ऐसे गुप्तचरों को जीवित रखने के लिए प्रचुर धन व्यय किया करते हैं। वे लोग विशेष कर नवयुवकों के लिए बड़े भयंकर होते हैं। इन लोगों की भरती उन अधम चरित्रहीन मनुष्यों में से हुआ करती है, जोकि एक प्रकार से समाज के व्यर्थ भाग हैं। और यदि कोई सावधानी से इन मनुष्यों के नैतिक आचरणों पर दृष्टिपात करेगा तो उसको स्वयं ही अवगत हो जायगा कि इन मनुष्यों के आचरणों में कोई न कोई ऐसी बात अवश्य ही मिश्रित है, जिससे कि हृदय को क्षोभ होता है। पहले पहल जब मैं जेनेवा पहुँचा, तो उस समय के सरकारी दूत को जोकि हमारे निरीक्षणार्थ वहां भेजा गया, हम सब भली प्रकार पहचानते थे। पर ज्यों ज्यों रूस में भाग भाग कर नवयुवक वहां आने लगे, त्यों त्यों गुप्तचरों की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती गई। किसी न किसी तरह हम लोग उन्हें भाप ही लेते थे। नवीनागन्तुक के आते ही हम सब निहिलिस्टों की रचना से उसके भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान इतिहास की पूछ-ताछ करने लगते थे, जिससे तुरन्त ही ज्ञात हो जाता था कि वह मनुष्य कैसा है! साथ ही मित्रता स्थापित होने के पूर्व यह परमावश्यक है कि खुले तौर पर सब बातें निष्कपट भाव से हो जाएँ।

बहुसंख्यक मनुष्य इस प्रकार वहां आये और उनसे बातचीत होते ही रहस्य खुलने पर शत्रुता एवं मित्रता हो गई। पर एक गुप्तचर को भी इस बात का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ कि वह हमारे संगठन में प्रवेश कर सके, यद्यपि कि बहुतों ने इस बात का प्रयास अनेक रूप से किया।

मुझे स्मरण है कि जब मैं क्लेरन्स नगर में रेक्लस के साथ साथ काम कर रहा था, तब एक सन्देहजनक मनुष्य हमारे मध्य में आने जाने लगा। उसकी आकृति देखते ही हम सब उससे चौकन्ने रहने लगे। पर जब वह इस तरह अपना काम न कर सका, तो उसने मुझे एक दिन पत्र दिया कि मैं अमुक स्थान पर आप से मिलना चाहता हूँ। मैंने भी कौतूहलवश उसे स्वीकार कर लिया और एक सुहृद को समीप में छिपा कर निश्चित स्थान पर पहुँच गया। पर किसी प्रकार उसे हमारे अकेले न होने का समाचार मिल गया और वह वहां न आया। कुछ दिन पश्चात् पता चला कि वह थर्ड सेक्सन (तृतीय विभाग) का एक विशेष गुप्तचर है, जोकि नित्यप्रति झूठे-सच्चे समाचार यहाँ से भेजा करता है। मुझे अपने जीवन-काल में नाना प्रकार के गुप्तचरों से काम पडा। जब कभी उनके कृत्य मनोरंजक एवं उनकी मानसिक दुर्बलता के भी सूचक हुआ करते हैं। एक समय की बात है कि मैं रेक्लस् के साथ क्लेरन्स नगर ही में रहकर जेनेवा से प्रकाशित होने वाले एक अख़बार का सम्पादन कर रहा था। इस कारण प्रत्येक पक्ष में एक बार मैं वहाँ जाता था, ताकि पत्र को अपने ही सामने प्रकाशित करा आऊं। एक दिवस मैं वहाँ पहुँचा ही था कि मुझे सूचना मिली कि एक महानुभाव मुझसे मिलना

चाहते हैं। उनका कहना था कि यदि एक क्रान्तिकारी पत्र रूसी भाषा में निकाला जावे तो वे सर्वस्व अर्पण करने को तैयार हैं। उन्होंने अपना नाम टोनहेलम बतलाया और वे अपना निवास-स्थान बालटिक प्रान्त की ओर कहीं बतलाते थे। उन्होंने अपनी बातों में कई बार रूसी सरकार की तीव्र आलोचना करते हुए कहा कि हमारे पास प्रचुर धन एवं बहुत सी पृथ्वी है। वास्तव में उसने अपना कार्य्य बड़ी ही योग्यता से सम्पादन किया, यहा तक कि हमारे कुछ मित्र उसकी सच्चाई पर विश्वास करने को तैयार होगये, पर मेरे हृदय में उनकी ओर से विश्वास न होता था।

वहाँ से उठ कर हम सब उसके निवास-स्थान पर गये। वहां जाते ही हमारी दृष्टि यकायक उसकी मोमबत्ती और मोमबत्तीदान पर पड़ी जोकि इस प्रकार की निकृष्ट एवं गाठ-गंठली थी, कि निर्धन पुरुष भी उसे कदाचित् अपने घर में न रखते। कुर्सियों पर पर्दे नोंच डालने के चिन्ह तक बने हुए थे।

"जरूर जरूर ऐसा ही होना चाहिये। जब कभी मैं कोई सम्मति दे दूगा और उसे रूस मे छिपे-चोरी पहुँचाने के काम में सहायता देना चहूँगा।"

"नहीं नहीं ऐसा कुछ न होगा। आप कृपया मुझसे पुनर्वार मिलें भी नही।" उस समय मेरे कुछ मित्रों का कहना था कि मैंने उसके साथ अधिक कठोरता का बर्ताव किया। पर इस घटना के कुछ ही काल अनन्तर सेन्ट पीटर्सबर्ग का एक पत्र हमारे पास आया कि "टोनहेलम" नामक गुप्तचर वहा आपके पास पहुँचा होगा, जोकि प्रचुर धन का प्रलोभन देकर एक क्रान्तिपत्र के लिए आग्रह करेगा। आप सब उससे बचे रहना।"

पाठक गण! इस घटना से स्वय अनुमान कर सकते है कि फ्रांस तथा रूस की सरकारें इस प्रकार कितना अपव्यय किया करती हैं। यदि मैं इन गुप्तचरों की कहानिया सुनाने लगूं तो कदाचित् अध्याय के अध्याय लिखे जा सकते हैं, पर अधिक न कह कर मैं केवल एक घटना आपको और सुनाऊगा जोकि क्लेरवाक्स मे हुई थी। यह तो आप लोगों को अवगत ही है कि मेरी बीमारी के समाचार सुन कर मेरी स्त्री क्लेरवाक्स ही में सराय की एक छोटी सी कोठरी को लेकर रहने लगी थी। एक दिन की बात है कि सराय की मालकिन मेरी स्त्री के समीप आकर कहने लगी कि उससे दो सज्जन पुरुष मिलना चाहते हैं। साथ ही वह हर तरह उन मनुष्यों की प्रशंसा करती हुई कहने लगी, "देवी! मैं भी ससार का अनुभव रखती हूं। आप विश्वास रखिये वे बड़े धनी एवं साधु चरित्र प्रतीत होते हैं। इस समय वे अफ्रिका को किसी कार्य्यवश जा रहे

हैं, अत उनकी इच्छा है कि आपसे मिलने जावें, क्योंकि वे दोनों आपसे भली भांति परिचित हैं।" मेरी स्त्री ने जो उनके पत्र को देखा तो वह एकदम व्याकरण की अशुद्धियों से भरा पड़ा था, सन्देह होते ही उसने एकदम उनसे मिलना अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात् वह बेरन (धनी पुरुष) मेरी स्त्री के पास चिट्ठियों पर चिट्ठियां भेजने लगा जिनको कि वह बगैर खोले ही वापिस कर देती थी। शनैः शनैः यह बात चारों ओर फैल गई। कुछ लोगों का तो कहना था कि मेरी स्त्री बड़ी ही निर्दय स्वभावापन्न है। बेरन उसे उसके शैशवकाल से जानता है। वह उसके साथ अनेकों नाट्यशालाओं में नृत्य कर चुका है। उसके बालक को भी जानता है। उसकी आयु भी ६ वर्ष की बतला रहा है। तो फिर बेरन की भेंट होनी चाहिए। उसका धर्म है कि वह बेरन से मिले, विशेष कर जब कि वह इसी लिए यहां ठहरा हुआ है। दूसरा पक्ष जोकि हमारी स्त्री के पक्ष में था, बेरन को पाखण्डी एवं झूठ बोलने वाला बतलाता था। उस पक्ष के लोगों का कहना था कि यदि सचमुच उसके कोई बालक होता तो वह मेरी अवस्था में अवश्य ही प्राप्त होता। किन्तु बेरन बराबर हठ पूर्वक कह रहा था कि इसके एक बालक अवश्य है, पर न जाने ये उसे क्यों छुपाये हैं। पर, इस झगड़े से इसको यहां बात का ज्ञान हो गया, और मैं यह भी जान गया कि मेरे पत्र मेरे अधिकारी ही नहीं वरन् ये छुपकर भी पढ़ा करते हैं।

पत्र भेजा था कि "हमारा बालक बहुत ही प्रसन्न है। उसका स्वास्थ्य भी अति उत्तम है। कल सन्ध्या को हम सब ने उस की पञ्चम वर्ष गाठ बडे हर्ष एव उत्साह से मनाई।' मैं तो पत्र पाते ही समझ गया था कि इनका अभिप्राय इन शब्दों से "ला रिवोल्टी" नामक पत्र की वर्षगाठ से है। कारण कि बहुधा हम लोग अपने इस प्रिय पत्र को "अपने नटखट बालक" के नाम से पुकारा करते थे।

बस, उक्त पत्र के आधार पर ही बेरन साहब ये बातें ग्राम-निवासियों से कह रहे थे। हमारे पक्ष के उसको अत्यन्त सदिग्ध पूर्ण दृष्टि से देखने लगे। इस प्रकार कार्य्य सफल होते न देख बेरन साहब ने मेरी स्त्री को एक दूसरे ही आशय का पत्र देने का विचार किया कि "यद्यपि मैं वास्तव मे आप से परिचित नहीं हूँ, पर एक बहुत ही रहस्य की बात आपसे कहनी है। आप के पति के प्राण सकट मे हैं, आपको मिलकर कुछ चेतावनी देना चाहता हूँ।" यह पत्र लिखकर बेरन और उसके साथी उस पर विचार करते करते बाहर घूमने चले गये। मार्ग में वादाविवाद होने से वे दोनों झगड़ने लगे, और अन्त में वह पत्र फाड कर फेंक दिया गया। इन सब बातों को एक अन्य व्यक्ति दूर से देख रहा था और उनके नजर से ओझल होते ही वह उन सब पर्चों को मिलाकर पढने लगा तो बेरन की सब पोल खुल गई। एक ही घटे के अन्दर यह समाचार विद्युत सदृश समस्त ग्राम में फैल गया। बेरन के पक्ष वाले शिर नीचा कर अतीव लज्जित हुए। फलस्वरूप बेरन और उसके साथी को अन्त में ग्राम छोडना ही पडा। इस भांति हमने आपको उन गुप्तचरों की अनेक लीलाओं

में से कुछेक सुनाईं। किन्तु, जब कोई यह विचार करे कि किस प्रकार से सरकारी वेतनोपभोगी ये धूर्त जब कभी अपनी धूर्तताओं के कारण पुरस्कार भी पाते हुए संसार में विचरते हैं, भोले-भाले मनुष्यों को माया-जाल में फसाते हैं, एवं किस प्रकार से ये अखिल संसार की सरकारें समाज को अधम श्रेणी के जीवों के पोषणार्थ रुपये को पानी की तरह बहा देती हैं, जिसके कारण समाज में अगणित कुरीतियों का समावेश हो जाता है, तो वह अवश्य ही इस प्रकार से उत्पन्न होने वाली बुराइयों की बाहुल्यता देखकर भय से व्याकुल हो उठेगा।

लाउसी मिकेल

को खिलादी। बस, इसी कारण डाके के अपराध में उसे ६ वर्ष के कठिन कारावास का दण्ड मिला। उस समय लाउसी मिकेल इतनी सर्वप्रिय हो रही थी कि उसकी गिरफ्तारी होते ही उसके साथ और भी सब अराजकों को छोड़ देने के प्रश्न ने फ्रांस में इतनी हलचल मचादी कि सन् १८८५ ई० के शरद्‌काल में तीन मनुष्यों और लाउसी मिकेल के अतिरिक्त हमारे सब साथी मुक्त कर दिये गये। अब तो मेरी और लाउसी मिकेल की रिहाई के लिए और भी तीव्रता के साथ घोर आन्दोलन मचाया जाने लगा। एलेक्जेन्डर तृतीय हमारे छोड़े जाने के विपक्ष में थे। फ्रांस के मन्त्री ने भी एक दिन भाषण देते हुए कहा कि "क्रोपाटकिन की मुक्ति के मार्ग में मुझे बहुत सी बाधायें दृष्टि पड़ती हैं। पर, लोकमत के सामने फ्रांस सरकार को झुकना ही पड़ा और सन् १८८६ के जनवरी मास में लाउसी मिकेल और हम चारों मनुष्य मुक्त कर दिये गये। मेरे छूट जाने से एक प्रकार से मेरी स्त्री भी बन्धन मुक्त होगई, जोकि अपने आपको स्वयं एक छोटी सी कोठरी में कैद किये हुए थी। उसके स्वास्थ्य को बिगड़ा हुआ देखकर मैं कुछ सप्ताहों के लिए अपने मित्र एलसी रेक्लस् के पास पेरिस चला गया, जोकि मनुष्य-शरीर की बनावट की विद्या (Anthropology) में अतीव निपुण थे। उस समय पेरिस में एक अत्यन्त सजीव साम्यवादी तथा अनारकिस्ट (अराजक) आन्दोलन हो रहा था।

लाउसी मिकेल नित्य-प्रति सन्ध्या समय व्याख्यानों द्वारा मजदूरों तथा मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को उभाड़ रही थी। होते होते वह इतनी सर्वप्रिय होगई कि उसका प्रभाव यूनिवर्सिटियों के छात्रों तक पर पड़ने लगा। विद्यार्थी समुदाय

उसके व्यक्तिगत गुणों पर मोहित हो रहा था। यहां तक कि एक दिन विपक्षियों से उसकी मुठभेड़ होगई जिसमें कि कुर्सी, मेजों को फेंकने तक की नौबत आगई। उन्हीं दिनों मैंने भी एक व्याख्यान कई सहस्र मनुष्यों की उपस्थिति में अराजकता पर दे डाला। पर इसके प्रथम कि मुझे वहां से तुरन्त निकल जाने को आज्ञा मिले, मैं स्वयं ही लंदन चला गया, जहां पर मुझे अपने पुराने मित्र स्टेपनायक तथा चेकोवस्की से पुनर्वार भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहां से चलकर हम हेरो नामक ग्राम में रहने लगे।

संसार से सदैव के लिए यकायक पयान कर गया। इसके पूर्व उसके नैराश्य भावों से परिपूर्ण कई एक पत्र मुझे मिले थे और जिस बात का भय मुझे सता रहा था, वह मेरे सामने इतनी शीघ्र आगई। कई महीनों तक मेरी झोपड़ी पर विषाद के काले बादल उमड़ते रहे, जिनके प्रभाव को हटाने में एक नवीन ज्योति के प्रादुर्भाव ने बड़ा ही योग दिया, वह नवीन ज्योति मेरी कन्या थी, जिसका नाम मेरे भाई के ही नाम पर रक्खा गया।

इंगलैंड में साम्यवाद

सन् १८८२ ई० में इंगलैंड में साम्यवादी आन्दोलन अपने पूर्ण उरूज पर था। मुख्य मुख्य नगरों के अनेक मजदूर और मध्यम श्रेणी के नवयुवक भी खुल्लमखुल्ला उसमें भाग ले रहे थे। उस वर्ष प्रायः बहुत से व्यापारों में एक औद्योगिक तहलका मच रहा था। प्रत्येक दिन प्रातःकाल और बहुधा समस्त दिन पर्य्यन्त मजदूरों के झुण्ड के झुण्ड सड़कों पर घूम घूम कर यह कहते हुए कि "हमारे पास कोई काम करने को नहीं है, रोटियां मांगते फिरते थे।" रात के समय वे ट्रैफालगर और स्क्वायर (Trafalgar and Square) में वायु और जल से अरक्षित मैदानों में एकत्रित होते और वहीं रात बिताते थे। एक दिन फरवरी के महीने में बर्नस्, हिन्डमैन, शेम्पयन नामी वक्ताओं के व्याख्यान सुनने के बाद उनका एक झुण्ड पिकेडिली (Picadilly) में घुस गया और वहां जाकर बड़ी बड़ी दूकानों की कुछेक खिड़कियाँ तोड़-फोड़ दीं।

पर इस असन्तोष के उभाड़ से भी कहीं अधिक महत्व-पूर्ण लंदन की सीमान्तर्गत रहने वाले अपराधियों का उत्साह था, जोकि इतना प्रबल हो गया, कि यदि आन्दोलन के नेताओं को जिन पर कि बलवा करने का अभियोग चल रहा था, सपरिश्रम कारावास का दण्ड दे दिया जाता, तो परस्पर घृणा और बदले के भाव की मात्रा इतनी बढ़ जाती जैसी कि इंगलैंड में मजदूरों के इतिहास में पहले कभी न देखी गई थी, और इसका प्रभाव आगामी आन्दोलनों पर बहुत काल तक स्थिर रहता।

संसार से सदैव के लिए यकायक पयान कर गया। इसके पूर्व उसके नैराश्य भावों से परिपूर्ण कई एक पत्र मुझे मिले थे और जिस बात का भय मुझे सता रहा था, वह मेरे सामने इतनी शीघ्र आगई। कई महीनों तक मेरी झोपड़ी पर विषाद के काले बादल उमड़ते रहे, जिनके प्रभाव को हटाने में एक नवीन ज्योति के प्रादुर्भाव ने बड़ा ही योग दिया, वह नवीन ज्योति मेरी कन्या थी, जिसका नाम मेरे भाई के ही नाम पर रक्खा गया।

इंगलैंड में साम्यवाद

सन् १८८२ ई० में इंगलैंड में साम्यवादी आन्दोलन अपने पूर्ण उरूज पर था। मुख्य मुख्य नगरों के अनेक मजदूर और मध्यम श्रेणी के नवयुवक भी खुल्लमखुल्ला उसमें भाग ले रहे थे। उस वर्ष प्राय: बहुत से व्यापारों में एक औद्योगिक तहलका मच रहा था। प्रत्येक दिन प्रातःकाल और बहुधा समस्त दिन पर्य्यन्त मजदूरों के झुण्ड के झुण्ड सड़कों पर घूम घूम कर यह कहते हुए कि "हमारे पास कोई काम करने को नही है, रोटियां मांगते फिरते थे।" रात के समय वे ट्रैफालगर और स्क्वायर (Trafalgar and Square) में वायु और जल से अरक्षित मैदानों में एकत्रित होते और वहीं रात बिताते थे। एक दिन फरवरी के महीने में बर्न्स, हिन्डमैन, शेम्पयन नामी वक्ताओं के व्याख्यान सुनने के बाद उनका एक झुण्ड पिकेडिली (Picadilly) में घुस गया और वहां जाकर बड़ी बड़ी दूकानों की कुछेक खिड़कियाँ तोड़-फोड दी।

पर इस असन्तोष के उभाड से भी कहीं अधिक महत्व-पूर्ण लंदन की सीमान्तर्गत रहने वाले श्रमजीवियों का उत्साह था, जोकि इतना प्रबल हो गया, कि यदि आन्दोलन के नेताओं को, जिन पर कि बलवा करने का अभियोग चल रहा था, सपरिश्रम कारावास का दण्ड दे दिया जाता, तो परस्पर घृणा और बदले के भाव की मात्रा इतनी बढ़ जाती जैसी कि इंगलैंड में मज़दूरों के इतिहास में पहले कभी न देखी गई थी, और इसका प्रभाव आगामी आन्दोलनों पर बहुत काल तक स्थिर रहता। किन्तु, मध्यम श्रेणी के मनुष्य इस आने वाली आपत्ति को ताड़ गये और शीघ्र ही उन्होंने पूर्व भाग की दरिद्रता को दूर करने के लिए पश्चिमी भाग से बहुत सा चन्दा एकत्रित कर डाला, जो इतने बड़े धनाभाव को दूर करने के लिए पर्य्याप्त न होते हुए भी कम से कम कार्य्यकर्त्ताओं के सद्विचारों को तो अवश्य ही प्रकट कर रहा था। उस समय साम्यवाद और तरह तरह के सुधारों एवं संघटनों की ओर से प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों की अभिरुचि बढ़ रही थी। शरद्काल से लेकर हेमन्त ऋतु पर्य्यन्त मुझे कारागारों, विशेष कर विद्रोहात्मक समष्टिवाद के विषयों पर समस्त देश में व्याख्यान देने को कहा गया और इस प्रकार मैंने इंगलैंड और स्काटलैंड के लगभग प्रत्येक नगर का अवलोकन कर लिया। नियमानुसार व्याख्यान वाली रात्रि को मैं भोजन करने जाता, मुझे सब से प्रथम निमन्त्रण मिला करता था। फलस्वरूप इस यात्रा में मुझे एक दिन धनाढ्यों के प्रासादों में, दूसरे दिन श्रमजीवियों की झोंपड़ियों में ठहरना पड़ा। परन्तु, सर्वत्र ही विद्रोहात्मक साम्यवाद के विषय पर सजीव वादाविवाद छिड़ रहा था, पर

उक्त स्थानों में यदि कोई अन्तर था, तो बस केवल यह कि निर्धनों के झोपड़े आशा से, एवं धनाढ्यों के प्रासाद निराशा से परिपूर्ण होरहे थे। धनाढ्यों के यहाँ बहुधा यही समस्या उपस्थित रहती कि "साम्यवादी क्या चाहते हैं? क्या मागते हैं? और अन्त में भीषण झगड़ा मिटाने के लिए उनको क्या क्या अधिकार देने पड़ेंगे?" मुझसे जहाँ तक वार्त्तालाप हुआ, साम्यवादियों की दलीलों को किसी ने अमान्य एवं निरर्थक प्रमाणित करने की चेष्टा नहीं की। किन्तु, इन सब बातों के होते हुए भी मेरी यह दृढ धारणा थी कि इगलेंड में क्रान्ति का होना असम्भव है, कारण कि अभी तक अधिकाश श्रमजीवियों की मागें उचित, एवं साम्यवादियों की सीमा तक न पहुँच पाई थीं। साथ ही उनके लक्षणों से ऐसा प्रतीत होता था कि वे कुछ रियायतों को पाकर तथा कुछ वेतन-वृद्धि और बीच में विश्रामावकाश कुछ और अधिक मिलने की बात होते ही समझौता पर उतारू हो जावेंगे।

पार्लामेन्ट के एक वृद्ध अनुभवी सदस्य ने मुझ से ठीक ही कहा था "हमारा देश एक कोने में है। और हम समझौता के बल पर निर्वाह करते हैं।" वहां के श्रमजीवियों के प्रश्न भी महाद्वीप के अन्य देशों के मजदूरों के प्रश्नों से विभिन्न थे। लेकिन मजदूर छोटी छोटी रियायतों (जैसे पाठशालों में बालकों के लिए कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध हो जाना, हड़ताल के दिनों में कुछ सहानुभूति पाजाना) को विशेष आकर्षक और प्रभावशाली न मानते थे, प्रत्युत इन बातों से कोसों दूर जाकर वे पैदावार को सम भागों में वितरण करने आदि के जटिल प्रश्नों को सुलझाने, तथा अभिमत लक्ष्य-सिद्ध-हेतु सर्वोत्तम

शासन प्रणाली की स्थापना करने की चिन्ता में ही व्यस्त रहते थे। पर, इंगलैंड में सब को रुचिकर साधारण रियायतों पर ही विशेष प्रभाव डाला जाता था। तो भी इसके विरुद्ध श्रमजीवियों में यह बात पहले निश्चित हो चुकी थी कि राज्य की ओर से औद्योगिक प्रबन्ध होना निराशा मात्र है, और उन का इस बात की अधिक चिन्ता थी कि किस प्रकार से रचनात्मक क्रियाओं द्वारा लक्ष्य सिद्ध हो, तथा कैसे वह दशा उत्पन्न होजावे, जिसमें कि आदर्श सिद्धि प्राप्त हो जावे। उनकी झोंपडियों में जाते ही हम से प्रश्न होने लगते—"क्रोपाटकिन! यदि कल हम अपने बन्दरगाहों पर अधिकार करलें, तो उसका प्रबन्ध कैसे होगा? अथवा यह कि राज्य द्वारा हम रेलों का प्रबन्ध नहीं चाहते और प्राइवेट कम्पनियों द्वारा रेलों का प्रबन्ध होना तो एक सुसंगठित डकैती है। परन्तु, मान लीजिए कि समस्त रेलें मजदूरों के हाथों में आजावें तो प्रबन्ध कैसे होगा?" इस भांति के साधारण विचारों तक को न समझते हुए भी वास्तविकता की तह पर पहुँचने की अभिलाषा रखते थे। इंगलैंड में इस आन्दोलन के सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय बात यह भी था कि वहां के बहु-संख्यक मध्यम श्रेणी के मनुष्य भी आन्दोलन में सहानुभूति रखते और भिन्न भिन्न प्रकार से उसकी सहायता करते थे। पर उन में से कुछ तो खुल्लमखुल्ला और कुछ आन्दोलन से दूर रह कर ही सहायता देते थे। स्विट्ज़रलैंड और फ्रांस में दोनों दलों (मध्यम श्रेणी के मनुष्य और श्रमजीवी) में खूब तनातनी थी। जब मैं स्विट्ज़रलैंड में ३ वर्ष रहा तो मेरा परिचय मजदूरों के अतिरिक्त और किसी से भी न हुआ। पर इंगलैंड में ऐसा

होना असम्भव था। लन्दन और उसके समीपवर्ती ग्रामों में भी हमको बहुत से ऐसे स्त्री और पुरुष मिले जोकि निःशङ्क भाव से साम्यवादी सभाओं का प्रबन्ध करने और हड़ताल के दिनों में चन्दा एकत्रित करते थे। इस समय यहां भी रूस के सदृश एक शक्तिशाली आन्दोलन का श्रीगणेश होने लगा था, जो इतना शक्तिशाली, आत्मत्यागी न होते हुए भी नितान्त अनुदार न था। वहां पर अब बहु-संख्यक मनुष्य भिन्न भिन्न शक्तियों के साथ निर्धनों के झोंपड़ों में बसने लग गये। अस्तु, यह निर्विवाद स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्यों में अतीव उत्साह था और बहुतों का तो विचार था कि सामाजिक क्रान्ति का जन्म हो चुका है। परन्तु, अन्य देशों की भांति इंगलैंड के इन उत्साही महानुभावों को भी जब इस बात का पता चला कि कार्यारम्भ में अनेकों कठिनाइयों का सामना अत्यन्त परिश्रम से करना पड़ेगा, तो बहुत से मनुष्य तो आन्दोलन से प्रथक होकर कोरी सहानुभूति ही दिखलाने लगे।

पारस्परिक सहायता

मैंने इस आन्दोलन में पूर्ण भाग लिया और कुछेक अंग्रेज मित्रों के साथ उनकी सहायता से अराजक साम्यवादी 'स्वतंत्रत' (Freedom) नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया, यद्यपि उस समय साम्यवादियों के तीन पत्र और भी निकल रहे थे। उन्हीं दिनों मैंने अपना काम अराजकता की ओर भी प्रारम्भ कर दिया था, पर वह हमारे जेल चले जाने से रुक गया। वास्तव में उस पत्र का सर्वोत्तम

भाग एलसी रेक्लस् द्वारा प्रकाशित किया गया, जब कि मैं क्लेरवाक्स कारागार में बन्दी था। इधर से पेरिस से प्रकाशित होने वाले 'ला रिवोल्टो' (La Revolte) नामक पत्र द्वारा अराजक साम्यवादी समाज के रचनात्मक भाग पर लेख लिखने लगा। "हमारे बालक" पर सैनिकों को उभाड़ने के अपराध में अभियोग चलाया गया। अस्तु, वह कलेवर परिवर्तन कर पुनः स्त्री लिंग सूचक नाम में निकलने लगा। होते होते मेरे समस्त लेख पुस्तकाकार में छाप दिये गये। इन बातों के अनुसन्धान ने मुझे आधुनिक सभ्य राष्ट्रों के आर्थिक जीवन की कुछेक बातों पर विशेष रूप से अध्ययन करने को बाधित कर दिया।

बहुधा साम्यवादियों का मत है कि वर्तमान समय में हम वास्तव में इतना अधिक उत्पादन कर लेते हैं जितना कि हम सब मनुष्यों को आनन्द के साथ काल-क्षेप करने के लिए पर्य्याप्त से अधिक है, किन्तु यदि दोष है तो उस पदार्थ के समान वितरण में। अतएव यदि एक सामाजिक क्रान्ति हो जाय तो अवश्य ही प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने कल-कारखानों में जाकर और वहां प्रत्येक वस्तु को पाकर उद्योगशील होगा, और समाज के आवश्यक व्यय से अतिरिक्त जो धन सञ्चित रह जावेगा, वह समाज ही को प्राप्त होगा, न कि उन धनकुबेरों को, जो कि आजकल उसका उपभोग कर रहे हैं। पर, इसके विपरीत मेरा यह विचार था कि इस वर्तमान अवस्था में जबकि सब अपने अपने संचित किये हुए धन पर अपना एकाधिपत्य प्रभुत्व ही समझे बैठे हैं, पदाचार का ढंग भी बेढंगा हो रहा है। यहां तक कि वह जीवन की आवश्यकताओं की

पूर्ति के लिए भी बिलकुल अधूरा है। जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुएं प्रचुर मात्रा में पैदा नहीं हो रही है, जितनी कि सब के आनन्द में कालक्षेप करने के लिए वस्तुतः पर्य्याप्त हों। "अधिक पैदावार" की तो बात ही निर्मूल है, वरन् प्रत्येक मनुष्य इतना निर्धन है कि वह एक शिष्ट जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक पदार्थों को भी एकत्रित नहीं कर सकता। परन्तु सभ्य देशों का कर्त्तव्य है कि वे उद्योग और कृषि सम्बन्धी दोनों ही प्रकार की पैदावार को बढ़ावें। इस बात ने मेरा ध्यान आधुनिक कृषि-क्रिया एवं शिक्षा की ओर आकर्षित किया जिससे कि मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार के सुखोपभोग एक ही समय में कर सकता है। दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न, जिसने कि मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रक्खा था, यह था कि डारविन के जीवन-संग्राम (Struggle for existence) के मसले में उन्हीं के अनुयायियों में से परम प्रवीण हाक्सले द्वारा कितनी अतिशयोक्तियां करदी गई है। वास्तव में सभ्य समाज का प्रत्येक कलंक, सफेद चमड़े वालों का नीच जाति कहे जाने वाले मनुष्यों के प्रति पैशाचिक व्यवहार, एवं बलवानों का निर्बलों के साथ असद्व्यवहार आदि दोष कोई भी ऐसे न बचे थे, जोकि इस मसले के अन्तर्गत समझ कर क्षम्य न मान लिये गये हों। क्लेरवाक्स से ही मैं इस मसले को पूर्णतया संशोधन करने एवं उसको मानव-जीवन के लिए व्यावहारिक बना देने की आवश्यकता अनुभव कर रहा था। कुछेक साम्य-वादियों ने इस ओर उद्योग अवश्य किया, पर, उनसे मेरे चित्त को सान्त्वना न हुई।

सबसे प्रथम मैंने वास्तविक 'जीवन-संग्राम' की बात एक रूसी प्राणिशास्त्र-वेत्ता (Zoologist) प्रोफेसर केसलर के मुखारविन्द से सुनी। उनका कहना था कि 'पारस्परिक-साहाय्य' की बात उतनी ही प्राकृतिक है, जितनी कि 'जीवन-संग्राम' की, वरन् भांति भांति के जीवों की वृद्धि-विकास के लिए जितना पारस्परिक साहाय्य मुख्यतम् प्रतीत होता है, उतना 'जीवन-संग्राम' नहीं। सन् १८८८ ई० में जब हाक्सले ने 'जीवन-संग्राम' पर अपने उपद्रवी लेखों को प्रकाशित किया तो उसके उत्तर में मैंने भी पाठकों की वास्तविक जानकारी के लिए कीट-पतंग से लेकर मनुष्य तक के 'जीवन-संग्राम' के मसले पर अपने तर्कों को छपवा देने का निश्चय कर लिया, जिसके लिए विगत दो वर्षों से मैं सामग्री एकत्रित कर रहा था। इस बात की चर्चा मैंने अपने मित्रों से भी की, परन्तु उस समय मैंने यह देखा कि 'जीवन संग्राम' का अर्थ 'निर्बलों की दुर्दशा' माना जाता था, और उस पर एक ऐसा वैज्ञानिक आच्छादन कर दिया गया था कि लोग उसे प्रकृति-विहित समझने और साबित करने लगे थे। तत्पश्चात् देश में यह ऐसी जड़ पकड़ता गया कि मनुष्य उसे धर्म का एक अंग मानने को तत्पर हो गये। उस समय केवल दो ही पुरुष ऐसे मिले, जिन्होंने प्राकृतिक सिद्धान्तों की इस असत्य व्याख्या के विरुद्ध मेरे साथ आवाज उठाई। इनमें से एक तो मि० जेम्स-नोलेस थे, जिन्हों ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से तुरन्त ही इस नवीन मसले को समझ लिया और मुझे भी इस कार्य के करने में उत्साहित किया। दूसरे महानुभाव मि० एच० डबलू० बेटस थे, जिनकी प्रशंसा स्वयं डारविन ने यह कहते हुए

कि ऐसा प्रवीण पुरुष और कोई देखने में नहीं आया, की थी। वे उस समय भूगोल समिति के मन्त्री थे। मैं उनसे परिचित था, अतएव मैंने अपने विचारों को उन पर प्रकट किया, जिसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हो कहने लगे—"अवश्य ही इस विषय पर आप लिखिए। वास्तव में सच्चा डारविनिज़्म यही है। जब आप अपने विचारों को प्रकाशित करावेंगे, तब हम एक प्रशंसा-पत्र भी लिखदेंगे।"

इससे अधिक प्रोत्साहन और क्या हो सकता था? अन मैंने लेख लिखना प्रारम्भ कर दिया, जोकि उन्नीसवीं शताब्दी में "जीव-जन्तुओं में पारस्परिक-साहाय्य" आदि शीर्षक लेखों द्वारा बराबर प्रकाशित होते रहे। दुर्भाग्यवश मैं जीव-जन्तु सम्बन्धी प्रथम दो लेखों को प्रकाशित कराने के पूर्व मि० बेटस् को न दिखला सका, जोकि उनके जीवन काल ही में छप गये थे। मैं "मनुष्यों में पारस्परिक-साहाय्य" नामक दूसरे भाग को भी शीघ्र तैयार करना चाहता था, पर इसमें कई वर्ष व्यतीत हो गये और कालान्तर में मि० बेटस् इस संसार से सदैव के लिए विदा हो गये। अतएव लेखों पर उनसे विचार करने का सौभाग्य ही प्राप्त न हुआ। इस विषय के अध्ययन से मुझे बर्बर जाति काल (Barbarian period) और यूरोप के अन्धकारमय काल के इतिहास की जानकारी के लिए जो खोज करनी पड़ी, उसने मुझे एक दूसरी खोज करने के लिए भी प्रोत्साहित कर दिया, जिससे कि मुझे इस बात के जानने की चिन्ता होगई कि विगत तीन शताब्दियों में यूरोप के इतिहास के बनाने में साम्राज्यवादियों ने कितना भाग लिया है। साथ ही सभ्यता के भिन्न भिन्न युगों में पारस्परिक सहायक संस्थाओं

के अध्ययन ने मुझे विकासवादियों के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक मनुष्य में स्थित न्याय और नैतिकता के भावों की परीक्षा करने को प्रेरित कर दिया। पिछले ५० वर्षों में साम्यवाद के विकास ने इंगलैंड में एक नया ही रूप धारण कर लिया था। जो मनुष्य केवल अराजक और साम्यवादी सभाओं एवं श्रोताओं की संख्या के सहारे से इस आन्दोलन की उन्नति की जांच करना चाहते हों, निःसंदेह उनके विचार में आन्दोलन क्रमशः क्षीण होता चला जा रहा था। अथवा जो लोग पार्लमेंट में जाने वाले साम्यवादियों के पक्ष में दिये जाने वाले वोटों से (Votes) आन्दोलन की उन्नति का अनुमान लगाते थे, उनके मतानुसार तो इंगलैंड में साम्यवाद का कोई कार्य्य ही नहीं हो रहा था। परन्तु, साम्यवादी सिद्धान्तों का कितना प्रभाव है, यह बात चुनाव सम्बन्धी झगड़ों में साम्यवाद की दुहाई देने वालों के पक्ष में दिये जाने वाले वोटों की संख्या से तो विशेष कर इंगलैंड में नहीं जानी जा सकती।

वास्तव में बात यह है कि साम्यवाद की तीन प्रणालियों में से, जिनके जन्मदाता फेरियल, सेन्ट सिमन और राबर्ट ओवन थे, केवल राबर्ट ओवन की प्रणाली ही इंगलैंड और स्काटलैंड में प्रचलित थी। इसी लिए आन्दोलन की शक्ति की जांच सभाओं और वोटों की संख्या से नहीं की जा सकती, वरन इसकी जांच के लिए यह परमावश्यक है कि इस बात का पता लगाया जाय कि व्यापारसंघों, कुंगी के साम्यवादी आन्दोलनों और साधारणतया देश के मनुष्यों में साम्यवादी विचार कितने प्रविष्ट हो गये हैं। इस प्रकार सन् १८८६ ई० की अपेक्षा इस समय साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार बहुत

अधिक हो गया था। यहां पर मैं यह और कहूँगा कि बीस वर्ष पहले साम्राज्यवाद और सैनिक प्रधानता के जो सिद्धान्त देश में व्याप्त हो रहे थे, उनको विध्वस करने एवं अराजकता और व्यक्तिगत अधिकारों तथा स्वतन्त्र विचारों के सिद्धान्तों को प्रचलित कराने में छोटी छोटी अराजक-मंडलियों ने विशेष प्रयत्न करते हुए जिस संलग्नता का परिचय दिया, उससे यह अवश्य कहा जा सकता है कि हम लोगों ने अपने समय को वृथा नष्ट नहीं किया।

इस समय यूरोप में बहुत ही अवाञ्छनीय सैनिक प्रधानता का प्रचार हो रहा है। पर सन् १८७१ में सैन्यबल द्वारा जर्मनी से पराजित फ्रांस को देख कर ऐसा होना अनिवार्य ही था, जिसको कि बाकूनिन प्रभृति अनेक विद्वान पहले ही से सूचित कर चुके थे। परन्तु, यूरोप के तत्कालीन जीवन में सैनिक-प्रधानता के विरोध का आभास होने लगा है। पिछले २७ वर्षों में जब से मैंने साम्यवादी आन्दोलन में भाग लिया, तब से यूरोप और अमेरिका में साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार बहुत अधिक हो गया और मैंने उनके विकास का अनुभव भी किया है। जब मैं अन्तर्राष्ट्रीय-मजदूर-संघ की पहली बैठक के समय मजदूरों द्वारा प्रकट किये हुए उन अनिश्चित और पोच विचारों का स्मरण करता हूँ, या जब मुझे पेरिस कम्यूनविद्रोह के समय में बड़े बड़े विचारवान नेताओं में प्रचलित विचारों का स्मरण हो जाता है, तथा जब मैं उन सब की तुलना आजकल के बहुसख्यक मजदूरों के विचारों से करता हूँ, तो मुझे उसमें आकाश पाताल का अन्तर दिखाई पड़ता है।

वस्तुतः इतिहास में कोई काल ऐसा नहीं हुआ, जिसमें समाज सम्बन्धी विचारों की इतनी चर्चा हुई हो, और अब अपने जीवन की सत्तावनवीं वर्ष में मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया है कि आकस्मिक घटनाओं के संघटित होने से यूरोप में एक ऐसा विद्रोह पैदा हो सकता है, जोकि सन् १८४८ ई० के विद्रोह से भी बहुत अधिक व्यापक और प्रभावशाली हो। पर उसका महत्व भिन्न-भिन्न दलों के झगड़ों में ही न होगा, प्रत्युत उससे एक बड़े जातीय पुनस्संघटन की नींव रखने की इच्छा उत्पन्न होगी। मेरा विश्वास है कि भिन्न भिन्न देशों में इस आन्दोलन के कितने ही रूपान्तर क्यों न हों, परन्तु प्रत्येक देश में आवश्यक सुधारों की अभिलाषा ऐसी बलवती हो उठेगी, जैसी कि विगत छः सौ वर्षों में कभी नहीं हुई। और अधिकारीवर्गों के विरोध किये जाने पर भी उनके उस आसुरी हठ का वह दुराग्रही रूप न होगा, जिसके कारण प्राचीन काल के विद्रोह इतने भयावह हो गये हैं। अत पिछले ३० वर्षों में किये गये प्रत्येक जाति के सहस्रों स्त्री पुरुषों के वे प्रयत्न, जोकि इसी लक्ष्य-सिद्धि के लिए वे निरन्तर करते चले आये हैं, सर्वथा सराहनीय हैं।

उपसंहार

सन् १८९६ ई० में लियान्स (फ्रांस) के कारागार में मुक्त हो महात्मा क्रोपाटकिन इगलैंड में आकर अपने समय को विशेषकर साहित्य-सेवा में व्यतीत करने लगे। यहां पर उन्होंने कई अमूल्य ग्रन्थों की रचना कर डाली। इंगलैंड के श्रमजीवी और किसान तो उनसे अत्यन्त स्नेह मानते ही थे, पर साथ ही इगलैंड के धुरन्धर साहित्य-सेवियों और राजनीतिज्ञों में भी उनकी प्रतिष्ठा थी। सन १९१२ ई० में सत्तरवीं वर्षगाठ के उपलक्ष्य में उन्हें एक मान पत्र भेट किया गया, जिस पर कि उस समय के साहित्य, कला, विज्ञान, एवं राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले प्रायः सभी विद्वानों के हस्ताक्षर थे। होते होते यूरोपीय महासमर हुआ। रूस में विप्लव की आग एकदम तीव्रता से भभक उठी, जिसके कारण नृशंस जार के वंश का नामोनिशान मिट गया। अतएव इस समय २० वर्ष के कठोर प्रवास के पश्चात् सन् १९१७ ई० में क्रोपाटकिन ने जार के संहार के कारण रूस को निरापद समझ बड़े आनन्द और उल्लास से मातृभूमि की ओर प्रस्थान किया। वहां से चल कर वे अपने स्वदेश में स्वेडिसफिनिस सीमा के टारनियो नामक नगर के रेलवे स्टेशन पर जा पहुँचे और बड़ी शान्ति से वहां पर घूमते हुए सिपाहियों से बात-चीत करने लगे। उनकी तेजवान त्यागमयी मूर्ति को देख कर लोग धीरे धीरे उनके चारों ओर एकत्रित होने लगे। दस-बीस-तीस, यहां तक कि एक अच्छी भीड़ इकट्ठा होगई और तत्काल ही भीड़ में से किसी ने उच्च स्वर से एक पुकार मारी कि "क्रोपाटकिन स्वदेश लौट आये।" फिर क्या कहना था? सब एकत्रित होकर यही चाहने लगे कि कैसे भी हम पहले

उस त्याग-मूर्त्ति का दर्शन करलें। थोड़ी देर में रेल चल दी और वे पीट्रोगार्ड जा पहुँचे।

उनके स्वदेश लौट आने की सूचना समस्त देश में तारों और पत्रों द्वारा बिजली के समान शीघ्र ही प्रकाशित हो गई। उस समय देश में उनके अनेकों मित्र और शत्रु विद्यमान थे। इस समय इनकी अवस्था लगभग ७५ वर्ष के होगी। पर इस वीरात्मा को स्वदेश लौटे हुए अधिक समय भी न होपाया था कि लन्दन से २६ जनवरी १६१६ को रायटर का, हृदय विदीर्ण करने वाला उनकी मृत्यु-समाचार का यह तार दृष्टि-गोचर हुआ :—"The death is announced of Prince Kropatkin at Moscow." अर्थात् "मास्को में क्रोपाटकिन का देहावसान हो गया।" किन्तु, अराजकता के कारण उस समय रूस की अवस्था डावाँडोल थी, एवं कोई भी सच्चा वृत्तान्त न मिलता था। यह समाचार भी किसी विश्वस्त सूत्र से प्राप्त न होकर केवल भागे हुए एक अंग्रेजी व्यापारी के ही कथन मात्र पर निर्भर था। निदान, यह वीर आत्मा अभी जीवित है, यही निर्धारित रहा, जिसकी पुष्टि आगे चल कर समाचार पत्रों ने भी करदी।

पर, जब २६ जनवरी १६२१ को लन्दन के एक तार में हमें यह निश्चित रूप में ज्ञात हुआ कि प्रिंस क्रोपाटकिन का देहान्त सचमुच होगया, उस समय हमारे हृदय में अनेकों भाव उत्पन्न हुए। क्रोपाटकिन के जीवन की घटनाओं का चित्र हमारी आखों के सामने आगया। वास्तव में इस संसार में कोई ऐसा देश न होगा, जहां पर इनके मृत्यु-समाचार ने भावुक प्राणियों को विह्वल न कर दिया हो। जिस महा

ने संसार के दुखियों के दुःख दूर करने के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहे, वैभव पूर्ण जीवन के सुखों को छोड़ कर जो निराधार और निस्सहाय अवस्था में इधर उधर मारा मारा फिरा, वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा प्राप्त आनन्द को तिलाञ्जलि देकर जिसने परतन्त्र देशवासियों को स्वतन्त्रता का सदेश सुनाना ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश बना लिया, ज़ार के अंग-रक्षक होने की अपेक्षा जिसने अत्याचार-पीड़ित जनता का रक्षक होना ही उचित समझा, अपनी धुन के सामने जिन्होंने अत्याचारियों के अत्याचारों की कुछ भी पर्वाह न की, और अन्त में अपने देश को निरकुंश ज़ारशाही के अन्यायों से मुक्त देख कर जिन्होंने सन्तोष पूर्वक ७८ वर्ष की अवस्था में अपनी जीवन-लीला समाप्त की, ऐसे महात्मा का जीवन भला किसके लिए शिक्षाप्रद न होगा ? भारत ऐसे परतन्त्र देश के लोग तो उनके जीवन से अनेक शिक्षाएं ग्रहण कर सकते हैं। परमात्मा करे, हम क्रोपाटकिन के आदर्श को सामने रखकर देशभक्ति और देशोद्धार के कटकाकीर्ण मार्ग पर अग्रसर हों। जब संकट की काली घटाएं हमारे मार्ग को तिमिराच्छन्न करें, तो क्रोपाटकिन के कार्य्य विद्युत के सदृश हमारे पथ-प्रदर्शक हों।

समाप्त ।